राजस्थान के आदिवासी

डॉ. एस. के. सैनी

डॉ. एस. के. सैनी

एम.कॉम., पीएच. डी.
डॉक्टर ऑफ मेडीसन
(आल्टरनेटिव मेडिसन)

20 अप्रेल, 1963 को भारत की छोटी काशी बून्दी (राजस्थान) में जन्म।

1991 बैच सिविल सर्विस ऑफिसर।

प्रथम नियुक्ति सहायक सुरक्षा आयुक्त, रेलवे सुरक्षा बल, बीकानेर।

प्रतिनियुक्ति पर वरिष्ठ प्रबंधक (सतर्कता) के रूप मे इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन, कलकत्ता को अपनी सेवाएँ दी।

वर्तमान में सुरक्षा आयुक्त, रेलवे सुरक्षा ाल।

स्थायी सम्पर्क :
डॉ एस.के. सैनी
द्वारा श्री गोकुलचन्द सैनी, एडवोकेट
ालचन्द पाड़ा, बून्दी (राज.)
पिन -323 001

स्थान के आदिवासी

डॉ. एस. के. सैनी

यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति एवं इतिहास में आदिवासियों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इनके विषय में अनेक ज्ञानवर्धक पुस्तकें प्रकाशित होती रहीं हैं, इसी कड़ी में एस.के. सैनी द्वारा रचित 'राजस्थान के आदिवासी' पुस्तक प्रकाश में आई है जिसमें राजस्थान की प्रमुख जनजातियों भील, मीणा, गरासिया, सहरिया, डामोर, कथोड़ी के सामाजिक व आर्थिक क्रियाकलापों का विशद वर्णन है।

पुस्तक में आदिवासियों की प्रमुख समस्याओं पर चर्चा की गई है और आदिवासी विकास कार्यक्रम इन समस्याओं के निराकरण में कितने उपयोगी और सार्थक रहे हैं, इसकी भी समालोचना है।

मुझे प्रसन्नता है कि लेखक ने अनेक ज्वलंत मुद्दों जैसे आदिवासी क्षेत्रों में पर्यावरण संरक्षण की जरूरत, अर्थचक्रम में आदिवासी महिलाओं की भूमिका, आदिवासी क्षेत्रों में अनियोजित विकास के दुष्परिणाम आदि पर निर्भीकता से अपनी कलम चलायी है। आदिवासी विकास हेतु प्रारूप भी दिया है जिसमें न केवल स्थानीय आदिवासियों की जरूरतों के मुताबिक विकास व कल्याण कार्यक्रमों के निर्माण पर बल दिया है बल्कि आदिवासियों की समस्याओं को समझने व उनको हल करने की इच्छाशक्ति रखने वाले

अधिकारियों व कर्मचारियों की आदिवासी क्षेत्रों में तैनाती पर भी अपने विचार व्यक्त किए हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि डॉ. सैनी की यह पुस्तक न केवल राजस्थान बल्कि समस्त भारतवर्ष के आदिवासी क्षेत्रों में कार्यरत अधिकारियों व कर्मचारियों के लिए उपयोगी रहेगी। आदिवासियों पर अंग्रेजी में बहुत पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, परन्तु हिंदी में रचित यह पुस्तक आदिवासियों के मसलों को हल करने तथा उनकी संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने के प्रयासों हेतु अधिकारियों व कर्मचारियों में कर्त्तव्यपरायणता एवं मानवीय संवेदना को जागृत करेगी।

शुभकामनाओं सहित,

जुएल ओराम

(जुएल ओराम)
जनजातीय कार्य मंत्री
भारत सरकार
नई दिल्ली

मुख्य मंत्री
राजस्थान

अभिमत

आदिवासी हमारी प्राचीन संस्कृति के संवाहक है। नैसर्गिक वातावरण और एकांत में रहने के कारण समाज एवं राष्ट्र की मुख्यधारा से दूर रह गये। यही नहीं रूढ़िगत परम्पराओं, अधविश्वास एवं जड़ता के कारण पिछड़ गये।

देश की आजादी के आन्दोलन में उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना और भावना के कारण इस समुदाय में भी जागृति आई। आजादी के बाद आदिवासी समुदाय को आरक्षण देकर उनके सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास के प्रयास किये गये। यह खुशी की बात है कि बून्दी के डॉ. एस.के.सैनी ने इस समुदाय के जीवन का बारीकी से अध्ययन करने के बाद "राजस्थान के आदिवासी" शीर्षक पुस्तक का शोध लेखन कियाऔर अब उसका प्रकाशन होने जा रहा है।

मुझे विश्वास है कि पुस्तक की सामग्री आदिवासी समुदाय के सभी पहलुओं तथा राज्य सरकार द्वारा उनके सर्वागीण विकास के लिए किये जा रहे प्रयासों का ज्ञान कराने वाली होगी।

मैं डॉ. सैनी को इस पुस्तक के लिए हार्दिक बधाई देते हुए उनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूं।

(अशोक गहलोत)

दो शब्द

राजस्थान की अरावली पर्वतमाला की पहाड़ियों में बसे हुए आदिवासियों के ग्राम, दूर-दूर तक छितराए घर, ऊँची टेकरियों पर बसे हुए, कृषि योग्य असींचित व पथरीली भूमि जिस पर सामान्यत: कृषि नहीं की जा सकती, ऐसी भूमि से भी उपज लेने की हिम्मत रखने वाले ये प्रकृति के पुजारी राजस्थान के दक्षिणांचल में सघन रूप से बसे हुए हैं, वैसे आदिवासी सम्पूर्ण राजस्थान में हैं।

यह पुस्तक लिखने की प्रेरणा मुझे प्रकाशन विभाग की एक पुस्तक "द आदीवासीज" पढ़ने से मिली। उस पुस्तक में आदिवासियों के बारे में श्री जवाहरलाल नेहरु के विचार पढ़े। मेरा आदिवासियों के बारे में सारा चिन्तन ही बदल गया। मुझे लगा कि मैं नेहरुजी के साथ-साथ चल रहा हूँ और उनकी दबी रह गयी इच्छा, आदिवासी कल्याण के उनके सपने को सच करने में माध्यम बनूँ।

सदियों से समाज से उपेक्षित और आरक्षण की सुविधा मिलने के फलस्वरूप सवर्णों की ईर्ष्या का पात्र आखिर इतनी अधिक सरकार प्रदत्त साधन सुविधाऐं मिलने के बाद भी उन्नति नहीं कर पाया। आखिर क्यों। यह पुस्तक इस प्रश्न का उत्तर खोजने का एक विनम्र प्रयास है।

अपने मत का प्रयोग करना सभ्यता की एक महत्वपूर्ण निशानी और एक अधिकार है। हमारे समाज के तथाकथित सभ्रांत लोग अक्सर इसके प्रति अपनी उदासीनता दिखाते हैं, जबकि आदिवासियों को जिनके बारे में सामान्य वर्ग या तो उनकी घोटुल की रहस्यमयी और उन्मुक्त दुनियाँ के बारे में सुनी सुनाई बातों पर अपनी उत्सुकता दिखाता है या गणतत्र दिवस पर दिल्ली में उनके नृत्य देख कर प्रसन्न

हो उठता है उन्हीं आदिवासियो मे से उडीसा के आदिवासियों ने पहले आम चुनाव (1951) में भारी सख्या में मताधिकार का प्रयोग किया और मतदान का सर्वाधिक प्रतिशत आदिवासी क्षेत्र में ही रहा था।

यह हमारा दायित्व बन जाता है कि देश की जनसंख्या में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले इस वर्ग को जीवन की सामान्य धारा में लाने का प्रयास किया जाए। सरकारी प्रयास ही काफी नहीं, यह प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है कि वह इन्हें उपेक्षित या घृणा से न देख कर इनके विकास हेतु अपने स्तर पर जो भी प्रयास कर सके करें।

यह भ्रांति दिमाग से निकाल देनी होगी कि ये असभ्य हैं। इनकी अपनी संस्कृति है, विरासत है और अपने कानून कायदे हैं, जो कई मायनों में हम लोगों से बेहतर हैं। उदाहरण के लिए आदिवासियों में दहेज प्रथा नहीं है, बाल विवाह नहीं होता है। ये सिर्फ आर्थिक दृष्टि से ही कमजोर हैं। इनकी प्रगति का अबरोधक इनमें शिक्षा का अभाव है। इस पुस्तक में ऐसी सभी समस्याओं का विस्तृत वर्णन तथा उनके निराकरण हेतु सुझाव देने का प्रयत्न किया गया है।

इस पुस्तक में 9 अध्याय हैं। प्रथम अध्याय परिचयात्मक है।

द्वितीय अध्याय में आदिवासियों के उद्‌भव के बारे में जानकारी देने का प्रयास है। वर्तमान में राजस्थान में आदिवासियों के आदिवासी बहुल क्षेत्र के बारे में जानकारी दी गई।

तृतीय अध्याय में मुख्यत: प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर नवीं पंचवर्षीय योजना काल में किए गए आदिवासी विकास कार्यों का संक्षेप में मूल्यांकन किया गया है। वर्तमान में चलाऐ जा रहे आदिवासी विकास कार्यक्रमों की भी विस्तृत जानकारी दी गई है।

चतुर्थ अध्याय में आदिवासी विकास कार्यक्रमों को

सञ्चालित करने हेतु सरकार द्वारा बनायी गयी प्रशासनिक सरचना का, कार्यरत अधिकारियों के कार्यों का वर्णन किया गया हैं। प्रशासनिक पुनर्गठन के बारे में कुछ सुझाव भी दिए गए हैं।

पंचम अध्याय में सरकार द्वारा संचालित विकास कार्यक्रमों के आदिवासियों के सामाजिक व आर्थिक जीवन में पड़े प्रभावों का मूल्यांकन किया गया है। विकास कार्यक्रमो का पर्यावरण व संस्कृति पर प्रभाव इस अध्याय का अति–महत्वपूर्ण अंग है। स्वयं आदिवासियों की सरकारी कार्यक्रमो पर क्या प्रतिक्रिया है, इसका भी वर्णन किया गया है।

षष्ठम अध्याय में राजस्थान के प्रमुख आदिवासियो भील, मीणा, गरासिया, डामोर, कथोड़ी व सहरिया के सामाजिक जीवन, उनके रीति–रिवाजों का वर्णन है। आदिवासियों के अपने सम्पूर्ण संसार की जानकारी इस अध्याय में संक्षिप्त रूप से देने का प्रयास किया गया है।

सप्तम अध्याय में आदिवासी पुरुष और महिला गाड़ी के दो पहियों में से एक अर्थात् आदिवासी महिलाओ के क्रियाकलापों का वर्णन है। परिवार में उनके आर्थिक योगदान पर विशेष चर्चा की गई है।

अष्टम अध्याय में आदिवासियों की आर्थिक व सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण किया गया है। सरकारी विकास कार्यक्रमों के फलस्वरूप आदिवासियों को राहत मिली है परन्तु उनके जीवन में कुछ समस्याऐं भी उठ खड़ी हुई हैं जो उन्हें नहीं दिखाई दे रही हैं, उन समस्याओ का इस अध्याय में वर्णन किया गया है।

नवम् अध्याय में आदिवासियों के संबंध में आदिम तटस्थता की नीति, विलीनीकरण की नीति, मध्यमार्गी नीति के संक्षिप्त वर्णन उपरांत एक व्यवहारिक आदिवासी सहायता प्रारूप तैयार करने हेतु कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु मार्गदर्शक रूप में दिए गए हैं।

क अ

अभी भी आदिवासियों के विकास हेतु बहुत से प्रयत्न किए जाने बाकी हैं परन्तु महत्वपूर्ण हैं "हमारे ईमानदारी पूर्ण प्रयास जो सेवाभाव से किए जाएँ न कि औपचारिकता पूरी करने हेतु।"

मैं उन सभी व्यक्तियों का आभारी हूँ जिन्होने आदिवासी ग्रामों में आदिवासियों से सम्पर्क व बातचीत करने में मेरी मदद की तथा मुझे सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध करायी।

मैं श्री ओ. पी. सैनी, आयुक्त जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग, उदयपुर का आभारी हूँ जिन्होंने वर्तमान आदिवासी विकास कार्यक्रमों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध करायी।

मैं अपने परिवार तथा अर्धांगिनी श्रीमती सुनीता सैनी के सहयोग तथा परिवार को दिया जाने वाला समय इस पुस्तक में विनियोजित किए जाने की सहर्ष स्वीकृति के लिए आभारी हूँ।

यूनिक ट्रेडर्स के श्री मनमोहन जैन व श्री पी. सी सिंघवी एवं पंकज सिंघवी इस पुस्तक के समय पर प्रकाशन के लिए बधाई के पात्र हैं।

यह पुस्तक राजस्थान के आदिवासियों की ओर से राजस्थान के मुख्यमंत्री महोदय तथा जनजाति विकास कार्यो में लगे अधिकारियों व कर्मचारियों को समर्पित है ताकि वे आदिवासियों के विकास हेतु इस पुस्तक में दिए गऐ सुझावों पर विचार करने का श्रम कर सकें।

– डा. एस. के. सैनी
सुरक्षा आयुक्त, रेलवे सुरक्षा बल

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

परिचयात्मक

1. पृष्ठभूमि

ऊँची पर्वतमालाओं और कहीं-कहीं घने वनों से ढके अरावली के दक्षिण क्षेत्र में ही राजस्थान के अधिकांश आदिवासी बसते हैं। ये संकेन्द्रित क्षेत्र हैं:- सम्पूर्ण डूँगरपुर व बाँसवाड़ा जिले, चित्तौड़गढ़ में प्रतापगढ़ और अरनोद पंचायत समिति, सिरोही में आबू रोड पंचायत समिति तथा उदयपुर में कोटड़ा, झाड़ोल, धरियावद, खेरवाड़ा, सलूम्बर, सराड़ा पंचायत समितियाँ व गिरवा खण्ड के 81 ग्राम। यह जनजाति उपयोजना क्षेत्र है।

परावर्तित क्षेत्र उपागमन (माडा) के अन्तर्गत राज्य के 17 जिलों-अलवर, धौलपुर, भीलवाड़ा, बूँदी, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, झालावाड़, कोटा, बारां, पाली, सवाईमाधोपुर, करौली, सिरोही, टौंक, दौसा, राजसमंद व जयपुर के 44 लघु खण्ड सम्मिलित हैं।

विशिष्ट क्षेत्र सहरिया आदिम जनजाति क्षेत्र है जिसमें बारां जिले की शाहबाद व किशनगंज तहसीलें सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त छिट-पुट रूप से बसे आदिवासियों के विकास हेतु "क्लस्टर" बनाए गए हैं ताकि विकास कार्यो से कोई भी आदिवासी वंचित न रहे। इसके अतिरिक्त आदिवासियों की बिखरीबादी भी है जो 30 जिलों में छिटपुट बसी है।

आदिवासी आरंभ से ही प्रकृति के पुत्र रहे हैं और प्रकृति के मध्य ही निवास करते रहते हैं। राज्य के सुदूर अंचल में शहरी सभ्यता और आधुनिक चमक-दमक से दूर आदिवासियों का समूह अपना पृथक् अस्तित्व व पृथक् संहिता बनाए हुए हैं। वस्तुत: इनका आर्थिक जीवन अत्यन्त दयनीय है। इस उपेक्षित वर्ग की दयनीय स्थिति के उपरान्त भी भारतीय समाज में इनको हेय समझा जाता रहा है तथा जीवन के सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक क्षेत्र के समान अवसर और विकास के मार्ग सर्वथा अवरुद्ध रहे हैं।

राजस्थान की कुल जनसंख्या 2001 की जनगणना के अनुसार 5 64 73 122

है इसका 12 60 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति है अर्थात् में आदिवासियों की 71 17,345 (प्रक्षेपित) है भारत की कुल आदिवासी का 7.87 प्रतिशत भाग राजस्थान में निवास करता है।

2. उद्देश्य

राजस्थान के आदिवासियों के जनजीवन की जानकारी देने वाली सामग्री समय-समय पर प्रकाशित होती रही है किन्तु अधिकांश सामग्री अंग्रेजी भाषा में होती है फलतः जनसाधारण इन लोगों के बारे में जानकारी से वंचित रह जाता है। जनसाधारण को जानकारी देने हेतु यह पुस्तक हिन्दी में लिखी गई है।

राजस्थान सरकार ने आदिवासियों के विकास के लिए वास्तविक प्रयासों की शुरूआत द्वितीय पंचवर्षीय योजना में की। हर वर्ष राज्य सरकार करोड़ों रुपया राजस्थान के आदिवासियों हेतु विकास कार्यक्रमों पर खर्च कर रही है, उन्हें विभिन्न तरीकों से रोजगार उपलब्ध करवाया जा रहा है इन सब कार्यों के फलस्वरूप आदिवासियों का जीवन-स्तर पहले की तुलना में कितना सुधरा है, ऐसी कौन-कौन-सी समस्याएँ हैं जो अभी तक विद्यमान हैं और जो उनके विकास में रोड़े अटका रही हैं, यह जानने का प्रयास करना इस पुस्तक का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य रहा है।

साथ ही एक ऐसा आदिवासी सहायता प्रारूप जो श्री जवाहर लाल नेहरू की आदिवासियों के बारे में मूलभावना को साथ लिए हुए, इनकी नूतन अनिवार्य आवश्यकताओं व पुरातन सांस्कृतिक वातावरण को संरक्षण, दोनों ही इन्हें दे, प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य रूप से राजस्थान के जनजाति उपयोजना क्षेत्र को लिया गया है जहाँ आदिवासियों का बाहुल्य है। इस क्षेत्र के 4 जिलों-डूंगरपुर, बांसवाड़ा, उदयपुर व सिरोही में बसे हुए आदिवासियों की आर्थिक, सामाजिक समस्याओं, उनके जीवन स्तर, विकास कार्यक्रमों से मिले लाभों का विवरण, रोजगार, कर्ज, साक्षरता, परिवार का आकार, वन संरक्षण व दोहन, महिलाओं की भूमिका, दूर-संचार के साधनों की जानकारी, रीति-रिवाजों के बारे में विस्तृत सर्वेक्षण किया गया है। आदिवासी जीवन के आर्थिक पहलू पर अधिक जोर दिया गया है।

पुस्तक में, आदिवासियों की आर्थिक स्थिति में क्या परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं, उनकी आर्थिक समस्याएँ कौन-कौनसी हैं, आदिवासियों के सामाजिक जीवन का भी सर्वेक्षण किया गया है अर्थात् कौन-कौनसे रीति-रिवाज अब उनके

ड़ी आदिवासी परिवार, कर्मठ महिलाएं

अकाल राहत कार्य (भू-सरंक्षण) में लगे आदि

कथोड़ियों द्वारा कुओं की खुदाई

वन रक्षक एवं प्रकृति पूजक कथोड़ी
सुरक्षित वन क्षेत्र
फुलवारी की नाल (उदयपुर)

वर्षा जल की आकांक्षा में तपती धरती
ग्राम रास्तापाल (डूंगरपुर)
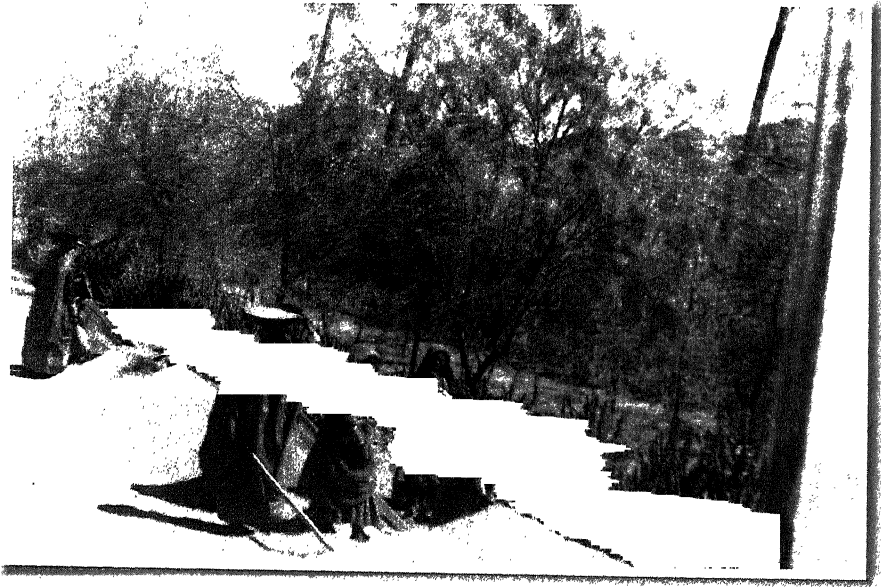
गरासियां महिलाऐं सड़क निर्माण कार्य में व्यस्त
ग्राम सियावा, आबूरोड (सिरोही)
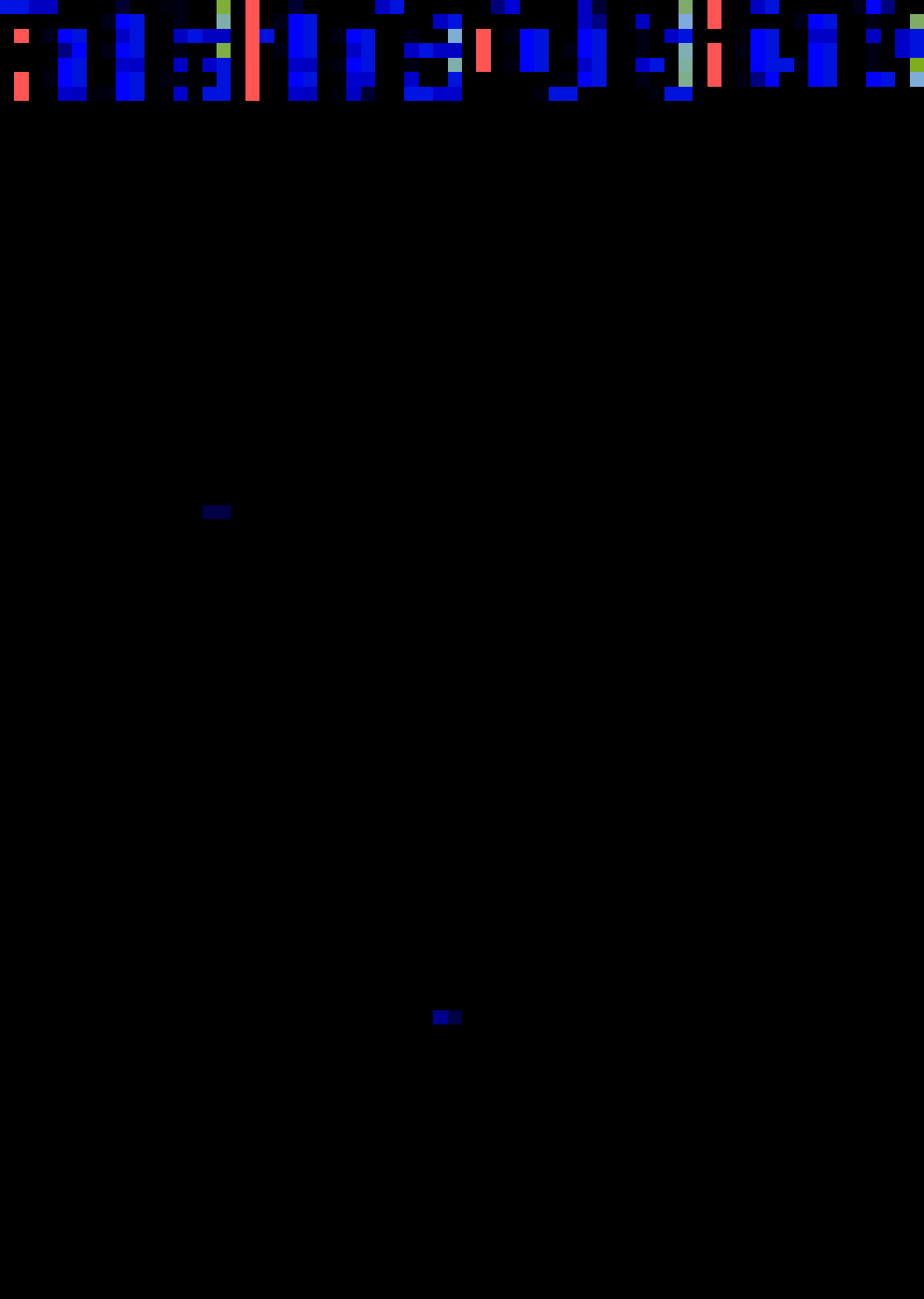
डामोर महिलाऐं
काम के बाद फुर्सत के क्षण में

गरासियां महिलाएं
काम के बाद घर को लौटती हुई

अव्यावहारिक हो गए हे, कोन स रीति-रिवाज अनुपयुक्त हें फिर भी वे जारी रखे हुए हैं, उनके समाज में शहरी सम्पर्क के फलस्वरूप क्या-क्या र्तन हुए हैं आदि जानने की कोशिश की गई है।

इस संदर्भ में निम्नलिखित परिकल्पनाएँ की गई हैं:-

(1) आदिवासी गरीब और अशिक्षित हैं।

(2) आदिवासियों का शोषण हो रहा है।

(3) सरकारी विकास कार्यक्रमों का पूरा लाभ आदिवासियों को नहीं मिल पा रहा है।

(4) आदिवासियों में अकर्मण्यता है।

(5) आदिवासी मूलरूप में वनों के संरक्षक हैं, ठेकेदारों और स्वार्थी तत्त्वों के द्वारा मिलकर वनों का विनाश किया जा रहा है।

(6) आदिवासी महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक कर्मठ नहीं हैं और उनका योगदान घर की व्यवस्था संभालने तक ही सीमित है।

(7) आदिवासी आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं।

(8) आदिवासियों के अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियाँ इत्यादि उनके विकास में अवरोधक हैं।

(9) आदिवासी क्षेत्रों में आर्थिक संसाधनों का अभाव है।

(10) आदिवासी क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधाएँ पर्याप्त नहीं हैं।

उल्लेखनीय है कि सर्वेक्षण के दौरान कई आश्चर्यजनक तथ्य सामने आए परिकल्पना क्रमांक 6 पूर्णतः असत्य सिद्ध हुई। आदिवासी महिलाओं की वासी जीवन में अत्यधिक सक्रिय भूमिका है जो मात्र घर की चारदीवारी ही सीमित नहीं है। परिकल्पना क्रमांक 4, 7, 9 आंशिक रूप से असत्य हुई। आदिवासियों में से काफी लोग मेहनती हैं और जीविकोपार्जन हेतु न श्रम करने को तैयार हैं परन्तु वे पैसे का उपयोग करने में सिद्धहस्त नहीं है। वासी आर्थिक दृष्टि से तो पिछड़े हुए हैं पर सामाजिक दृष्टि से बिल्कुल उनकी अपनी विशिष्ट व सम्पूर्ण संस्कृति है। आदिवासी-बहुल क्षेत्र अरावली मालाओं में है जो विश्व की सबसे पुरानी पर्वतमाला है और खनिज की दृष्टि पन्न है जस्ता, चूना पत्थर, इमारती पत्थर, फ्लूरोस्पार की दृष्टि से यह एक न क्षेत्र है

3 समाज की वर्तमान समस्याओ व [illegible]ओ से सम्बन्ध

आम नागरिक आदिवासियों की तुलना में अधिक संतोषजनक स्थिति मे जीवनयापन कर रहा है। आदिवासियों का आर्थिक स्तर सुधरे, उनके बच्चों के लिए समुचित निःशुल्क शिक्षा-सुविधाएँ प्रदान की जानी आवश्यक हैं अन्यथा असंतोष की वृद्धि के कारण एक ऐसी स्थिति आ सकती है जब वे अपने विकास हेतु पृथक् राज्य की माँग करने लगें। उनके क्षेत्र में वनों, भूमि व अन्य प्राकृतिक संसाधनों का जो अंधाधुंध दोहन हो रहा है उस पर अविलंब रोक लगायी जानी चाहिए। सरकार को इस पर काफी गंभीरता से सोचना होगा।

वर्तमान में आदिवासी संस्कृति का क्षय हो रहा है और इसका कारण है- उनकी सभ्य समाज के लोगों पर निर्भरता। उनके सांस्कृतिक परिवेश और कला को साधारण जनों के समक्ष आश्चर्य व तमाशे के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। वे स्वयं भी धीरे-धीरे शहरी लोगों का अंधानुकरण करने लगे हैं जो उनके लिए खर्चीला साबित हो रहा है और उन पर दिन-ब-दिन कर्ज बढ़ता जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि आदिवासियों की संस्कृति को अक्षुण्ण रखते हुए उनके जीवनयापन के लिए स्थायी रोजगार उपलब्ध कराया जाए तथा समर्पित अधिकारियों को उनकी सेवा हेतु नियुक्त किया जाए।

4. ज्ञान में योगदान

ऐसी आशा है कि-

1. सरकार को इस पुस्तक से प्राप्त परिणामों के आधार पर आदिवासी विकास नीति को आदिवासियों की जरूरत के अनुरूप बनाने में सुविधा रहेगी।
2. नवीन शोधकर्त्ताओं को इस अध्ययन से प्राप्त परिणामों की जानकारी होगी और बाद में स्वयं शोध करते समय उन्हें इन निष्कर्षों को जाँचने का भी अवसर मिलेगा।
3. अधिकारी, जो आदिवासी विकास कार्यक्रमों के क्षेत्र में क्रियान्वयन हेतु उत्तरदायी हैं, वे आदिवासियों की आर्थिक-सामाजिक समस्याओ के बारे में गहराई से जानने के उपरान्त उनके निदान हेतु आदिवासियो की सक्रिय सहायता एवं उनके साथ मानवीय दृष्टि से व्यवहार करेंगे।

4. वे अधिकारी व कर्मचारी, जो राज्य सरकार के विभिन्न पदों पर कार्यरत हैं और कभी भी आदिवासी–बहुल क्षेत्रों में स्थानान्तरित अथवा पदोन्नत किए जा सकते हैं, उनके लिए यह पुस्तक, आदिवासियों के बारे में जानकारी के प्राथमिक स्रोत के रूप में काम करेगी।
5. यह पुस्तक जनसाधारण के लिए भी उपयोगी होगी जिन्हें आदिवासियों के बारे में जानकारी, उनकी संस्कृति व पर्यावरण संरक्षण हेतु सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयासों की वास्तविक जानकारी प्राप्त होगी। इससे वे आदिवासियों व उनकी संस्कृति का सम्मान करना सीखेंगे तथा उनकी मदद हेतु उपेक्षा के स्थान पर मानवीय दृष्टिकोण अपनाएँगे।

द्वितीय अध्याय

राजस्थान और आदिवासी

1. भारतीय संविधान में आदिवासियों की स्थिति

भारत की स्वतंत्रता से पूर्व देश के विभिन्न पर्वतीय क्षेत्रों और सघन वनों मे बसी जनजातियों को अंग्रेज "मानव सभ्यता के विकास के आदिम अवशेष के रूप में अजायबघर की तरह रखना चाहते थे, ताकि विश्व भर के नृवंश शास्त्री भारत आकर इनके जीवन का अध्ययन कर सकें।" अत: आजादी के पूर्व इनके जीवन पर पुस्तकें तो कई लिखी गईं किन्तु इनकी सहायता, इनके जीवन-स्तर के विकास के लिए कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया।

देश के महान् सपूतों के बलिदान व देशवासियों के अथक प्रयासों से देश को आजादी प्राप्त हुई और जब संविधान-निर्मात्री परिषद् बनायी गयी तो उन विशेषज्ञों के मस्तिष्क में भी इन जनजातियों के लिए विचार था। वे नहीं चाहते थे कि जब स्वतंत्र भारत का सर्वांगीण विकास हो तो ये जन-जातियाँ उससे अछूती रह जाएँ। अत: भारतीय संविधान के अनुच्छेद-46 के अन्तर्गत राज्य सरकारों का यह दायित्व निर्धारित किया गया कि वे समाज के कमजोर वर्गों विशेषत: अनुसूचित जातियों और जनजातियों के आर्थिक और शैक्षणिक हितों में वृद्धि एवं सामाजिक जीवन-स्तर में सुधार करने का विशेष प्रयास करेगी और इन जातियों और जनजातियों को सभी प्रकार के शोषण और अन्याय से मुक्त कराएँगी।

संविधान के अनुच्छेद-3 में मौलिक अधिकारों के वर्णन के तहत धारा 15 में राज्यों को निषिद्ध किया गया है कि वे नागरिकों में धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा जन्मस्थान के आधार पर भेद-भाव न करें और स्पष्ट शब्दों में निर्देश दिया गया है कि किसी भी नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान में से किसी के आधार पर निम्नलिखित के सम्बन्ध में कोई निर्योग्यता, रोक या शर्त लगाकर पक्षपात नहीं किया जाएगा–

(अ) दुकान, सार्वजनिक रेस्तराँ, होटलों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थान में प्रवेश के सम्बन्ध में।

(ब) कुआ तालाब सड़क तथा आनन्द विहार के

स्थानो क प्रयाग मे सदर्भ मे जिनकी दखरेख पूर्ण या आशिक रूप मे राजकोष स की जाती हो या जो जनसाधारण के प्रयोग हेतु समर्पित कर दिए गए हों।

इस कानून का अत्यधिक महत्त्व है। इस धारा से स्पष्टत: व्यक्त होता है कि भेदभाव का निषेध मात्र धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग और जन्मस्थान के आधार पर ही किया गया है। इसकी मूलभावना यह है कि राज्य प्रत्येक व्यक्ति को समान समझेगा और उसके साथ केवल इन आधारों पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। किन्तु भेद-भाव यदि किसी अन्य आधार पर किया जाता है तो उसे असंवैधानिक नहीं माना जाएगा।

चूँकि आदिवासी सदियों से पीड़ित उस समुदाय के व्यक्ति रहे हैं, जो राज्य द्वारा प्रदत्त सामान्य सुविधाओं से भी वंचित रहा है। अत: उन्हें मुख्य धारा में शामिल करने और उनके पिछड़ेपन को दूर करने, उनमें आत्मविश्वास जगाने के लिए उन्हें कुछ विशेष सुविधाएँ देना जरूरी हो गया। इस तरह अनेक व्यवस्थाओं जैसे-अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों के लिए राजकीय सेवाओं व शिक्षण सस्थाओं में कुछ स्थान सुरक्षित रखना, उन्हें शुल्क-मुक्ति देना, प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के लिए नि:शुल्क कक्षाओं की व्यवस्था करना, प्रतियोगी को परीक्षा-शुल्क से मुक्ति देना, उन्हें पढ़ाई जारी रखने पर छात्रवृत्ति की सुविधाएँ प्रदान की गई। आशा की गई कि देश का यह पीड़ित वर्ग शीघ्र ही सभ्य समाज के बराबर आ सकेगा तथा वर्षों से चले आ रहे सामाजिक अन्याय व पक्षपात से छुटकारा पा सकेगा।

इन सुविधाओं के लिए अनुसूचित जनजाति की तालिका में केवल उन्हीं समूहों को चुना गया, जिनके लिए इन सुविधाओं की आवश्यकता सबसे अधिक समझी गई।

2. आदिवासी : नामकरण और परिभाषा

आदिवासी भारत के ऐसे क्षेत्रों में निवास करते हैं, जो अधिकतर घने जंगलों, दुर्गम घाटियों, पर्वत शृंखलाओं व छोटे-छोटे द्वीपों में स्थित हैं। यही कारण है कि जिन क्षेत्रों में इनके निवास स्थान हैं उनमें परिवहन के साधनो के परिचालन के अभाव में बाह्य लोगों का पहुँच पाना साधारणत: असम्भव हो जाता हे। एक निश्चित क्षेत्र के अन्तर्गत विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों में जीवनयापन करते रहने तथा बाह्य संपर्कों के अभाव में इन आदिवासियों के जीवनयापन के

तरीकों और उनकी संस्कृति में विशिष्टता आ गई है यहां इनका विशेष लक्षण हो जाता है। हालाँकि अब इनका बाह्य-जगत् से भी काफी कुछ संपर्क होने लगा है किन्तु उसके अच्छे परिणामों के साथ ही कुछ दुष्परिणाम भी उत्पन्न हुए हैं। फिर भी धन्य हैं ये लोग, कि अभी भी अपनी सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं।

इनकी सांस्कृतिक विशेषता के अतिरिक्त इनका पिछड़ापन विशेषत: आर्थिक रूप से भी उनको दूसरे जनसमूहों से अलग करता है। चूँकि जंगलों और पर्वतीय क्षेत्रों में जीवनयापन के या तो साधन नहीं हैं या फिर इन्हें अत्यन्त श्रम करके जीवनयापन करना पड़ता है। पर्वतीय प्रदेशों व जंगलों में सामान्यत: कृषि नहीं हो सकती। वन उपजों का एकत्रीकरण, शिकार तथा कंदमूल-फल खाकर ही ये जीवनयापन करते रहे हैं। अब ये लोग एक विशेष कृषि प्रणाली (जिसे झूमिंग कृषि कहते हैं) से कृषि करते हैं।

साधारणत: सभ्यता का मूल्यांकन आर्थिक साधनों की प्रगतिशीलता और लिखने-पढ़ने की परम्पराओं के आधार पर ही किया जाता है। अभी भी इन दोनों बातों में ये अपने-आपको अधिक संख्या में अग्रसर नहीं कर पाए हैं। यही कारण है कि सरकार द्वारा इन्हें विशेष सुविधाएँ दी गई। चूँकि इनका एक विशिष्ट क्षेत्र, विशिष्ट समाज और विशिष्ट संस्कृति होती है, अत: इन तीनों विशेषताओं का वर्णन ही विभिन्न विद्वानों ने इनकी परिभाषा देते वक्त किया है।

समय-समय पर अनुसूचित जनजातियों को विभिन्न विद्वान् विभिन्न नामों, जैसे-आदिवासी, पहाड़ी जातियाँ, पिछड़े कबीले, पर्वतीय कबीले, आदिम जाति आदि से सम्बोधित करते रहे हैं। एच. एच. रिस्ले, एन. जी. लेसी, वारियर एलविन तथा ठक्कर बापा ने इन समूहों को 'आदिवासी' कहना अधिक उपयुक्त समझा। ए. बेन्स ने इन समूहों को 'पर्वतीय कबीला' कहा। जे. एच. हटन ने इनके आर्थिक व सांस्कृतिक पिछड़ेपन को ध्यान में रखते हुए इनको 'पिछड़े कबीले' कहना उचित समझा। इस पुस्तक में इन्हें 'आदिवासी' व 'जनजातियाँ' दोनों ही शब्दों से सम्बोधित किया गया है।

इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार, "एक आदिम जाति परिवारों का एक समूह है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा बोलते हैं, तथा एक सामान्य क्षेत्र में या तो वास्तव में रहते हैं, या अपने को उसी क्षेत्र से सम्बन्धित मानते हैं तथा ये समूह अंतर्विवाही होते हैं।"

इस परिभाषा का विश्लेषण करने पर हमारे समक्ष आदिवासियों की निम्नलिखित विशेषताएँ प्रकट होती हैं–

(1) इनका सामान्य नाम होता है और इस नाम से ही ये आदिवासी जाने जाते हैं।

(2) एक जन समूह या जनजाति के व्यक्ति एक ही तरह की भाषा बोलते हैं।

(3) ये किसी क्षेत्र–विशेष में ही बसे हुए होते हैं।

(4) ये अपनी जाति या समूह में ही विवाह सम्बन्ध बनाते हैं।

क्रोबर ने आदिम जातियों की परिभाषा देते हुए कहा, ''आदिम जातियाँ ऐसे लोगों का एक समूह होता है, जिनकी अपनी एक सामान्य संस्कृति होती है।'' अतः क्रोबर के अनुसार एक ही संस्कृति का होना आदिम जाति का एक विशिष्ट लक्षण है।

डॉ. मजूमदार के अनुसार, ''आदिवासी जनजाति परिवारों तथा पारिवारिक वर्गों का एक समूह है, जो सामान्य नाम धारण किए हुए है। इसके सभी सदस्य एक ही भूमि पर निवास करते हैं और एक ही भाषा-भाषी, विवाह की प्रथाओ तथा करोबार सम्बन्धी एक ही नियम का पालन करते हैं। वे आदान–प्रदान सम्बन्धी पारस्परिक व्यवहार को विकसित करते रहते हैं। साधारणतः आदिवासी जनजाति अन्तर्विवाह सिद्धान्त का समर्थन करती है और उसके सभी सदस्य अपनी ही जनजाति के अन्तर्गत विवाह करते हैं। कई गोत्र मिलकर आदिवासी जनजाति की रचना करते हैं। प्रत्येक गोत्र के सदस्यों का परस्पर रक्त–सम्बन्ध जुडा होता है। इनमें या तो अनेक लघु वर्ग एक वृहत् वर्ग में सम्मिलित हो जाते है, अन्यथा उनका वंश परम्परागत सरदार होता है। इस तरह से आदिवासी जनजाति को एक राजनीतिक संघ भी माना जाता है।''

इस प्रकार उपुर्यक्त कुछ प्रमुख परिभाषाओं पर विचार करने पर आदिवासियो की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया जा सकता है:–

1. ये सामान्यतः एक ही क्षेत्र में संकेन्द्रित होते हैं पर इनके विभिन्न भू-भागों में अलग–अलग स्थानों पर संकेन्द्रण भी मिलते हैं।

2. हालाँकि ये एक ही प्रकार की भाषा बोलते हैं, किन्तु धीरे–धीरे सभ्य समाज से सम्पर्क होने पर से स्थानीय भाषा भी आसानी से बोल लेते हैं, जैसे- राजस्थान के डूंगरपुर व बांसवाड़ा जिले के भील बागड़ी और हिन्दी समझ–बोल लेते हैं।

3. ये साधारणत: अपने जनसमूह में ही विवाह सम्बन्ध कायम करते हैं, वैवाहिक परम्पराएँ, मान्यताएँ और नियम इनके अपने नितांत निजी होते हैं।

4. सदियों से अलगाव की स्थिति में रहते रहने के कारण इनके खान-पान और वेश-भूषा में भी विशिष्टता आ गई है और कई बार इनकी विशिष्ट वेश भूषा के कारण, जो कि अक्सर इनके त्यौहारों या उत्सव-नृत्यों में पहनी जाती है ये दूर से ही अलग से पहचाने जा सकते हैं।

इस तरह इनका सामाजिक संगठन, न्याय व्यवस्था, रीति-रिवाज, देवी देवता, नृत्य-संगीत एवं आवास के सम्बन्ध में भी विशिष्टता और प्रत्येक आदिवासी समूह की दूसरे समूह से भिन्नता पाई जाती है, जैसे– नागालैण्ड के नागा आदिवासी और राजस्थान के भील अपनी-अपनी पूर्णत: भिन्न सांस्कृतिक व सामाजिक विरासत के रक्षक हैं।

3. आदिवासियों का उद्‌भव

राजस्थान के सम्बन्ध में अनुसूचित जनजातियों की सूची इस प्रकार है:-

1. भील तथा इसकी उपजाति भील गरासिया, ढोली भील, डूँगरी भील, डूँगरी गरासिया, मेवासी भील, रावल भील, तड़वी भील, भागलिया, भिलाला, पावड़ा, वसावा, वसावे।
2. भील-मीणा।
3. डामोर व इनकी उपजाति डामरिया।
4. धानका ताड़वी, तेतड़िया बालवी।
5. गरासिया (राजपूत गरासिया को छोड़कर)।
6. कथोड़ी व दूसरी उपजाति कतकड़ी, ढ़ोर कटकड़ी, सोन-कथोड़ी, सोन-कतकड़ी।
7. कोकना, कोकनी, कूकना।
8. कोलीढोर, टोकरे, कोली, कोलचा, कोलघा।
9. मीणा।
10. नायकड़ा और दूसरी उपजाति नायका, चोलीवाला नायका, कापड़िया नायका, मोटा नायका, नाना नायका।
11. पटेलिया।
12. सहरिया, सहारिया।

इनमें से प्रमुख आदिवासी जनजातियाँ जिनका के आधार पर महत्त्वपूर्ण स्थान है, वे हैं–मीणा, भील, गरासिया, सहरिया, डामोर, कथोड़ी।

इनमें से सहरिया ऐसी जनजाति है जो अभी भी अपने अत्यधिक प्राचीन परिवेश में ही है और जिसे 'आदिम जाति' कहा जा सकता है।

(i) मीणा

राजस्थान के आदिवासियों में मीणा आदिवासियों का स्थान जनसंख्या के आधार पर प्रथम है। श्री चन्द्रराज भंडारी अपने ग्रन्थ "भगवान महावीर" में लिखते हैं कि–"मत्स्य राज्य कुरु" के दक्षिण और यमुना के पश्चिम में था और यहाँ के अधीश्वर मेना (मीणा) कहलाते थे।" 'मीणा' शब्द 'मीन' शब्द का ही बिगड़ा हुआ रूप है।

"10वीं शताब्दी के अन्त में कच्छवाहों ने मीणा सरदारों को" "जयपुर" से निकाल बाहर किया। मीणा कम या अधिक मेरवाड़ा की अधिकतर जातियो से सम्बद्ध रहे हैं। जैसे मेवाड़ के उत्तर-पूर्व तथा अजमेर में मीणा कानून मानने वाले, दबंग लोग रहे हैं, और अपनी जिंदगी लूट और खेती करके गुजारते हैं। इस सन्दर्भ में ये राजपूताना के भीलों से मिलते हैं। दूसरी ओर करोली के मीणा तुलनात्मक रूप से सभ्य और सही ढंग से जीने वाले लोग हैं। पिछले 400 वर्षो से मीणा करोली राज्य में सरदार और प्रमुख कृषक रहे हैं।"

वर्तमान में भौगोलिक दृष्टि से इस क्षेत्र में राजस्थान के भरतपुर, जयपुर, दौसा, अलवर व सवाई माधोपुर व करोली जिले आते हैं और ये ही मीणा-बाहुल्य जिले हैं। ये अजमेर जिले में भी हैं परन्तु वहाँ मीणाओं को अनुसूचित जनजाति में शामिल नहीं किया गया है।

"मीणा जनजाति एक शक्तिशाली जनजाति थी और राजपूतों के उद्भव से पूर्व राजस्थान के एक बड़े भाग में मीणा सरदारों का ही शासन था।" एम. ए. शैरिंग लिखते हैं, "सम्भवत: मीणा मारवार के शुरू के बसने वालों में से हैं। जयपुर में वे राजदरबार के प्रमुख विश्वसनीय पदों पर काम करते थे।" जब उनका शासन धीरे-धीरे खत्म हुआ तो उन्होंने नये योद्धा राजपूतों के प्रति अपनी पूर्ण वफादारी दिखाई और बदले में भूमि अथवा जागीर प्राप्त की। किन्तु कुछ ऐसे भी मीणा समूह थे जो नए शासकों से समझौता नहीं कर सके और उन्होंने अपने दल बनाकर विरोध, अपराध और हिंसा का रास्ता अपनाया। ये जंगलों में रहने

लगे थे और फिर इन्हें पुनः बसाने का क्रम चालू किया गया। इन्हें प्रारम्भ मे 'चौकीदार' जैसे पद दिए गए। इस तरह इनके दो भाग हो गए :- (1) जमींदार मीणा (2) चौकीदार मीणा।" ये दोनों भाग अभी तक हैं। यह हिन्दू धर्म को मानने वाले हैं। **एम. ए. शैरिंग** लिखते हैं, "भरतपुर के मीणा मांस खाते हैं, शराब पीते हैं और अंध-विश्वासी हैं। वे दो तरह के पेशे करते हैं या तो कृषक हैं या गांव के चौकीदार हैं।" राजस्थान के आदिवासियों में सर्वाधिक जनसंख्या मीणाओं की है।

(ii) भील

इस शब्द की उत्पत्ति द्रविड़ भाषा के "बिलु" शब्द से हुई, जिसका अर्थ है-कमान। "तीर-कमान में अत्यधिक निपुण होने के कारण ही इस जनजाति का यह नाम पड़ा।" यह भारत की एक अत्यधिक प्रसिद्ध आदिवासी जनजाति है। महाभारत में गुरुभक्त एकलव्य तथा रामचरितमानस में राम को शबरी द्वारा "बेर" भेंट करना, ये दो प्रमुख उदाहरण इस जनजाति के ख्यातिप्राप्त व्यक्तियों के हैं। इस जनजाति की कर्त्तव्यनिष्ठा, प्रेम और निश्छल व्यवहार के उदाहरण प्रसिद्ध हैं। ये शिकार करते हैं किन्तु अब कृषि कार्य भी करने लगे हैं।

श्री एच. बी. रोनी अपनी पुस्तक "वाइल्ड ट्राइब्स ऑफ इंडिया" में लिखते हैं- "राजपूत राजकुमारों के स्थानीय इतिहास के अनुसार भील वह जाति है जो राजपूतों द्वारा मैदानों से निकालकर पहाड़ों में खदेड़ दी गई थी।" पहाड़ो में बसे होने के कारण ये अपनी झोपड़ियाँ पहाड़ियों की चोटियों पर बनाते हैं। ये लोग खाने में मक्का, ज्वार और जौ काम में लाते हैं। राजस्थान में यह जनजाति डूँगरपुर, बाँसवाड़ा और उदयपुर में संकेन्द्रित है। इसके अतिरिक्त भीलवाड़ा और चित्तौड़ जिले में भी ये बसे हैं।

इन प्रदेशों में कई बार वर्षा न होने पर भुखमरी व अकाल की आशंका बनी रहती है। अन्नाभाव में ये घासपात और कन्द-मूल पर भी जीवनयापन करते हैं पर अब अकाल की स्थिति में ये नजदीकी कस्बों में और शहरों में मजदूरी करने आ जाते हैं। ये बहुत गरीब हैं और इनमें शिक्षा की भी कमी है। ये लोग भीली और बागड़ी बोली बोलते हैं। जो व्यक्ति शहरों के नियमित सम्पर्क में हैं वे हिन्दी भी बोल व समझ लेते हैं। डूँगरपुर, बाँसवाड़ा व उदयपुर जिलों में भीलों की 68 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है।

मुख्य व्यवसाय के अन्तर्गत ये साधारणतः कृषि, पशुपालन, जंगल में लकड़ी काटना, मजदूरी आदि करते हैं। इसके अतिरिक्त इनके गौण व्यवसायो में शहद एकत्रीकरण, शिकार, जड़ी-बूटी इकट्ठी करना, मछली मारना प्रमुख है।

श्री ठक्कर बापा के अनुसार, "भीलों का अतीत कितना गौरवमय रहा है। जिस जाति ने प्रताप का कठिन समय में साथ नहीं छोड़ा और जो मेवाड़ राज्य की प्रधान सहायक रही है वही जाति आज दीन भाव से हमारी ओर अपने आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक विकास के लिए देख रही है। क्या हम अपनी सहायता का हाथ उनकी ओर नहीं बढ़ाएँगें।"

"नेणसी की ख्यात में यह उल्लेख मिलता है कि डूँगरपुर में रावल वीर सिंह देव के समय में वर्तमान डूँगरपुर के आसपास के ग्रामीण क्षेत्र पर एक शक्तिशाली भील सरदार डूँगिरया का कब्जा था जो एक धनाढ्य महाजन सालाशाह की पुत्री से विवाह करना चाहता था। सालाशाह ने विवाह के लिए काफी दिनों बाद एक तिथि निश्चित की और इसी बीच वीरसिंह देव से मिलकर यह षड्यन्त्र रचा कि जब डूँगरिया भील सहित सभी बाराती नशे की अवस्था में हों तो उन्हें मार दिया जाए। षड्यन्त्र सफल रहा, उन्हें पहले खूब शराब पिलायी गई और जब वे नशे में झूमने लगे तो उन पर हमला कर दिया गया तथा सन् 1538 में डूँगरपुर पर वीरसिंह देव का अधिकार हो गया। वीरसिंह ने डूँगरिया भील की दोनों विधवाओं से यह वादा किया कि इस नगर का नामकरण उनके दिवंगत पति के नाम पर ही किया जाएगा एवं एक स्मारक निर्मित किया जाएगा।"

इसी तरह से राजस्थान के भील बहुल दक्षिणांचल में डूँगरपुर के पास के जिले "बाँसवाड़ा का नाम एक भील सरदार बाँसना के नाम पर पड़ा। हो सकता है यह नाम बाँस से लिया गया हो जो कभी इस क्षेत्र में बहुतायत से उगते थे।"

(iii) गरासिया

'गरासिया' शब्द संस्कृत के "ग्रास" अर्थात् निर्वाह से निकला है। "कहते हैं कि 600 वर्षों से अधिक पूर्व से जालोर के चौहान राजपूत हारकर अरावली की पहाड़ियों की ओर भागे और वहाँ निर्वाह की सुविधा होने पर बस गए। उन्होंने उस क्षेत्र के भीलों पर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया जो कि वहाँ के निवासी थे और उन्हें संतुष्ट करने के लिए उनके जीवन-निर्वाह हेतु उन्हें भी हिस्सा दे दिया।" गरासिया आदिवासी हिन्दू धर्म के मानने वाले हैं और इनका जीवन भीलों की तरह ही है ये तीर कमान का भी प्रयोग करते हैं

इसके विपरीत **श्री एच. बी. रोनी** अपनी पुस्तक वाइल्ड ट्राइब्स आफ इण्डिया'' में लिखते हैं– ''गरासिया जंगली लोग हैं, जो गुजरात से सम्बद्ध हैं और मालवा में भी बसे हुए हैं। वे अपनी डकैतियों के कारण भी कुख्यात थे। उन्होने सीमावर्ती क्षेत्रों में आतंक पैदा कर रखा था अत: सूरत के नवाब ने (फर्रुखसियर के काल में 1713–1719) इनसे समझौता करके हर गाँव में इन्हें निश्चित जमीन दे दी थी तथा 'कर' से भी मुक्त कर दिया गया। इस तरह से उन लुटेरों के अग्रज ही गरासिया हैं क्योंकि उन्हें 'गिरास' अर्थात् कर से छूट दी गई थी।''

ये दोनों परस्पर विरोधी धारणाएँ हैं किन्तु यह सत्य है कि ये लोग पहले के राजपूत ही हैं और यही कारण कि उस क्षेत्र के राजपूत भी इन्हें ''भाई गरासिया'' ही कहते हैं। **श्री एम. ए. शेरिंग** इनके बारे में लिखते हैं–''मेवाड़ के गरसिया बड़ोदा के नजदीक चेनपारीन के चौहान राजपूतों के अग्रज हैं, जो सिसोदियों के चित्तौड़ को जीतने से पहले वहीं रहते थे। वे अपनी राजपूती आदतों को भूल चुके हैं और अब आदिवासी भीलों से निकटता से सम्बद्ध एक जंगली नस्ल रह गए हैं।'' वर्तमान में ये सिरोही के आबूरोड़ और पिन्डवाड़ा तहसीलों में ही अधिकतर बसे हुए हैं।

(iv) सहरिया

आदिम अवस्था के प्रतीक के रूप में राजस्थान में सहरिया सबसे पिछड़े हुए आदिवासी हैं जिनके रीति-रिवाज और आदतें अभी भी प्राचीन युग के मानव की याद दिलाते हैं। इनके धार्मिक संस्कारों से पता चलता है कि ये हिन्दू धर्म के मानने वाले हैं किन्तु हिन्दुओं ने इन्हें ''अछूत'' का–सा ही दर्जा दिया हुआ है।

श्री एच. बी. रोनी अपनी पुस्तक ''वाइल्ड ट्राइब्स ऑफ इंडिया'' में लिखते हैं–''सहरिया एक विस्तृत नस्ल है जिसके तीन प्रमुख उपविभाजन हैं– कोसल, चांडिया तथा सुदानी। वे घोड़ों और ऊँटों पर सवार रहते थे तथा हथियारों से लैस रहकर लूटपाट करते थे। बाद के वर्षों में इनका यह प्रभुत्व घट गया फिर भी अपने क्षेत्रों में बसे लोगों को आतंकित करके ये उनसे धन व खाद्यान्न वसूल करते रहे। जो भी कृषक इनके क्षेत्र में कृषि करते थे उनका इस तरह की वसूली से बचना बहुत कठिन था।''

वर्तमान में ये आदिवासी राजस्थान के बारां जिले की शाहबाद व किशनगंज तहसील में ही बसे हुए हैं। उनका यह वर्णन सटीक नहीं है क्योंकि ये काफी पिछडे हुए हैं और सामान्यत: लुटेरी जनजातियाँ इतनी पिछडी हुई नहीं होतीं।

(v) डामोर

यह एक ऐसी जनजाति है जिसके बारे में कोई पुस्तक नहीं लिखी गई है। "इस जनजाति के भाट बड़नगर (गुजरात) में रहते हैं। इन भाटों के पास इस जनजाति के परिवारों के पूर्वजों का लिपिबद्ध इतिहास रहता है। उसके अनुसार ये लोग भ्रष्ट राजपूत हैं जो राजपूत जाति से निष्कासित किये गए।"

इनका नाम डामोर कैसे पड़ा, इस बारे में एक किंवदंती है जिसे इस जनजाति के वृद्ध पुरुष बड़े आत्म-विश्वास से बताते हैं। दो राजपूत भाई सघन वन में शिकार खेलने गए और वहाँ पर उन्हें तेज प्यास लगी। आसपास कोई नहीं था। काफी दूर तक तलाश करने पर उन्हें एक झोंपड़ी दिखी और वहाँ जाकर उन्होंने पानी माँगा। प्यास इतनी तेज लगी हुई थी कि वे पहले पानी पी गए और बाद में उस व्यक्ति की जाति पूछी। वह डामोर था। इस तरह से चूँकि अछूत का पानी पी लिए जाने से वे भी भ्रष्ट हो गए, अतः वे दोनों भाई वापस नहीं गए। अपने परिवार को भी वहीं बुला लिया और वहीं जंगल में रहने लग गए। इस तरह से इस जनजाति की वृहत्त शुरूआत हुई।

डामोर आदिवासी गुजरात से राजस्थान में आकर बसे हुए हैं। यही कारण है कि इनके सामाजिक सम्बन्ध अभी भी गुजरात के क्षेत्रों में बने हुए हैं। यहाँ तक कि इनके पहनावे के वस्त्र वगैरह भी ये गुजरात से ही लाते हैं और बागड़ी मिश्रित गुजराती बोली बोलते हैं जिसमें गुजराती का ज्यादा पुट रहता है।

ये आदिवासी राजस्थान में सिर्फ डूँगरपुर जिले के सीमा लवाड़ा पंचायत समिति क्षेत्र में ही बसे हुए हैं जो कि राजस्थान एवं गुजरात का सीमावर्ती क्षेत्र है।

इनके दो उपविभाग हैं, जिनमें-(1) उच्च वर्ग डामोर, तथा (2) निम्न वर्ग डामोर हैं। इन दोनों वर्गों में आपस में रोटी बेटी के सम्बन्ध नहीं हैं। ये हिन्दू धर्म को मानते हैं।

(vi) कथोड़ी

कथोड़ी जनजाति का मूल स्थल सहयाद्रि पर्वत माला का कोंकण तटीय क्षेत्र है। इस तरह ये मूल रूप से महाराष्ट्र के हैं जहाँ ये वन-उपजें इकट्ठी करते रहे हैं।

"इनको लगभग 150 वर्ष पूर्व माव जी नामक बोहरा महाराष्ट्र से ठेके पर काम करने की बात कहकर उदयपुर के जंगलों में कत्था बनवाने के लिए लाया था य कत्थे के पेडो को कत्था बनाने और वन उपज इकट्ठी करने का

कार्य किया करते थे। किन्तु बाद में इस बोहरा को जंगल से कत्था बनान का ठेका एक वर्ष नहीं मिला। चूँकि इनके पास वापस जाने के लिए पैसे नहीं थे अतः ये इस आशा में कि इस वर्ष नहीं तो अगले वर्ष ठेका मिल जाएगा, यहीं पर रह गए और इस तरह बाद में यहीं के हो गए। बाद में धीरे-धीरे कत्थे के पेड़ भी खत्म हो गए और ये वन-उपजें एकत्र करके अपना जीवनयापन करने लगे।

ये घुमन्तू आदिवासी हैं तथा वर्ष का अधिकतर समय जंगलों में बिताना पसद करते हैं। इनकी झोंपड़ियाँ पत्तों की बनी होती हैं। इनकी उपजातियाँ चार हैं-(1) हेलूम (2) जादू (3) पोवार (4) सिन्धी। प्रथम उपजाति ही सर्वाधिक आदरणीय है।

वर्तमान में ये उदयपुर जिले की कोटड़ा और झाड़ोल पंचायत समिति में ही बसे हुए हैं। ''इस जनजाति के वृद्ध पुरुष अपना मूल स्थान महाराष्ट्र में खान देश नवापुर नामक स्थान बताते हैं।''

4. आदिवासियों का क्षेत्रीय संकेन्द्रण

राजस्थान में अरावली पर्वतमाला की घाटियाँ ही इन आदिवासियों का आश्रयस्थल रही हैं। ये जनजातियाँ अधिकतर डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, उदयपुर, सिरोही, चित्तौड़, सवाईमाधोपुर, करौली, बून्दी, कोटा, बारां जिलों में बसी हुई हैं। प्रत्येक जनजाति का क्षेत्रीय संकेन्द्रण इस प्रकार है-

(i) मीणा

यह राजस्थान की प्रमुख जनजाति है। मीणा आदिवासी तीव्रता से साक्षर हो रहे हैं। आदिवासियों में सर्वाधिक जागृति इसी जनजाति में हुई है। वैसे तो यह जनजाति सपूर्ण राजस्थान में फैली हुई है, पर इसका संकेन्द्रण जयपुर, दौसा, सवाईमाधोपुर, करौली तथा अलवर जिलों में है, जहाँ इनकी कुल जनसंख्या का 51% भाग निवास करता है।

1981 की जनगणनानुसार राजस्थान में मीणा आदिवासियों की संख्या 20,86,692 थी जो भारत की जनगणना 1991, सोशियल एण्ड कल्चरल टेबल्स (राजस्थान) के अनुसार बढ़कर 1991 में 27,99,422 हो गई है, अर्थात् एक दशक में जनसंख्या 34.16 प्रतिशत बढ़ गई है। 2001 में यह 37, 51, 225 हो गई है।

सारणी संख्या - 2.1

राजस्थान में मीणा जनजाति का क्षेत्रीय विवरण

क्रम संख्या	जिला	तहसील जहाँ इनकी सघन आबादी है
1.	जयपुर	जमवारामगढ़, बस्सी
2.	दौसा	दौसा, लालसोट, बसवा, महवा
3.	सवाईमाधोपुर	सम्पूर्ण जिला
4.	करौली	सम्पूर्ण जिला
5.	अलवर	राजगढ़, लक्ष्मणगढ़, कोटकासिम, किशनगढ़वास
6.	चित्तौड़गढ़	प्रतापगढ़, अचनेरा
7.	कोटा	सम्पूर्ण जिला
8.	उदयपुर	लसाडिया, सराड़ा, सलूम्बर
9.	बून्दी	हिन्डौली, नैनवाँ, कैशवरायपाटन
10.	टौंक	देवली, निवाई
11.	भीलवाड़ा	जहाजपुर

मीणा जनसंख्या में सर्वाधिक व्यक्ति कृषि कार्य करते हैं। इस जनजाति के पास अपने पूर्वज मीणा सरदारों की काफी भूमि भी है। यह तथ्य सवाई माधोपुर करौली व जयपुर व दौसा जिलों में प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है।

(ii) भील

भील भी मीणा जनजाति की तरह सारे राजस्थान में बसे हुए हैं, परन्तु उनका संकेन्द्रण चार जिलों में ही है। ये हैं–डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, उदयपुर व राजसमंद, जहाँ उनकी कुल जनसंख्या का 68 प्रतिशत भाग रहता है।

सारणी संख्या - 2.2

राजस्थान में भील जनजाति का क्षेत्रीय विवरण

क्रम संख्या	जिला	क्षेत्र जहाँ सघन आबादी है
1.	उदयपुर	खेरवाड़ा, कोटड़ा, फलासिया, गिर्वाब्लॉक, गोगुन्दा, मावली
2	राजसमंद	सम्पूर्ण जिला

3.	बाँसवाड़ा	सपूर्ण जिला
4.	डूँगरपुर	सम्पूर्ण जिला
5.	भीलवाड़ा	मांडलगढ़
6.	चित्तौड़गढ़	भैंसरोडगढ़
7.	अन्य	बाड़मेर, सिरोही, झालावाड़, जालौर, कोटा

1981 की जनगणनानुसार राजस्थान में भील आदिवासियों की संख्या 18,40,966 थी जो भारत की जनगणना 1991, सोशियल एण्ड कल्चरल टेबल्स (राजस्थान) के अनुसार बढ़कर 1991 में 22,90,949 हो गई, अर्थात् एक दशक में वृद्धि 24.44 प्रतिशत रही। 2001 में इनकी जनसंख्या बढ़कर 29,35,840 (28.14% दशकीय वृद्धि) हो गई है।

(iii) गरासिया

99.8 प्रतिशत गरासिया जनजाति सिरोही, उदयपुर व पाली जिले में ही केन्द्रित है। इन तीन जिलों में यह जनजाति निम्नलिखित तहसीलों में बसी हुई है।

सारणी संख्या - 2.3

राजस्थान में गरासिया जनजाति का क्षेत्रीय विवरण

क्रम संख्या	जिला	क्षेत्र जहाँ सघन आबादी है
1.	सिरोही	आबूरोड़, पिन्डवाड़ा, खेदर तहसील
2.	उदयपुर	कोटड़ा, फलासिया, खेरवाड़ा तहसील, गोगूंदा ग्राम
3.	पाली	बाली तहसील
4.	अन्य स्थल	-

1981 की जनगणनानुसार गरासिया आदिवासियों की संख्या 1,18,757 थी, जबकि भारत की जनगणना 1991, सोशियल एण्ड कल्चरल टेबल्स (राजस्थान) के अनुसार 1991 में यह 1,48,163 है, अर्थात् एक दशक में गरासियों की संख्या में वृद्धि की दर 24.76% रही है। सन् 2001 में यह बढ़कर 1,85,203 हो गई।

(iv) डामोर

डामोर जनजाति का संकेन्द्रण डूँगरपुर जिले में है। वैसे ये उदयपुर जिले में भी बसे हुए हैं।

सारणी संख्या – 2.4
राजस्थान में डामोर जनजाति का क्षेत्रीय विवरण

क्र. संख्या	जिला	तहसील जहाँ सघन आबादी है
1.	डूँगरपुर	डूँगरपुर, सीमलवाड़ा, सागवाड़ा
2.	उदयपुर	खेरवाड़ा

डामोर आदिवासी अधिकतर बागड़ी और गुजराती मिश्रित बोली बोलते हैं। बागड़ी डूँगरपुर व बाँसवाड़ा की स्थानीय बोली है। 1981 की जनगणनानुसार डामोर जनसंख्या 31,377 थी तथा भारत की जनगणना 1991, सोशियल एण्ड कल्चरल टेबल्स (राजस्थान) के अनुसार 1991 में 42,756 है, अर्थात् एक दशक में 36.27% बढ़ी है। 2001 में इनकी जनसंख्या 58,148 हो गई। इस जनगणना में भी लगता है कि जीविकोपार्जन हेतु अन्यत्र गए डामोर आदिवासी शामिल नहीं हैं। अधिकतर डामोर डूँगरपुर जिले की सीमलवाड़ा तहसील में रहते हैं, जो गुजरात की सीमा पर है। रोजगार के सिलसिले में ये गुजरात आते-जाते रहते हैं।

(v) कथोड़ी

कथोड़ी आदिवासियों का संकेन्द्रण उदयपुर जिले में है और ये उदयपुर जिले की दो पंचायत समितियों झाडोल व कोटड़ा में बसे हुए हैं। सन् 1986 में 250 परिवार झाडोल पंचायत समिति के अम्बावी, अम्बासा ग्राम (डैया पंचायत) छाली भोगड़ा, पानरवा, बिरोठी, ओड़ा व ओगणा पंचायतों में बसे हुए थे।

1986 में कोटड़ा पंचायत समिति के 4 गाँवों–पड़ावली, वास, समीजा, काउजा (जोगीवड़) गाँव में 92 परिवार थे। 1981 की जनगणनानुसार इनकी कुल जनसंख्या 2553 है, जबकि भारत की जनगणना 1991 सोशियल एण्ड कल्चरल टेबल्स (राजस्थान) के अनुसार इनकी जनसंख्या 3079 बताई गई है। 2001 में यह जनसंख्या बढ़कर 3725 हो गई। कारण यह है कि कथोड़ी आदिवासी घुमक्कड़ जनजाति है और इस जनगणना के समय ये अपने स्थायी निवास पर नहीं रहे होंगे। अधिकतर कथोड़ी आदिवासी अनपढ़ हैं। सर्वेक्षित ग्राम अम्बासा में कोई महिला साक्षर नहीं है। सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि पुरुषों में साक्षरता लगभग 3 प्रतिशत है। एक दशक में जनसंख्या में वृद्धि दर 20.60% रही है।

कथोड़ी आदिवासियों का मुख्य कार्य वन्य-उपजें एकत्र करना है। इनके एकत्रण के मौसम में शत-प्रतिशत आदिवासी यही कार्य किया करते हैं। इसके अतिरिक्त अब ये धीरे धीरे कृषि कार्य भी करने लगे हैं कुछेक ने सरकारी

सहायता पाकर दुकान भी खोल ली है। ये लोग दूसरे गाँवों में मजदूरी करने भी जाते हैं।

(vi) सहरिया

सहरिया आदिमजाति राजस्थान में बारां जिले में संकेन्द्रित है। इनका क्षेत्रीय वितरण इस प्रकार है :-

सारणी संख्या 2.5

राजस्थान में सहरिया आदिवासियों का क्षेत्रीय विवरण

क्रम संख्या	जिला	तहसील जहाँ सघन आबादी है
1.	बारां	किशनगंज, शाहबाद, बारां,

इनकी खुद की कोई बोली नहीं है। इसमें से 61 प्रतिशत खड़ी बोली 23 प्रतिशत ब्रजभाषा तथा 15 प्रतिशत हाड़ोती बोली बोलते हैं।

कृषि मजदूरों की संख्या सहरिया आदिवासियों में सर्वाधिक है; क्योंकि इनके पास स्वयं की जमीन नहीं है। इनमें सर्वाधिक गरीबी है। 1981 की जनगणनानुसार इनकी जनसंख्या 40,945 है। भारत की जनगणना 1991, सोशियल एण्ड कल्चरल टेबल्स (राजस्थान) के अनुसार 1991 में इनकी जनसंख्या 59,288 हो गई। इस प्रकार एक दशक में वृद्धि 44.80 प्रतिशत हुई है। 2001 में इनकी जनसंख्या बढ़कर 85,967 हो गई।

समग्र रूप में पूरे राजस्थान में जनजातियों के व्यक्तियों की संख्या विहंगावलोकन हेतु प्रस्तुत है–

सारणी संख्या 2.6

क्रम संख्या	राजस्थान	जनगणना* 2001	जनगणना Δ 1991	जनगणना 1981
	सम्पूर्ण जनजातियाँ	71,17,345	54,74,881	41,83,124
1	मीणा	37,51,225	27,99,422	20,86,692
2	भील	29,35,840	22,90,949	18,40,966
3.	गरासिया	1,85,203	1,48,163	1,18,757
4	सहरिया	85 967	59 288	40 945

5	डामोर, डामरिया	58,148	42,756	31,377
6	धानका	51,434	39,565	14,111
7	भील मीणा	27,320	24,836	27,137
8	नायका	12,065	9,281	9,174
9	कथोड़ी	3725	3079	2553
10.	पटेलिया	2963	2245	1703
11.	कोली ढोर	1765	1605	2081
12.	कोकना	1690	1300	165

* प्रक्षेपित समंक

Δ भारत की जनगणना सोशियल एंड कल्चरल टेबल्स (राजस्थान), 1991

5. राजपूताना में आदिवासी

राजपूतों के द्वारा भीलों को मैदानी भागों से जंगलों में खदेड़ दिया गया था। जगल व पहाड़ी क्षेत्रों में रहते हुए वे अपने पड़ौसी क्षेत्रों में लूटमार तथा उस क्षेत्र के व्यापारियों और धनिकों को डरा-धमकाकर फिरौती वसूल करने लगे। इस प्रकार उस काल में प्रशासन में हुए प्रत्येक परिवर्तन का भीलों ने लाभ उठाया और अपने जीवन-यापन के लिए आपराधिक गतिविधियाँ जारी रखीं।

सन् 1820 में अंग्रेज सरकार ने इनको कुचलने का प्रथम प्रयास किया। मैदानों से इनको खाद्यान्न की आपूर्ति रोक दी गई। उनकी लूटमार की गतिविधियों को खत्म करने की कोशिश की गई। ये प्रयत्न असफल रहे और बाद में अंग्रेज सरकार को इनके क्षेत्रों में विशेषकर दक्षिण राजस्थान में सेना भेजनी पड़ी। कई भील सरदार मारे गए और कइयों को बन्दी बनाकर जेल में डाल दिया गया किन्तु भीलों ने भी पूर्ण समर्पण नहीं किया। नये सरदार नियुक्त किये गये और लडाई जारी रही। मूलत: वह पहाड़ी छापामार श्रेणी का युद्ध था। उनके इन प्रयत्नो से विवश होकर अंग्रेज सरकार को कुछ झुकना पड़ा और उसने अपनी नीति मे परिवर्तन करके इनको सामान्य क्षमादान दे दिया। जो घोषणा उस वक्त जारी की गई, इस प्रकार थी-''सरकार ने आपके पिछले अपराधों को क्षमा कर दिया है तथा आप अपने गाँवों में रह सकते हैं, यदि आप जमीन जोतना चाहें तथा ईमानदारी से जीवनयापन करना चाहें।'' इस क्षमादान के साथ उनको भूमि, कपडे धन और भी दिया गया इस तरह से भूमि पर इनका अधिकार हो

गया। वर्षों तक उन्हें करों से मुक्ति मिली, साथ ही मेहनत कर कमाने की, उद्यम करने की आदत भी पड़ी। 1825 में भील ऐजेन्सी की स्थापना सरकार द्वारा की गई ताकि वह भीलों की नवस्थापित कॉलोनियों पर नजर रख सके। इस एजेन्सी ने इनके लूटने की आदत छुड़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

के.डी. ऐर्सकीन कहते हैं, "बाँसवाड़ा जिला बगड़ नाम से ज्ञात प्रदेश का भाग है जिसकी राजधानी वटपदरक में हुआ करती थी। महाराव कुशल सिंह 1660 में गद्दी पर बैठे थे और उन्होंने भील प्रदेश को जीत कर कुशलगढ़ नाम दिया।

"भीलों के जन-सेवक गुरु गोविन्द गिरी ने सम्प सभा का प्रथम अधिवेशन 1903 में गुजरात स्थित मानागढ़ की पहाड़ी पर किया। गुरु गोविन्द गिरी ने भील गरासियों से बेगार व गैर-वाजिब लागतें नहीं देने के लिए आह्वान किया। हर वर्ष आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को पहाड़ी पर सम्प सभा होने लगी। भील और गरासियों में दिन-प्रतिदिन बढ़ती जागृति से आस-पास की रियासतों के शासक सहम उठे। उन्हें भय हो गया कि ये जनजातियाँ भी संगठित होकर भील राज्य की स्थापना करेगी। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की कि भीलों के इस संगठन को सख्ती से दबा दिया जाए। हर वर्ष की भाँति 1913 की आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को मानागढ़ की पहाड़ी पर सम्प सभा का विरोध अधिवेशन हुआ। मानगढ़ पहाडी ब्रिटिश सेना द्वारा घेर ली गई। गोलियों की बौछार शुरू कर दी गई। पन्द्रह सौ आदिवासी घटनास्थल पर ही शहीद हो गए तथा हजारों घायल हो गए। गुरु गोविन्द गिरी व उनकी पत्नी को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें फाँसी की सजा दी गई जो बाद में भीलों की प्रतिक्रिया के डर से 20 वर्षों के कारावास में बदल दी गई पर वे 10 वर्ष बाद ही रिहा कर दिए गए। 125 से भी अधिक वर्ष बीत जाने के बावजूद आज भी भील गुरु गोविन्द गिरी की याद में मानागढ़ की पहाड़ी पर हर वर्ष आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को एकत्र होकर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।" श्री बाबूलाल पानगड़िया ने अपनी पुस्तक 'राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम' में मानागढ़ पहाड़ी पर ब्रिटिश आक्रमण का समय 1888 दे रखा है जो गलत है; सही तिथि 17 नवम्बर, 1913 है।"

स्वतंत्रता के वर्ष में भी ब्रिटिश सरकार आदिवासियों पर जोर-जुल्म करने से बाज नहीं आई थी। 19 जून, 1947 को डूँगरपुर के अंग्रेज अधिकारी रास्तापाल (जिला डूँगरपुर) नामक ग्राम स्थित सेवा संघ की पाठशाला बन्द करने गए। श्री बी एस इस दृश्य का इस तरह वर्णन करते हैं उन्होंने

के एक अध्यापक को पकड़ कर रस्से से ट्रक से बाँध दिया। ट्रक चला तो अध्यापक घिसटने लगा। संघ के वयोवृद्ध कार्यकर्ता नाना भाई उन्हें बचाने दौड़े तो राज्य की पुलिस ने उन्हें बेरहमी से पीटा जिससे उसी समय उनकी मृत्यु हो गई। वहाँ खड़ी 12 वर्षीय भील कन्या काली बाई इस लोमहर्षक काण्ड को न देख सकी। वह हँसिया लेकर दौड़ी और अध्यापक को ट्रक के पीछे घिसटने से बचाने के लिए रस्सी काट दी। पुलिस ने अबोध बालिका पर गोलियाँ दागीं। कालीबाई धराशाही हो गई।'' इस तरह कालीबाई राजस्थान की प्रथम महिला शहीद थी। डूँगरपुर में डाक बंगले के पास इन दोनों अमर शहीदों की याद में उनकी मूर्तियाँ स्थापित की गईं। भारतीय संघ में विलय के साथ ही बाँसवाड़ा व कुशलगढ़ रियासत का राजस्थान में विलय हो गया। सन् 1529 से पूर्व डूँगरपुर व बाँसवाड़ा क्षेत्र एक ही था परन्तु 1529 में ये अलग-अलग हो गए।

मीणा जनजाति राजपूतों से पूर्व की शासक जाति रही है। जब बाबर का भारत पर आक्रमण हुआ, उसी समय के दौरान राजपूतों द्वारा इन मीणा सरदारों को धीरे-धीरे गद्दी से हटाकर और हराकर पहाड़ियों में जाकर बसने को मजबूर करने का क्रम जारी रहा। इनके पचास गढ़ थे जिन्हें कोट कहा जाता था और वे वहीं से अपनी गतिविधियों का संचालन करने लगे। धीरे-धीरे ये रियासतों की व्यापारिक गतिविधियों को इतनी हानि पहुँचाने लगे कि राजपूत रियासतों को इनका मुकाबला करने के लिए एकजुट होना पड़ता था। उन्होंने इनको फिर पहाड़ियों और जंगलों में खदेड़ा किन्तु 1820 तक भी वे इस कार्य में सफल नहीं हो सके। इसके बाद में इनकी गढ़ियों पर अंग्रेज सरकार ने कब्जा कर लिया जो राजस्थान में कार्य संचालन कर रही थी।

गरासियों का क्षेत्र, जो चाकर कहलाता था, परमारों के नियन्त्रण में था। परमार राजपूतों ने आदिवासी सरदारों की जमीन छीन ली। असन्तुष्ट आदिवासी सरदारों ने उनके राज्य में लूटमार शुरू की। वे खाद्यान्नों और घोड़ों को चुरा कर ले जाने लगे। उन्होंने लोगों को राजस्व देने से रोकना शुरू किया। हार कर परमार राजाओं को इन आदिवासियों से सुलह करनी पड़ी। इस तरह बाद में उन्होंने राजस्व में भी हिस्सा लेना शुरू कर दिया।

कच्छवाहा वंश के राजपूत दूल्हाराव व उसके बाद उसके अग्रज कोकिल और मेंकुल ने ढूंढार प्रदेश (जयपुर क्षेत्र), गेटोर, आमेर इत्यादि मीणा जनपदों को समाप्त कर दिया और इनको अपने साथ मिला लिया। इस तरह मीणों का शासन समाप्त होन के बाद वे युद्ध करके इन राजपूतों को परेशान

करते रहे। कच्छवाहा वंशजों ने इनकी गतिविधियों से परेशान होकर इनको शाति से बसने के लिए जमीन आवंटित की ताकि ये कृषि करके जीवन-यापन कर सकें। अतः जो मीणा कृषि करने लगे वे जमींदार मीणा कहलाने लगे, पर अभी भी काफी मीणा समूह ऐसे बचे रह गए थे जो कच्छवाहों से जूझ रहे थे। कच्छवाहा वंशजों ने कूटनीति से काम लिया और राज्य की सुरक्षा व्यवस्था की जिम्मेदारी इनको दे दी ताकि ये गाँवों की चौकीदारी कर सकें तथा कर वसूल सकें। बाद मे ये ही चौकीदार मीणा कहलाए। इस तरह मीणाओं के कार्य के आधार पर दो भाग हो गए- (1) जमींदार मीणा (2) चौकीदार मीणा। इन चौकीदार मीणों पर एक बंदिश यह हो गयी कि वे प्रत्येक चोरी के लिए या तो माल की बरामदगी कराएँ या फिर वे खुद भरपाई करें। मजबूर होकर माल की भरपाई के लिए उन्होंने भी दूसरी जगहों पर डाके, चोरियाँ शुरू कर दीं। इन्हें दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट, 1924' लागू कर दिया। इस तरह सम्पूर्ण मीणा जाति को ही जरायम-पेशा घोषित कर दिया। देशी रियासतें व ब्रिटिश सरकार दोनों ही उन्हें उस कानून की आड़ में उत्पीड़ित करने लगे। इसका मीणों ने प्रतिरोध किया। सन् 1933, 1944 व 1945 में मीणों ने सभाएँ कर के प्राणपण से इसका विरोध किया। कई जगहों पर इस काल के दौरान हिंसक झड़पें हुईं। बाद में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् 1952 में इस जरायम-पेशा कानून से मीणों को मुक्ति मिली।

1923 में मोतीलाल तेजावत ने "एक्की" आन्दोलन ईडर में शुरू किया। इसमें गरासिया व भील आदिवासी खूब थे। सिरोही राज्य ने इन गतिविधियों को गंभीरता से लिया और ब्रिटिश राजनैतिक प्रतिनिधि की स्वीकृति पाकर ईडर राज्य में भाषण करते हुए 4 जून, 1929 को मोतीलाल तेजवात को गिरफ्तार कर लिया। इस समय गरासियों में धीरे-धीरे राजनैतिक चेतना आने लगी थी और सिरोही में स्वतंत्रता सेनानियों को वह बहुत सुखद लगा। 1930 का डांडी मार्च हो या, 1932-34 का नागरिक अवज्ञा आन्दोलन का चरम परिणाम या 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन, आदिवासी इनमें भी सक्रिय रहे। 1936 में मोतीलाल तेजावत को छोड़ दिया गया किन्तु बाद में उन्हें 1942 में पुनः गिरफ्तार कर लिया गया। गरासिया आदिवासियों ने 1943-45 के मध्य बन्दोबस्ती अभियान का भी विरोध किया। सरकार को पूरी सूचनाएँ नहीं दीं। इस तरह अंग्रेजों के शासन काल में आदिवासियों ने उन पर हुए अन्यायों, कर-भार तथा अनुचित दबावों का प्राणपण से विरोध किया कई स्थानों पर बाध्य होकर गिरिजनों से अग्रजों को

सुलह करनी पड़ी। कर्नल जेम्स टॉड ने भी इस बात का वर्णन अपनी पुस्तक एनल्स एंड एंटीक्विटिज ऑफ राजस्थान में किया कि भीलों ने महाराणा प्रताप और महाराणा उदयसिंह को भी बहुत सहायता की जब वे मुगलों से लड़ रहे थे। नवम्बर, 1827 में एक बड़ी शाही फौज कर्नल बॉंघ के नेतृत्व में खेरवाड़ा पहुँची। कैप्टन स्पीयर्स भी सिरोही से खेरवाड़ा पहुँचा और उन्होंने गरासिया और भील गॉवों पर हमला बोला किन्तु वे असफल रहे। अंग्रेजों ने यह महसूस किया कि इन आदिवासियों के नेताओं से समझौता ही बेहतर है।

अंग्रेजों ने इस आदिवासी पट्टी में अवरोधों व कानून की प्रभावशीलता को देखते हुए आदिवासियों की एक कोर बनाने का फैसला किया, ताकि उनको रोजगार भी दिया जा सके, साथ ही उनकी अवांछित गतिविधियों को समाप्त करने में मदद मिले। "इस तरह इनका विश्वास जीतने के लिए कर्नल स्पीयर्स ने भीलकोर की स्थापना का प्रस्ताव दिया, जिसमें प्रतापगढ़, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा के आदिवासी थे। इसकी स्थापना जनवरी, 1841 में हुई और इसके लिए मेवाड़ राज्य ने 50,000 रुपये वार्षिक देना मंजूर किया।" 1857 की क्रांति में भी गरासिया और इसी क्षेत्र के आदिवासियों ने माउन्ट आबू क्षेत्र में विद्रोह किया किन्तु बाद में कुचल दिया गया। 1881 के बाद अंग्रेजों ने आदिवासियों को संतुष्ट करने की नीति अपनाई। ऋषभदेव में 19 अप्रेल, 1881 को एक सभा आयोजित की गई। इस तरह से अंग्रेज समझौता कर इन आदिवासियों से सीधी मुठभेड़ से बच सके। जून, 1922 से सिरोही दरबार ने राजस्व आयुक्त के साथ एक समिति नियुक्त की जिसमें विचार करके आदिवासियों को भूमि-कर सम्बन्धी व अन्य रियायतें दी गई।

6. वर्तमान राजस्थान का गठन

केबिनेट मिशन के माध्यम से 1946 में ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की थी कि छोटी रियासतों को आपस में मिलकर एक बड़ी इकाई बना लेना चाहिए या किसी बड़ी इकाई के साथ मिल जाना चाहिए ताकि भारत का भी संघीय स्वरूप निश्चित किया जा सके। उस समय राजपूताना ऐजेन्सी थी जो रियासतों के समूह पर नियन्त्रण करने हेतु ब्रिटिश सरकार ने स्थापित की थी। इस ऐजेन्सी के तहत लगभग दो दर्जन रियासतें थीं, जिनमें अधिकांश काफी छोटी-छोटी थीं। इस सम्बन्ध में आपसी संगठन की शुरूआत मेवाड़ के महाराणा भूपाल सिंह ने 25 व 26 जून 1946 में राजस्थान व मालवा के राजाओं का सम्मेलन बुला कर की।

दूसरे सम्मेलन में जयपुर, जोधपुर, बीकानेर रियासतों के अलावा शेष रियासतों ने राजस्थान यूनियन में शामिल होना स्वीकार किया। उधर कोटा के महाराव भीमसिंह ने कोशिश की कि कोटा, बून्दी, झालावाड़ को संयुक्त राज्य बना दिया जाए पर यह कोशिश सफल नहीं हुई। इसी तरह की असफल कोशिश डूँगरपुर के महारावल लक्ष्मण सिंह ने डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, कुशलगढ़ व प्रतापगढ़ को मिलाने की की। बाद में 14 जनवरी, 1949 को सरदार पटेल ने घोषणा की कि जोधपुर, जयपुर व बीकानेर के महाराजाओं ने अपनी रियासतों का राजस्थान में विलय स्वीकार कर लिया है। 1948 में अप्रैल में संयुक्त राजस्थान का निर्माण हो चुका था।

अलवर, धोलपुर, करौली व भरतपुर के एकीकरण द्वारा 18 मार्च, 1948 को मत्स्य संघ बनाया गया था। जब 14 फरवरी, 1949 को तीनों रियासतें राजस्थान में मिल गई तो इन चारों को भी 15 मई, 1949 को राजस्थान में मिला दिया गया। 1950 में सिरोही के माउन्ट आबू वाले भाग को छोड़कर शेष भाग को राजस्थान में मिला दिया गया। बाद में सिरोहीवासियों के आन्दोलन को देखते हुए 1 नवम्बर, 1956 को माउन्ट आबू वाला भाग भी राजस्थान में मिला दिया गया, साथ ही इसी तिथि को अजमेर राज्य को भी राजस्थान में मिला दिया गया। इस तरह विलय की प्रक्रिया मार्च, 1947 से शुरू होकर 1 नवम्बर, 1956 को सम्पूर्ण हुई। इस कार्य में सरदार बल्लभ भाई पटेल की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही।

7. राजस्थान में आदिवासी बहुल क्षेत्र

भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी द्वारा जारी किए गए भारत के असाधारण राजपत्र में राजस्थान राज्य के भीतर अनुसूचित क्षेत्रों को पुनः परिनिश्चित किया गया है। इसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं–

(i) जनजाति उपयोजना क्षेत्र

(1) बाँसवाड़ा जिला

(2) डूँगरपुर जिला

(3) (क) उदयपुर जिले में फलासिया, खेरवाड़ा, कोटड़ा, सराड़ा, सलूम्बर और लसाड़िया तहसीलें

(ख) गिरवा तहसील के 81 ग्राम

(4) चित्तौड़गढ़ जिले में प्रतापगढ़ तहसील व अरनोद तहसीलें

(5) सिरोही जिले में आबू रोड़ तहसील की आबूरोड़ ब्लाक।

राजस्थान
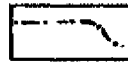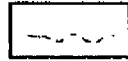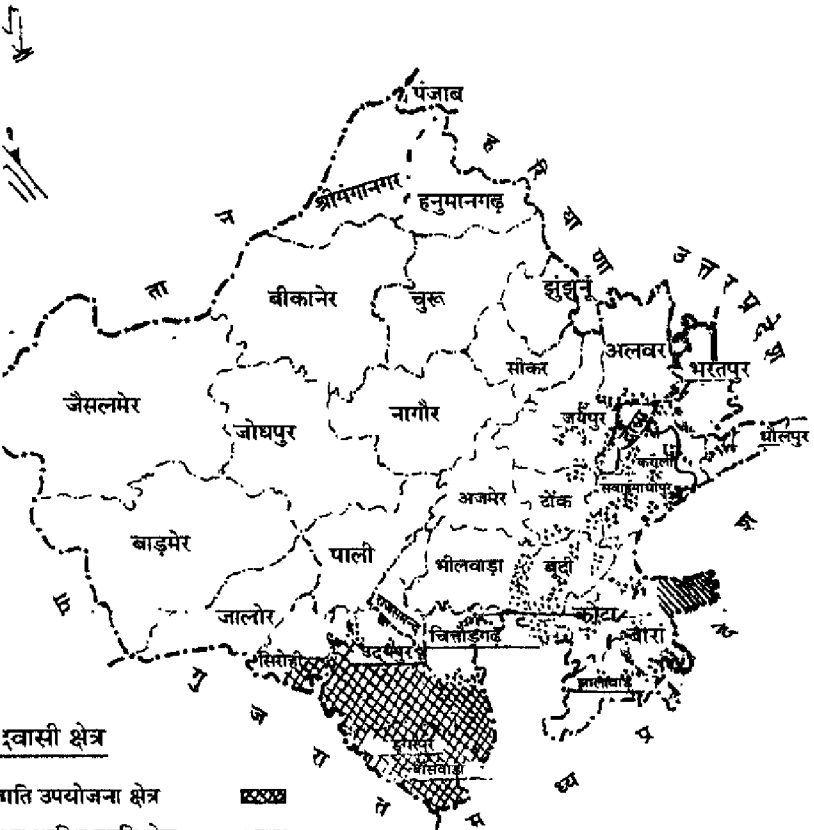
राज्य सीमा
जिला सीमा
पंजाब
श्रीगंगानगर
हनुमानगढ़
बीकानेर
चुरू
झुंझुनूं
सीकर
अलवर
भरतपुर
धौलपुर
जैसलमेर
जोधपुर
नागौर
जयपुर
अजमेर
टोंक
बाड़मेर
पाली
भीलवाड़ा
बूंदी
कोटा
जालोर
सिरोही
उदयपुर
चित्तौड़गढ़
बारां
कलस्टर योजना क्षेत्र

जनजाति उपयोजना क्षेत्र

इनमें निम्नलिखित जिले और पंचायत समितियाँ हैं:-

जिला	तहसील	पंचायत समिति
1. बाँसवाड़ा	1. बाँसवाड़ा	1. बाँसवाड़ा
	2. घाटोल	2. पीपलखूँट
	3. गढ़ी	3. घाटोल
	4. बागीडोरा	4. गढ़ी
	5. कुशलगढ़	5. बागीडोरा
		6. भूखिया
		7. कुशलगढ़
		8. सज्जनगढ़
2. डूँगरपुर	1. डूँगरपुर	1. डूँगरपुर
	2. सागवाड़ा	2. बिछीवाड़ा
	3. आसपुर	4. सीमलवाड़ा
	4. सीमलवाड़ा (दम्भोल)	4. सागवाड़ा
		5. आसपुर
3. उदयपुर	1. फलासिया (झाड़ोल)	1. फलासिया (झाडोल)
	2. खेरवाड़ा	2. खेरवाड़ा
	3. कोटड़ा	3. कोटड़ा
	4. सराड़ा	4. सराड़ा
	5. सलूम्बर	5. सलम्बूर
	6. लसाड़िया (धरियावद)	6. लसाड़िया (धरियावद)
	7. गिर्वा ब्लाक	7. गिर्वा ब्लाक
4. चित्तौड़गढ़	1. प्रतापगढ़	1. प्रतापगढ़
	2. अरनोद	2. अरनोद
5. सिरोही	1. आबू रोड़	1. आबू रोड़

(ii) परावर्तित क्षेत्र विकास उपागमन (माडा) क्षेत्र

इसमें राज्य के जनजाति-बाहुल्य क्षेत्र के 17 जिलों-अलवर, धौलपुर, भीलवाड़ा, बून्दी, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, राजसमंद, झालावाड़, कोटा, बारां, पाली, सवाई माधोपुर, करौली, सिरोही, टौंक व जयपुर तथा दौसा के 44 लघुखण्ड सम्मिलित हैं।

(iii) विशिष्ट क्षेत्र, सहरिया आदिमजाति क्षेत्र

इसमें बारां जिले की शाहबाद व किशनगंज तहसीलें सम्मिलित हैं।

(iv) माडा कलस्टर योजना क्षेत्र

ये ऐसे कलस्टर हैं जिनकी कुल जनसंख्या 5000 या इससे अधिक है तथा जिसमें 50% से अधिक जनसंख्या जनजाति की है। राजस्थान के 8 जिलों में 11 कलस्टर बनाऐ गए हैं, जिनमें 161 ग्राम हैं।

(v) बिखरी जनजाति योजना क्षेत्र

जनजाति उपयोजना, माडा, माडा कलस्टर व सहरिया क्षेत्र के अतिरिक्त 17 30 लाख आदिवासी 30 जिलों में बिखरे हुए हैं।

8. राजस्थान में जिलेवार आदिवासी जनसंख्या

राजस्थान में 5 नए जिलों के गठन के साथ ही वर्तमान में कुल 32 जिले हो गए हैं। इस सारणी में 1991 आदिवासी जनगणना तथा 2001 की प्रक्षेपित आदिवासी जनगणना दी हुई है :

सारणी संख्या 2.7

राजस्थान में आदिवासी-जिलेवार

क्र. संख्या	राजस्थान	जनगणना 1991	जनगणना* 2001
1.	बाँसवाड़ा	8,49,050	11,03,765
2.	उदयपुर	7,60,364	9,88,473
3.	डूंगरपुर	5,75,805	7,48,546
4.	जयपुर	4,23,366	5,50,376
5.	राजसमंद	3,02,707	3,93,519
6.	चित्तौड़गढ़	3,00,971	3,91,262
7.	करौली	2.28.124	2.96.561

8.	सवाईमाधोपुर	2,15,345	2,79,949
9.	अलवर	1.85,048	2,40,562
10.	कोटा	1,73,305	2,25,296
11.	बून्दी	1,56,001	2,02,801
12.	सिरोही	1,53,005	1,98,907
13.	भीलवाड़ा	1,43,748	1,86,872
14.	टोंक	1,15,948	1,50,732
15.	बारां	1,15,062	1,49,581
16.	झालावाड़	1,13,834	1,47,984
17.	दौसा	1,08,286	1,40,772
18.	जालोर	96,324	1,25,221
19.	बाड़मेर	84,232	1,09,502
20.	पाली	80,265	1,04,345
21.	जोधपुर	60,819	79,065
22.	सीकर	48,887	63,553
23.	अजमेर	39,764	51,693
24.	भरतपुर	38,212	49,676
25.	धोलपुर	34,429	44,758
26.	झुंझुंनूं	30,528	39,686
27.	जैसलमेर	16,697	21,706
28.	चूरु	7,819	10,165
29.	नागौर	4,796	6,235
30.	गंगानगर	4,783	6,218
31.	हनुमानगढ़	4,162	5,411
32.	बीकानेर	3,195	4,153
	सम्पूर्ण राजस्थान	54,74,881	71,17,345

1. समंक स्रोत – भारत सरकार जनगणना कार्य निदेशालय राजस्थान।

2. * सन् 2001 जनगणना के समंक अन्तिम है।

3 1991 के पश्चात् बने 5 नए जिलों की आदिवासी जनसंख्या (मूल व नए जिले) दोनों के मध्य समानुपातिक रूप से पुनर्वितरित।

9. राजस्थान में आदिवासी साक्षरता

साक्षरता के मामले में आदिवासी बहुत पिछड़े हुए हैं। इसी कारण उनको सरकारी कल्याण योजनाओं की जानकारी नहीं हो पाती तथा उनके क्षेत्रों में कार्यरत ठेकेदार, व्यापारी, सरकारी कर्मचारी और सूदखोर उनका शोषण करते हैं। राजस्थान में साक्षरता दर 1991 में 38.55% थी और यह सरकारी प्रयासों व जनजागृति से बढ़कर 2001 में 61.03% हो गई। राजस्थान में 2001 की जनगणना के अनन्तिम समंकों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष साक्षरता 73% है तथा महिला साक्षरता मात्र 38 प्रतिशत है। साक्षरता अभियानों को इन क्षेत्रों में समर्पित भाव से चलाने की जरूरत है।

सारणी संख्या 2.8

साक्षरता दर भारत व राजस्थान

1991	भारत 1991	2001	राजस्थान 1991	2001
कुल साक्षरता	52.12	65.38	38.55	61.03
पुरुष साक्षरता	64.1	75.85	34.99	76.46
महिला साक्षरता	39.3	54.16	20.44	44.34

स्रोत–भारत की जनगणना 1991 व 2001, भारत सरकार जनगणना कार्य निदेशालय, राजस्थान, जयपुर

सारणी संख्या 2.9

आदिवासी साक्षरता दर (1991) राजस्थान

	व्यक्ति	पुरुष	महिला
कुल	19.44	33.29	04.42
नगरीय	44.50	62.19	21.85
ग्रामीण	18.20	31.74	63.64

(टिप्पणी–1. तुलना हेतु 2001 की जनगणना के आदिवासी साक्षरता समंक 30-6-2002 तक उपलब्ध नहीं हो पाए हैं) (2) समंक स्रोत–पोर्टेट ऑफ पापुलेशन 1991 भारत की जनगणना–राजस्थान

राजस्थान की 1991 की साक्षरता दर 38.55% थी। इसी जनगणना के अन्तर्गत राजस्थान की आदिवासी साक्षरता दर मात्र 19.44% थी। राजस्थान महिला साक्षरता 20.44% की तुलना में आदिवासी महिला साक्षरता 4.42% है, जो अत्यन्त शोचनीय है। ग्रामीण आदिवासी महिलाओं की साक्षरता दर तो और भी कम मात्र 3.64% है। महिला साक्षरता पर तो और अधिक ध्यान दिया जाना जरूरी है; विशेष तौर पर ऐसे आदिवासी क्षेत्रों में जहाँ पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का अनुपात अधिक है। उदाहरणार्थ, 2001 के जनगणना समंकों के अनुसार राजस्थान का सर्वाधिक स्त्री–पुरुष अनुपात आदिवासी बहुल जिले डूंगरपुर में है जहाँ प्रति 1000 पुरुषों की तुलना में 1027 स्त्रियाँ हैं

राजस्थान की आदिवासी साक्षरता के अवलोकन तथा उसे मुख्य जनजातियों मे साक्षरता की दर को अलग-अलग आकलित किया जाए तो निश्चित रूप से आदिवासी साक्षरता दर का 50% से अधिक भाग एकमात्र जनजाति मीणा आदिवासियों की साक्षरता का होगा। बाकी जनजातियों की दशा अत्यन्त गंभीर है जो सरकार के लिए चुनौती है। यह हकीकत है कि जनजातीय विकास विभाग की स्थापना के पश्चात से अब तक आदिवासी साक्षरता हेतु गंभीर प्रयास नहीं हुए। आदिवासी छात्र-छात्राओं के लिए तो शिक्षा सम्बन्धी योजनाऐं बनी हैं पर वयस्क व वृद्ध आदिवासी पुरुष व महिलाओं में साक्षरता का अलख जगाने का वृहत् प्रयास नहीं हुआ जो अति आवश्यक है।

वर्तमान में चल रही आश्रमविद्यालय योजना निःसन्देह बहुत ही अच्छी योजना है-जिसे चलाये रखने की जरूरत है। साथ ही इसमें प्रवेश हेतु नियमों में ढील देने की भी जरूरत है ताकि आगे पढ़ने के सभी इच्छुक आदिवासी छात्र-छात्राऐं इससे लाभान्वित हो सकें।

राजस्थान सरकार के जनजातीय विकास विभाग व शिक्षा विभाग को चाहिए कि आदिवासी साक्षरता व शिक्षा के प्रचार प्रसार हेतु युद्ध स्तर पर समन्वित प्रयास शुरू करें। आदिवासी महिला साक्षरता पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। प्राथमिक से महाविद्यालय स्तर तक सभी आदिवासी बालक-बालिकाओं को शिक्षण शुल्क मुक्ति के साथ ही किताबें, कॉपियाँ तथा यूनिफार्म भी मुफ्त दी जानी चाहिए तथा उन्हें पर्याप्त राशि की छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए ताकि वे अपने खाने व आवास के खर्च का भुगतान कर सकें।

वर्तमान में जनजातीय विकास विभाग छात्र-छात्राओं को विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए कोचिंग दिलवा रहा है जो अत्यन्त ही सराहनीय कार्य है। साक्षरता बढ़ाने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों के आदिवासी महिला पुरुष दोनों को ही अक्षर ज्ञान कराना जरूरी है। इस अभियान में विद्यालयों के शिक्षकों की ग्रीष्मावकाश के दौरान सेवाऐं ली जा सकती हैं। साक्षरता के इस अलख से आदिवासियों में जागृति आयेगी और उन्हें विभिन्न वर्गों के शोषण से भी मुक्ति मिलेगी।

राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत ने 26 जून, 2002 को आयोजित ''जिलाधीश सम्मेलन'' में ''शिक्षा आपके द्वार'' योजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने पर बल दिया। इस योजना में स्कूल नहीं जा पा रहे 23 लाख बच्चों (18 लाख ग्रामीण 5 लाख शहरी) को मार्च, 2003 तक पढ़ाने के लिए सेवानिवृत्त अध्यापकों व गैर सरकारी संगठनों, अनुदान प्राप्त निजी विद्यालयों की सेवाऐं ली जाऐंगी। आशा है इस योजना को तहेदिल से लागू करने पर आदिवासी साक्षरता में काफी वृद्धि होगी।

□□□

तृतीय अध्याय

राजस्थान में आदिवासी विकास कार्यक्रम

1. स्वतंत्रता से पूर्व की स्थिति

अंग्रेज सरकार की नीति थी कि आदिवासी और आदिवासी क्षेत्रों को ज्यों का त्यों रखा जाए। जागीरदार अपने क्षेत्र या जागीर को सुरक्षित रखने के लिए आदिवासियों द्वारा अपने शोषण या बेगार के विरुद्ध आवाज उठाने पर ब्रिटिश सेना का सहारा लेने में नहीं हिचकते थे।

इस प्रकार स्वतंत्रता से पूर्व आदिवासी सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक पिछड़े हुए थे। ब्रिटिश काल में देश के अन्य भागों की भाँति उनके क्षेत्रों में रहने वाले साहूकारों व जागीरदारों ने उनका शोषण करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। परन्तु हमेशा ही जिन्दगी के आकाश में निराशा के काले बादल नहीं छाए रहते। उस काल में भी कुछ ऐसे समाजसेवी पैदा हुए, जिन्होंने अपना जीवन जनजातियों के उत्थान व कल्याण हेतु समर्पित कर दिया और उनके अधिकारो के लिए अंग्रेज सरकार से लोहा लिया। गुरु गोविन्द गिरी ने आदिवासियों की सेवा हेतु 1883 में सम्प सभा की स्थापना की। इस संस्था के माध्यम से उन्होंने मेवाड़, डूगरपुर, ईडर, गुजरात, विजयनगर और मालवा के भीलों और गरासियों को सगठित किया। उन्होंने एक ओर इन जातियों में व्याप्त सामाजिक बुराइयों और कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया तो दूसरी ओर इनको अपने मूलभूत अधिकारों का अहसास कराया।

इस प्रकार से मोतीलाल तेजावत ने मेवाड़ में एक्की आन्दोलन की शुरूआत के साथ आदिवासियों को बेगार तथा सरकार और जागीरदार द्वारा उठाए जाने वाले जुल्मों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने भीलों का विशाल सम्मेलन भी किया फलतः उन्हें तत्कालीन राज्य सरकारों के जुल्मों का सामना करना पड़ा। उन्होंने 1921 में झाड़ोल, कोटड़ा, मादड़ी आदि क्षेत्रों के भीलों को जागीरदारों द्वारा ली जाने वाली बैठ बैगार और लागबागों के प्रश्न को लेकर संगठित किया। आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में आदिवासियों में जनजागृति लाने, उनकी शिक्षा हेतु प्रयास करने और उनमे व्याप्त कुरीतियो को मिटाने का प्रयास

स्वतंत्रता से पूर्व भी भोगीलाल पण्ड्या, माणिक्य लाल वर्मा, बलवन्त सिंह मेहता हरिदेव जोशी, शोभालाल गुप्ता व गौरी शंकर उपाध्याय ने निष्ठा से किया।

इस प्रकार देश की आजादी से पूर्व इन समाज सेवियों के अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार या जमींदारों या जागीरदारों द्वारा अपने क्षेत्र के आदिवासियों को सहायता देना तो दूर रहा, उनका बुरी तरह शोषण किया और उन्हें अपने हाल पर छोड़ दिया गया।

2. स्वतंत्रता के पश्चात (1947 से 1951 तक)

देश ने हजारों शूरवीरों के बलिदान स्वरूप आजादी पाई परन्तु आदिवासियों के पास आजादी की किरण नहीं पहुंची। वे अभी भी सामन्तशाही की बेड़ियों में जकड़े रहे। जब राजस्थान का एकीकरण हुआ और जमींदारों व जागीरदारों के हाथों से शक्तियाँ छिन गई तो आदिवासियों ने चैन की सांस ली। अब भले ही उनकी सहायता करने वाला भी कोई भी न हो, परन्तु उनको प्रताड़ित करने वाला भी कोई नहीं था। देश ने आजादी तो पा ली किन्तु विभाजन के फलस्वरूप देश की अर्थव्यवस्था लड़खड़ा गई। संक्रमण की ऐसी स्थिति में आदिवासियों के विकास पर ध्यान नहीं दिया जा सका।

3. पंचवर्षीय योजनाओं में आदिवासी विकास कार्यक्रम

(i) प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-52 से 1955-56 तक)

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अनुसूचित जनजातियों का आर्थिक व शैक्षणिक विकास करने के प्रयास मूर्तरूप उचित ढंग से नहीं ले पाए। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुछ भी विशिष्ट नहीं किया जा सका; क्योंकि अनुसूचित जाति जनजातियों के लिए जो कल्याण योजनाएँ बनाई गई थीं वे योजना में शामिल नहीं की गई। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुल योजना व्यय 1960 करोड़ रुपये हुआ था, जिसका मात्र 1 प्रतिशत अर्थात् 19.33 करोड़ रु. ही आदिवासी विकास कार्यक्रमों पर खर्च किया गया। इस खर्च को करते समय कोई विशिष्ट योजना नहीं बनाई गई थी, फलत: इससे आदिवासियों को कितना लाभ पहुँचा, कुछ कहा नहीं जा सकता। यह धनराशि सम्पूर्ण भारत में स्थित आदिवासियों के विकास पर व्यय की गई थी। अत: राजस्थान को, जहां तुलनात्मक रूप से आदिवासी जनसंख्या कम है, कम हिस्सा मिला।

(ii) द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-57 से 1960-61 तक)

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में बहुद्देशीय विकास परियोजनाओं की शुरुआत

सामुदायिक विकास परियोजनाओं के साथ ही हुई। आदिवासी विकास की दशा मे सक्रिय प्रयास द्वितीय पंचवर्षीय योजना से ही शुरू किए गए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 1956 में सघन विकास खण्डों की स्थापना हेतु 6.42 करोड़ रुपये स्वीकृत किए गए जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण भारत में 43 प्रखण्ड स्थापित किए जाने थे। इस प्रकार राजस्थान में पहला प्रखण्ड बाँसवाड़ा जिले के कुशलगढ़ में (बहुउद्देशीय जनजाति प्रखण्ड) नाम से खुला।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कुल योजना व्यय 4672 करोड़ रुपये हुआ जिसका 9 प्रतिशत अर्थात् 42.92 करोड़ रुपये जनजाति विकास कार्यक्रमों पर भारत भर में व्यय किया गया। राजस्थान में जनजाति बाहुल्य क्षेत्र (जनजाति उपयोजना क्षेत्र) में विभिन्न योजनाओं पर द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 5 84 करोड़ रुपये व्यय किया गया। इस योजना के अन्तर्गत विभिन्न कानून बनाकर आदिवासियों के शोषण से छुटकारा दिलाने का प्रयास भी किया गया। कृषि ऋणग्रस्तता में छूट अधिनियम (राजस्थान) 1957 के अन्तर्गत आदिवासी उनके उन ऋणों से छूट पा सकते हैं, जिनका मूलधन उन्होंने ब्याज के रूप में चुका दिया है, अथवा वे ऋण जो उनके नाम गलत ढंग से चढ़ा दिए गए हैं। आदिवासियों को उनकी भूमि से बेदखल होने से रोकने के लिए भी कानून बनाया गया।

(iii) तृतीय पंचवर्षीय योजना : (1961-62 से 1965-66 तक)

तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत भर में 450 जनजाति विकास प्रखण्ड खोले गए। इनमें से 13 प्रखण्ड राजस्थान में शुरू किए गए। इनके नाम इस प्रकार से हैं :- 1. कुशलगढ़ (बांसवाड़ा) 2. मुखिया (बांसवाड़ा) 3 पीपलखूंट (बांसवाड़ा) 4. सज्जनगढ़ (बांसवाड़ा) 5. बांसवाड़ा 6. खेरवाड़ा (उदयपुर) 7. कोटड़ा (उदयपुर) 8. डूंगरपुर 9. सागवाड़ा (डूंगरपुर) 10. बिछिवाड़ा (डूंगरपुर) 11. आसपुर (डूंगरपुर) 12. प्रतापगढ़ (चित्तौड़गढ) 13. सीमलवाड़ा (डूंगरपुर)। तृतीय पंचवर्षीय योजना में भारत सरकार ने जनजाति विकास कार्यक्रम पर 50.53 करोड़ रुपये व्यय किये गए जो कुल योजना व्यय 0 6 प्रतिशत था। इस प्रकार द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस योजना पर 7 61 करोड़ रुपये अधिक व्यय किए गए परन्तु कुल योजना व्यय में जनजाति विकास कार्यक्रमों पर किए जाने वाले व्यय का प्रतिशत 0.9 से घटकर 9.6 रह गया। राजस्थान में जनजाति उपयोजना क्षेत्र में तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 9 3[illegible] करोड रुपये व्यय किए गए

तृतीय पंचवर्षीय योजना में जनजाति उपयोजना क्षेत्र में विभिन्न क्षेत्रो में आदिवासी विकास कार्यो हेतु धनराशि इस प्रकार व्यय की गई:-

सारणी संख्या 3.1

जनजाति उपयोजना क्षेत्र, क्षेत्रानुसार व्यय

(तृतीय पंचवर्षीय योजना)

क्षेत्र		राशि करोड़ रु.	प्रतिशत
1.	कृषि व सम्बद्ध सेवाऐं	1.66	17 8
2.	सहकारिता	1.08	11.6
3.	सिंचाई व विद्युत्	3.11	33.3
4.	उद्योग व खनन	0.16	1.7
5	यातायात व संचार	0.76	8.1
6	सामाजिक व सामुदायिक सेवाएँ	2.46	26.4
7	आर्थिक सेवाऐं	0.01	0.1
8	सामान्य सेवाऐं	0.09	1.0
	योग	9.33	100.00

स्रोत : माणिक्य लाल वर्मा जनजाति शोध संस्थान उदयपुर द्वारा शोधार्थियों की सहायता हेतु बनायी गयी सारणी।

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक धनराशि सिंचाई व विद्युत् सुविधाऐं उपलब्ध कराने पर व्यय की गई। द्वितीय प्राथमिकता सामाजिक व सामुदायिक सेवाऐं उपलब्ध कराने पर व्यय की गई (26.4 प्रतिशत)। तीसरे स्थान पर कृषि व सम्बद्ध सेवाऐं आती हैं, जिन पर कुल धनराशि का 17 8 प्रतिशत व्यय किया गया। सहकारिता संबंधी गतिविधियों पर किया गया व्यय का 11 6 प्रतिशत रहा जिसे चतुर्थ प्राथमिकता मिली।

(iv) चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-70 से 1973-74 तक)

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में राजस्थान सरकार ने 38 जनजातीय विकास प्रखण्ड चलाने का प्रस्ताव रखा। चौदह प्रखण्ड तो पहले से ही चालू थे। 24 प्रखण्ड इस योजना के दौरान शुरू किए जाने थे। परन्तु 1968 तक राजस्थान मे 18 जनजातीय विकास प्रखण्ड ही कार्य कर रहे थे। शेष किन्हीं कारणोवश नहीं खुले इस योजना के अन्तर्गत कुल योजना व्यय 15902 करोड रुपये का 0.5

प्रतिशत अर्थात् 75 करोड़ रुप्ये मात्र ही जनजाति विकास कार्यक्रमों पर व्यय किया गया। इस प्रकार पहली पंचवर्षीय योजना से लेकर चतुर्थ पंचवर्षीय योजना तक जनजाति विकास कार्यक्रमों पर व्यय की जाने वाली धनराशि तो बढ़ती गई, किन्तु कुल योजना व्यय में जनजाति विकास कार्यक्रमों पर किए गए व्यय का प्रतिशत घटता गया।

राजस्थान में जनजाति उपयोजना क्षेत्र में चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में 10.64 करोड़ रुपये की धनराशि व्यय की गई। यह धनराशि इस क्षेत्र में सिंचाई व विद्युत् निर्माण, कृषि उत्थान, सामाजिक व सामुदायिक सेवाओं, उद्योगों व खनन कार्यो, आर्थिक व सामान्य सेवाऐं प्रदत्त करने व सहकारिता कार्यक्रमों के विकास पर व्यय की गई।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना से पहले अनुसूचित जनजातियों का विकास कार्य अर्थव्यवस्था के सामान्य क्षेत्रों के सम्पूर्ण विकास प्रयासों का ही एक हिस्सा था फलत: आदिवासियों के विकास पर बहुत कम धनराशि व्यय की गई। उनके लिए कोई विशिष्ट योजनाऐं नहीं बनाई गईं।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत जनजाति उपयोजना क्षेत्र राजस्थान में क्षेत्रानुसार किया गया व्यय इस प्रकार रहा:

सारणी संख्या 3.2

जनजाति उपयोजना क्षेत्र : क्षेत्रानुसार व्यय चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

क्षेत्र		राशि करोड़ रु.	प्रतिशत
1	कृषि व सम्बद्ध सेवाऐं	1.08	10.15
2	सहकारिता	0.30	2.81
3	सिंचाई व विद्युत्	4.99	46.90
4.	उद्योग व खनन	0.95	8.92
5	यातायात व संचार	0.50	4.70
6	सामाजिक व सामुदायिक सेवाएँ	2.81	26.40
7	आर्थिक सेवाऐं	0.02	0.02
8	सामान्य सेवाऐं	0.01	0.10
	योग	10.66	100.00

स्रोत : माणिक्य लाल वर्मा जनजाति शोध केन्द्र, उदयपुर द्वारा शोधार्थियों की सहायता हेतु बनायी गयी सारणी

सारणी के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 46.90 प्रतिशत धनराशि सिंचाई व विद्युत सुविधाओं के निर्माण पर व्यय की गई ताकि आदिवासी क्षेत्र मे कृषि कार्यों को आधार मिल सके। द्वितीय महत्व सामाजिक व सामुदायिक सेवाओं को दिया गया। इसके अन्तर्गत विद्यालय व चिकित्सा केन्द्र इत्यादि खोले गए। तृतीय वरीयता कृषि व सम्बद्ध सेवाओं को दी गई, जिन पर कुल योजना व्यय की 10.15 प्रतिशत धनराशि व्यय की गई। चतुर्थ वरीयता आदिवासी क्षेत्र में उद्योगों व खनन कार्यों के विकास को दी गई जिस पर कुल योजना व्यय की 8 92 प्रतिशत धनराशि व्यय की गई।

(v) पंचम पंचवर्षीय योजना (1974-79 तक)

पांचवीं पंचवर्षीय योजना में जनजाति विकास योजना का आरम्भ किया गया। जनजाति विकास योजना का मूल लक्ष्य आदिवासी बहुल क्षेत्रों का विकास करना था। इस नीति के माध्यम से सरकारी विभागों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया कि आदिवासियों की जनसंख्या के आधार पर राज्य में आदिवासी क्षेत्रो के लिए अलग से धनराशि आवंटित की जाऐं।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना के मंतव्य में यह स्पष्ट उल्लेख किया गया कि देश के विभिन्न भूभागों में निवास करने वाली जनजातियों के समुदायों की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ, उनका शैक्षणिक स्तर तथा जनसंख्या का वितरण और समस्याऐं एक समान नहीं हैं और इसलिए सभी क्षेत्रों के विकास के लिए समान नीति नहीं अपनाई जा सकती है।

अतः राष्ट्रीय स्तर पर पांचवीं पंचवर्षीय योजना काल में जनजाति विकास की बुनियादी रूपरेखा में अनेक संशोधन किए गए। आदिवासी बहुल भौगोलिक क्षेत्रों में विकास का आधार क्षेत्रीय विकास को बनाया गया। उसी के अनुसार इन क्षेत्रों और अन्य सामान्य क्षेत्रों के बीच की विषमताओं व अन्तर को दूर करने और आदिवासियों के जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार के लिए राजस्थान में भी आदिवासी विकास की व्यूह-रचना में संशोधन किया गया। परिणामस्वरूप राजस्थान में 1976-77 में जनजाति उपयोजना क्षेत्र, 1977-78 में सहरिया विकास परियोजना क्षेत्र और 1978-79 में परिवर्तित क्षेत्रीय विकास उपागमन परियोजना क्षेत्र बनाए गए।

आदिवासी बाहुल्य जिलों-बांसवाड़ा, डूंगरपुर, चित्तौड़गढ़, उदयपुर और सिरोही जिलों की 23 पंचायत समितियों को मिलाकर 1974 में जनजाति उपयोजना

क्षेत्र घोषित किया गया। इसमें डूंगरपुर और बांसवाड़ा सम्पूर्ण जिले हैं तथा उदयपुर, सिरोही व चित्तौड़गढ़ के आंशिक क्षेत्र आते हैं। उदयपुर जिले में 6 तहसीलें (कोटड़ा, झाड़ोल, धरियावद, सराड़ा, सलूम्बर, खेरवाड़ा) तथा गिर्वा ब्लाक के 81 गांव आते हैं। चित्तौड़गढ़ जिले की प्रतापगढ़ और अरनोद तहसीलें इस उपयोजना क्षेत्र में हैं तथा सिरोही की आबू रोड़ तहसील इस क्षेत्र में सम्मिलित की गई है।

19571 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के विस्तृत जनजाति उपयोजना क्षेत्र में कुल 4409 ग्राम हैं। 1981 की जनगणना के अनुसार राजस्थान की कुल जनजाति संख्या 48.13 लाख है, जिसमें से 44.03 प्रतिशत या 18.30 लाख जनजाति जनसंख्या उपयोजना क्षेत्र की इन 23 पंचायतों में निवास करती है।

जनजाति उपयोजना क्षेत्र की कुल जनसंख्या 27.57 लाख में से आदिवासियों की संख्या 66.40 प्रतिशत है, जबकि यह भू क्षेत्र राजस्थान के कुल क्षेत्रफल का 6 प्रतिशत ही है। जनजाति उपयोजना क्षेत्र में साक्षरता 1981 की जनगणना के अनुसार मात्र 16.38 प्रतिशत 24.38 से बहुत कम है। इस भू-भाग में सर्वाधिक साक्षरता 20.97 प्रतिशत प्रतापगढ़ क्षेत्र में है, जबकि सबसे कम 10.03 प्रतिशत आबू रोड़ क्षेत्र की है। इसकी कुल आदिवासी जनसंख्या में मात्र 28.38 प्रतिशत जनसंख्या की कार्यशील है जो कि राजस्थान की कुल जनसंख्या के प्रतिशत 30 48 से कुछ ही कम है। कार्यशील जनसंख्या में महिलाओं की तुलना में पुरुषों का सापेक्षित प्रतिशत अधिक है, क्योंकि जनजाति उपयोजना क्षेत्र की कुल पुरुष जनसंख्या का 49.82 प्रतिशत और महिला जनसंख्या का 6.65 प्रतिशत ही कार्यशील जनसंख्या की श्रेणी में आता है, लेकिन अब स्थिति काफी बदल रही है। महिलाऐं बडी संख्या में खेती-बाड़ी के काम के अतिरिक्त शहरों और कस्बों में मकान निर्माण में मजदूरी, अन्य कार्यों में मजदूरी करने, सब्जी बेचने व दूध बेचने का कार्य भी करती हैं।

जनजाति उपयोजना क्षेत्र में जनसंख्या का औसत घनत्व 143 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है, जो राजस्थान के औसत घनत्व 100 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर की तुलना में कहीं अधिक है। इस पहाड़ी क्षेत्र में आदिवासियों की जिन्दगी काफी संघर्षशील रही है और अधिकतर आदिवासी गरीबी की सीमा रेखा से नीचे गुजार रहे हैं।

सारा क्षेत्र पहाड़ी हाने क कारण कृषि योग्य भूमि बहुत कम है और जहा कृषि योग्य भूमि है तो वहां पर पथरीली जमीन में सिंचाई की कोई सुविधा नहीं है। इस क्षेत्र में कृषि योग्य भूमि कुल भूमि की मात्र 24.9 प्रतिशत ही है जबकि सम्पूर्ण राजस्थान में कृषि योग्य भूमि कुल भूमि का 43 प्रतिशत है। स्पष्ट है कि पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण कृषि भूमि बहुत कम है। जनजाति उपयोजना क्षेत्र में पांचवीं पंचवर्षीय योजना में राजस्थान सरकार द्वारा 71.74 करोड़ रुपये व्यय किए गए, जबकि चतुर्थ पंचवर्षीय परियोजना में यह धनराशि मात्र 10.64 करोड़ रु. थी। इस प्रकार पहली बार आदिवासियों के बारे में गम्भीरता से सोचा गया।

पंचम पंचवर्षीय योजना में व्यय की गई धनराशि का क्षेत्रानुसार वितरण इस प्रकार है :

सारणी संख्या 3.3

जनजाति उपयोजना क्षेत्र – क्षेत्रानुसार योजना व्यय

पंचम पंचवर्षीय योजना

क्षेत्र		राशि करोड़ रु.	प्रतिशत
1.	कृषि व सम्बद्ध सेवाऐं	14.67	20.45
2.	सहकारिता	2.54	3.54
3.	सिंचाई व विद्युत्	41.61	58.01
4.	उद्योग व खनन	0.57	0.79
5.	यातायात व संचार	4.93	6.87
6.	सामाजिक व सामुदायिक सेवाएँ	7.04	9.81
7.	आर्थिक सेवाऐं	0.02	0.03
8.	सामान्य सेवाऐं	0.36	0.50
	योग	71 74	100.00

स्रोत : माणिक्य लाल वर्मा जनजाति शोध केन्द्र उदयपुर द्वारा शोधार्थियों की सहायता हेतु बनायी गयी सारणी।

सारणी में प्रस्तुत समंकों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि लगातार 5वीं पंचवर्षीय योजना में भी सर्वाधिक धनराशि सिंचाई व विद्युत् उपलब्ध कराने सम्बन्धी कार्यों पर खर्च की गई। इस योजना में 58.01 प्रतिशत धनराशि इस मद पर व्यय की गई जो कुल व्यय के आधे से भी अधिक है। कृषि व सम्बद्ध

सेवाओं पर किया गया व्यय 14.67 करोड़ रु. दूसरे स्थान पर रहा। सामाजिक व सामुदायिक सेवाओं पर किया गया व्यय 7.04 करोड़ रु. तीसरे स्थान पर रहा। इस योजना में आदिवासी क्षेत्र में यातायात व संचार साधनों के विकास पर भी जोर दिया गया और उसे चतुर्थ वरीयता दी गई। इस मद पर 4.93 करोड़ रु. व्यय किए गए।

(vi) षष्ठम पंचवर्षीय योजना (1980-85 तक)

छठी पंचवर्षीय योजना में बुनियादी सुविधाओं के विकास के बदले आदिवासी क्षेत्रों में रह रहे आदिवासियों के विकास पर जोर दिया गया।

छठी पंचवर्षीय योजना में राज्य के जनजाति उपयोजना क्षेत्र के विकास पर 287.37 करोड़ रुपये व्यय किए गए। इस व्यय का क्षेत्रानुसार वितरण इस प्रकार है:-

सारणी संख्या 3.4

जनजाति उपयोजना क्षेत्र : क्षेत्रानुसार योजना व्यय

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-81 से 84-85)

क्षेत्र		राशि करोड़ रु.	प्रतिशत
1.	कृषि व सम्बद्ध सेवाऐं	53.74	18.70
2.	सहकारिता	4.59	1.60
3.	सिंचाई व विद्युत	166.54	57.95
4.	उद्योग व खनन	12.09	4.21
5.	यातायात व संचार	11.63	4.05
6.	सामाजिक व सामुदायिक सेवाएँ	35.37	12.31
7.	आर्थिक सेवाऐं	0.10	0.03
8	सामान्य सेवाऐं	3.31	1.15
	योग	287.37	100.00

स्रोत : माणिक्य लाल वर्मा जनजाति शोध केन्द्र उदयपुर द्वारा शोधार्थियों की सहायता हेतु बनायी गयी सारणी।

सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि छठी पंचवर्षीय योजना में भी सर्वाधिक व्यय 166.54 करोड़ रु. (57.95 प्रतिशत) सिंचाई व विद्युत परियोजनाओं पर जनजाति उपयोजना क्षेत्र में किया गया। जनजाति उपयोजना क्षेत्र ग्रामों के

विद्युताकरण के मामले म पिछड़ा हुआ हे। अत. इस दृष्टिकोण स तथा पहाड़ी क्षेत्र में सिंचाई नहरों के निर्माण व अन्य साधनों के निर्माण में धीमी गति से प्रगति से कारण तृतीय से छठी योजना तक सिंचाई व विद्युत कार्य पर ही सर्वाधिक धनराशि व्यय की गई। द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ प्राथमिकता क्रमशः कृषि व गतिविधियों, सामाजिक व सामुदायिक सेवाओं, उद्योग व खनन को दी गई। यातायात व संचार को भी लगभग उद्योग व खनन के बराबर ही प्राथमिकता दी गई।

छठी पंचवर्षीय योजना में क्षेत्रीय विकास की योजनाऐं :-

छठी योजना में राजस्थान व गुजरात सरकार के सहयोग से बांसवाड़ा जिले मे माही नदी पर माही बजाजसागर बहुउद्देशीय परियोजना का निर्माण कार्य चला। इस योजना में बांसवाड़ा जिले की 80,000 हेक्टर अतिरिक्त कृषि भूमि का सिचाई की सुविधा हुई जिसमें से 44,000 हेक्टर भूमि आदिवासी परिवारों की है। चित्तौड़गढ़ जिले की आदिवासी बहुल तहसील प्रतापगढ़ के नांगलिया ग्राम के पास जाखम वृहद सिंचाई परियोजना से आदिवासियों की 14,000 हेक्टर भूमि सिचित क्षेत्र में आ गई। उदयपुर जिले की खेरवाड़ा तहसील में सोम नदी पर सोमकागदर सिंचाई परियोजना से 4873 हेक्टर आदिवासी कृषि भूमि सिंचित क्षेत्र मे आ गई। डूंगरपुर जिले की सोमकमला अम्बा सिंचाई परियोजना से आदिवासियो की 4384 हेक्टर कृषि भूमि में सिंचाई का लक्ष्य था जो पूरा हुआ।

इसके अतिरिक्त इस योजना में जनजाति उपयोजना क्षेत्र में ग्रामों को विद्युतीकृत करने, कुओं को बिजली देने, सड़कों के निर्माण का कार्य भी हुआ।

सामुदायिक सामाजिक सेवाऐं :- इस योजना में पशुपालन, सहकारिता, नए प्राथमिक विद्यालय खोलने प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना, समस्याग्रस्त ग्रामों में पेयजल उपलब्ध कराने तथा 'गरीबों को छप्पर' योजना के तहत आदिवासी परिवारों को आवास उपलब्ध कराने की प्राथमिकता दी गई।

व्यक्तिगत लाभ की योजनाओं में उन्नत बीजों का वितरण, रसायनिक उर्वरक वितरण, पौध संरक्षण, फल विकास (जिसमें 25 फलदार पौधे प्रत्येक आदिवासी कृषक को मुफ्त बांटे जाते हैं व उनकी सार संभाल हेतु प्रेरक राशि भी दी जाती है), रेशम कीट पालन, मुर्गीपालन, एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (अतिनिर्धन परिवारों का चयन कर उन्हें रोजगार या धन्धा शुरू करने हेतु ऋण व

अनुदान) बीड़ी निर्माण, सामाजिक सुरक्षा वानिकी कार्यक्रम (प्रतिवर्ष 2 हेक्टर भूमि चयनित कर आदिवासी परिवार को वन लगाने हेतु पौधों का नि:शुल्क निर्वाह भत्ता भी दिया जाता है। यह 15 वर्ष तक की प्रक्रिया है।) आदिवासी युवक-युवतियों हेतु औद्योगिक प्रशिक्षण व नर्सिंग प्रशिक्षण इस पंचवर्षीय योजना मे महत्वपूर्ण उपलब्धि रही।

(vii) सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90 तक)

सातवीं पंचवर्षीय योजना जनजाति उत्थान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कड़ी है। आदिवासियों के विकास के लिए सातवीं पंचवर्षीय योजना की नीति में निम्नलिखित उद्देश्य रखे गए :-

1. कृषि व उससे सम्बद्ध गतिविधियों, कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग व् लघु उद्योग क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाना।

2. व्यवसायोन्मुख शिक्षा, औपचारिक व अनौपचारिक दोनों की व्यवस्था करना।

3. भूमि हस्तान्तरण, काश्तकारी, ऋण देना, बंधुआ मजदूरी, ऋण बंधन, वनोद्योग व शराब की बिक्री में शोषण को समाप्त करना।

4. उत्पादन, गरीबी-रोधक व शोषण-रोधक कार्यक्रमों हेतु बुनियादी सुविधाओं की व्यवस्था करना।

5. आदिम जनजातियों, झूम कृषकों, सिंचाई परियोजनाओं के कारण विस्थापित आदिवासियों व आदिवासी महिलाओं की ओर विशेष ध्यान देना।

6. जनजाति पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार करना व उनके संसाधनो के स्तर में वृद्धि करना।

औद्योगिक क्षेत्रों व शहरी क्षेत्रों में रह रहे कमजोर आदिवासी समूहो के लिए सातवीं योजना में सामूहिक दृष्टिकोण अपनाकर सरकार ने आदिवासियों का तेजी से विकास करने का निर्णय किया है।

जनजाति उपयोजना में इस पंचवर्षीय योजना के तहत सर्वाधिक धनराशि उद्योग व खनन के विस्तार पर व्यय की गई। द्वितीय वरीयता सिंचाई व विद्युत को दी गई। तृतीय वरीयता कृषि व सम्बद्ध सेवाओं को दी गई।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में उच्च उत्पाद किस्म के बीजों से फसल उत्पादन, लघु सिंचाई परियोजनाओं, पशु चिकित्सालयों, डेयरी सहकारी समितियें की स्थापना, मत्स्य सहकारी समितियों की स्थापना व लघु उद्योग इकाइयो की स्थापना पर जोर दिया गया

ग्रामो मे पेयजल सुविधा आगनबाडी केन्द्रो की स्थापना केन्द्र, प्राथमिक विद्यालयों व माध्यमिक विद्यालयों को क्रमोन्नत करने कार्य तथा ग्रामीण विद्युतीकरण का लक्ष्य भी पूर्ण हुआ।

इस योजनावधि में आदिवासी विकास हेतु कुछ नए-नए कार्यक्रमों की भी शुरूआत की गई, जो इस प्रकार है :-

(i) सघन फल विकास :- प्रत्येक पंचायत समिति में 10 गांवों का समूह बनाकर 230 गाँवों में आम, नींबू, संतरा, आंवला, अमरूद आदि के 70,000 पौधे लगाए गए।

(ii) नारू उन्मूलन :- यूनीसेफ की सहायता से डूंगरपुर, बांसवाड़ा जिलों में नारू उन्मूलन कार्यक्रम चलाया गया। हेण्ड पम्प लगाए गए तथा बावड़ियों को कुओं में बदला गया।

(iii) कुऐं गहरे कराना :- आदिवासी कृषकों को विस्फोट से कुऐं गहरे कराने के लिए प्रति कुआँ 6 ब्लास्ट व 72 होल कराने का कार्य निःशुल्क किया गया।

(iv) मछुआरों हेतु दुर्घटना बीमा योजना :- मछुआरों के कल्याण हेतु समूह बीमा योजना शुरू की गई।

(v) विद्यार्थियों हेतु पुस्तक कोष योजना :- प्राथमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए प्रत्येक विद्यालय में पूरे पाठ्यक्रम के 10 सेट उपलब्ध कराये गये।

(vi) सोयाबीन कृषि कार्यक्रम :- सोयाबीन, अरण्डी व रतनजोत फसलों के लिए आदिवासियों को प्रेरित किया गया तथा उन्हें निःशुल्क बीज व रतनजोत की कटिंग्स का वितरण किया गया।

(vii) बचत समूह योजना :- यह योजना आदिवासियों को गांवों के महाजनों से ऊँची दरों पर ऋण लेने से बचाने के लिए शुरू की गई। इसके अन्तर्गत 50 आदिवासियों का दो समूह बनाया गया, प्रत्येक आदिवासी 30 रु. इस कोष को देता है और इस प्रकार कुल 1000 रु. का चौगुना जनजाति विकास विभाग उपलब्ध कराता है। इस तरह प्रत्येक समूह के पास ऋण देने के लिए 5000 रुपये हो गये हैं। उसमें प्रत्येक सदस्य को अधिकतम 400 रुपये का ऋण 12 प्रतिशत ब्याज पर दिया गया।

(viii) चेतना शिविर :- आदिवासियों के कल्याण के लिए नई योजनाये

बनाई जाती हैं पर उनकी जानकारी के अभाव में वे विभिन्न योजनाओं से लाभ नही उठा पाते। सामान्य कानूनी जानकारी के अभाव में कोई भी धोंस दिखाकर, डरा धमकाकर उनका शोषण कर लेता है, अतः इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हेतु चेतना शिविर और विभिन्न शिविर लगाये गये।

(ix) छात्र गृह :- गांवों से शहरों में पढ़ने के लिए आये 9वीं से 11वी तक के आदिवासी विद्यार्थियों की सुविधा हेतु 4 से 9 छात्रों का समूह बनाकर उन्हे दो कमरे किराये पर उपलब्ध कराये गये इस हेतु 30 रुपये प्रति विद्यार्थी प्रतिमाह अनुदान जनजाति विकास विभाग द्वारा दिया व शेष छात्रों द्वारा वहन किया गया।

(x) रुंख भायला :- आदिवासियों का वनों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है उनकी तो पूर्व जीविका ही वनों पर आधारित थी। धीरे-धीरे क्षेत्रों में काम कर रहे ठेकेदारों तथा अन्य लालचियों व भ्रष्ट वनकर्मियों की मिली भगत तथा आदिवासियों द्वारा स्वयं वनों की कटाई ने वनों का विनाश कर दिया अब केवल नंगी डूंगरियाँ ही दूर तक नजर आती हैं। वन लगाने हेतु प्रेरित करने के लिए दो पंचायतों के लिए एक रुंख भायला (वृक्ष मित्र) विभक्त किया गया। उसे तीन माह हेतु 200 रुपये प्रतिमाह दिए गये तथा 5,000 पौधों के लिए निःशुल्क विकास हेतु नर्सरी को विकसित करने की जिम्मेदारी दी गई ताकि वह आदिवासियों को वृक्षारोपण हेतु प्रेरित कर सके तथा पौधों का वितरण भी कर सके।

(viii) आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97 तक)

राजस्थान का जनजाति उपयोजना क्षेत्र अभी भी पिछड़ा हुआ है। कारण इस पर विशेष ध्यान दिया जाना अति आवश्यक हो गया है। आदिवासियों में कुपोषण, अशिक्षा, अधविश्वास जैसे लक्षण अभी भी विद्यमान हैं। जिन आदिवासियों के पास भूमि है, उसमें सिंचाई सुविधा न होने से तथा वैज्ञानिक तरीके इस्तेमाल न करने से प्रति हेक्टर उपज बहुत कम है। स्थायी रोजगार उपलब्ध न होने के कारण लोगों का जीवन स्तर बहुत नीचा है और गरीबी की परछाई सर्वत्र दिखाई देती है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के तहत जनजाति उपयोजना क्षेत्र के विकास हेतु निम्नलिखित उद्देश्य रखे गये :-

(1) "जनजाति उपयोजना क्षेत्र व गैर जनजाति क्षेत्र के मध्य विकास के अन्तराल को कम करना।

(2) साक्षरता की दर बढ़ाना, विशेषकर आदिवासी महिलाओ म ,

(3) आदिवासियों की आय का स्तर बढ़ाना।

(4) आदिवासियों में फैली सामाजिक बुराइयों व अंधविश्वासों को कम करना।''

आदिवासियों पर कर्ज की समस्या भी गम्भीर है, जिसके कारण उनका शोषण होता है।

इस पंचवर्षीय योजना में जनजाति विकास विभाग द्वारा कृषि विकास के अन्तर्गत पौध संरक्षण, कृषि कार्यों हेतु आदिवासियों को प्रशिक्षण, अधिक उत्पादन वाली फसलों के बीजों का वितरण, रेशम कीट पालन प्रशिक्षण, सिंचाई कार्यों में विस्फोट द्वारा कूपों को गहरा करना, सामुदायिक जलोत्थान सिंचाई परियोजनाऐं, एनीकट वाटर शेड निर्माण, जनजाति बस्ती विद्युतीकरण, शैक्षणिक योजनाओं में छात्रगृह किराया योजना, प्रतिमास छात्रवृत्ति योजना, आश्रम छात्रावासों का संचालन मुख्य रहा।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत आदिवासियों की शिक्षा पर अधिक जोर दिया गया; क्योंकि 1991 की जनगणना के अनुसार अखिल भारतीय स्तर पर अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता की दर मात्र 29.60 प्रतिशत थी, जो 1991 की भारतीय साक्षरता दर 52.12 प्रतिशत की तुलना में बहुत कम है।

इस योजना काल में अध्ययनरत छात्रों का सर्वेक्षण अखिल भारतीय स्तर पर किया गया।

सारणी संख्या - 3.5

विभिन्न स्तरों पर अध्ययनरत जनजाति छात्रों की स्थिति

प्राथमिक (कक्षा 1 से 5 तक)	93 लाख छात्र
माध्यमिक (कक्षा 6 से 9 तक)	25.56 लाख छात्र
बोर्ड	10.17 लाख छात्र
इंटर	3.82 लाख छात्र
स्नातक	1.63 लाख छात्र
अभियांत्रिक व चिकित्सा शिक्षा	11840 छात्र
एम.ए., एम. काम, एम.एस सी.	14580 छात्र
शोध कार्य (पी एच.डी. डिग्री हेतु)	720 छात्र

समंक स्रोत :- सलेक्टेड एजुकेशन स्टैटिक्स (30 सितम्बर, 1998) मानव संसाधन भारत नई दिल्ली

क जो अखिल भारतीय स्तर के हैं आँखें खोल देने वाले हैं,
ा हेतु सरकार द्वारा धनराशि कम किये गए के पश्चात् भी विद्याध्ययन
वासी बालकों को प्रेरित नहीं कर पाते हैं। अभी भी आदिवासियों के
ऩ घर पर बच्चा काम–काज करने में लकड़ी लाने, पशु चराने, पानी
की रखवाली करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जबकि स्कूल
ो जैसे गांठ से और खर्चने पड़ेंगे जो उनकी गांठ में बिल्कुल नहीं है
की नजर में प्राथमिकता नहीं है। इस मनोवृत्ति को बदलने की

चित जनजाति के अभ्यार्थियों को केन्द्रीय सेवाओं में रिक्तियो में
ग हैं। निम्नलिखित समंक जो आठवीं पंचवर्षीय योजनाकाल के
किये गये हैं, केन्द्रीय सेवाओं में अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधित्व

सारणी संख्या – 3.6
अखिल भारतीय स्तर पर केन्द्रीय सेवाओं में
अनुसूचित जनजातियों का प्रतिनिधित्व

वर्ष (1995)		
कुल अधिकारी/कर्मचारी	जनजाति के व्यक्ति	कुल का प्रतिशत
65,408	1891	2.89
108,857	2913	2.68
23,41,863	133179	5.69
1041082	67453	6.48

)
नुसूचित जाति व जनजाति, राष्ट्रीय आयोग, नई दिल्ली की रिपोर्ट वाल्यूम 1, वर्ष 1996)

क्त समंकों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सरकार द्वारा नौकरियों में
का भी आदिवासी पूरा लाभ नहीं उठा पाते हैं। राजस्थान में एकमात्र
ते है जो कि सरकारी नौकरियों को पाने के प्रति जागरूक है और
ारक्षण सुविधा का लाभ उठाया है। उपयुक्त समंकों के प्रथम श्रेणी
वाओं में 1891 में अधिकारियों में आधे से ज्यादा मीणा जनजाति के
। राजस्थान सरकार की सेवाओं में भी सही स्थिति है। सरकार को
रह अन्य जनजानियों जैसे भील भील मीणा कथोडी गरासिया

सहरिया, डामोर को भी सरकारी सेवाओं में आरक्षण सुविधा का लाभ उठाने के लिए तैयार करे और इनके लिए विद्यालय स्तर पर ही आदिवासी छात्रों को प्रेरित व मार्गदर्शन करने का कार्य करवाये। यह हर्ष की बात है कि अगली अर्थात् 9वी पंचवर्षीय योजना में राजस्थान सरकार ने इस ओर गंभीर प्रयास शुरू किए हैं।

(ix) नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002 तक)

(i) नवीं पंचवर्षीय योजना में राजस्थान सरकार के जनजाति विकास विभाग द्वारा रोजगार के अवसर पैदा करने व आदिवासियों में गरीबी उन्मूलन के लिए कृषि को प्राथमिकता दी गई। सुरक्षित पेयजल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना, प्राथमिक शिक्षा सभी के लिए सुनिश्चित करना तथा आदिवासियों का समग्र सामाजिक आर्थिक उत्थान कर उन्हें विकास की मुख्य धारा में शामिल करने का प्रयास रहा है।

(ii) नवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में बजट राशि सहायता व उपयोगिता में यथेष्ट वृद्धि की गई है :-

सारणी संख्या - 3.7

अनुसूचित जनजाति क्षेत्र विकास हेतु बजट राशि सहायता व उपयोगिता

1997-98	30.61 करोड़ रु.
1998-99	38.54 करोड़ रु.
1999-2000	38.21 करोड़ रु.
2000-2001	31.74 करोड़ रु.
2001-2002	69.09 करोड़ रु.

समंक स्रोत :- कमजोर वर्ग का कल्याण, निदेशालय सूचना व जनसम्पर्क, राजस्थान जयपुर।

(iii) अनुसूचित जनजाति के बालकों व सभी बालिकाओं हेतु प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क कर दी गई है। राज्य सरकार 15 से 40 रु. प्रतिमाह तक की 5 लाख अनुसूचित जाति व जनजाति के विद्यार्थियों हेतु पूर्व माध्यमिक छात्रवृत्ति दे रहा है साथ ही 424 माध्यमिक छात्रवृत्तियाँ 90 रु. से 425 रु. प्रतिमाह के बीच 1.30 लाख अनुसूचित जाति व जनजाति के विद्यार्थियों को प्रदान कर रही है।

(iv) जनजाति क्षेत्र विकास विभाग द्वारा संचालित छात्रावासों में प्रतिमाह

प्रति विद्यार्थी मैस भत्ते की दर 350 रु. से बढ़ाकर 675 रु. कर दी गई है। शाहाबाद, अटरू व टोंक में आदिवासी छात्राओं हेतु आवासीय विद्यालय चल रहे हैं।

(v) 6% से 12% प्रवेश सीटें आयुर्विज्ञान, अभियांत्रिकी व अन्य तकनीकी महाविद्यालयों में अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित की गई है।

(vi) विभिन्न प्रवेश परीक्षाओं की तैयारी हेतु अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों को विशेष नि:शुल्क कोचिंग राजस्थान सरकार प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा दिलवा रही है।

(vii) अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों को आरक्षण व अन्य योजनाओं से मिलने वाले लाभों को सुनिश्चित करने हेतु राजस्थान सरकार ने अनुसूचित जाति व जनजाति आयोग की स्थापना की है।

(viii) राजस्थान सरकार ने न्यूनतम मजदूरी में भी बढ़ोत्तरी की है। अकुशल मजदूरों को 44 रु. प्रति दिन से बढ़ाकर 60 रु. प्रतिदिन, अर्धकुशल मजदूरों को 47 रु. से बढ़ाकर 64 रु. प्रतिदिन व कुशल मजदूरों को 50 रु. से बढाकर 68 रु. प्रतिदिन कर दी है।

(ix) सहरिया आदिम जाति क्षेत्र में सरकारी नौकरियों में राजस्थान सरकार ने सहरिया आदिम जाति के लोगों हेतु 25% आरक्षण किया है।

(x) अकाल राहत कार्यों में रोजगार उपलब्ध कराते समय अनुसूचित जनजाति के लोगों व अन्य शोषित व वंचित लोगों व गरीबी की सीमा रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले श्रमिकों को प्राथमिकता दी गई है। 1 अप्रैल, 2000 से न्यूनतम दरों में की गई बढ़ोत्तरी के अनुरूप 60 रु. प्रतिदिन की दर से श्रमिकों को भुगतान किया गया।

(xi) माही नदी कमाण्ड क्षेत्र में बांसवाड़ा के आदिवासियों द्वारा पुराने चले आ रहे कब्जों का नियमन राजस्थान सरकार द्वारा कर दिया गया है। कब्जों के नियमन पर जिला स्तरीय समिति द्वारा अवधारित 15% दर पर नियमन का प्रावधान किया गया है।

(xii) अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों व संस्थानों को स्कूल, भवन, छात्रावास व सार्वजनिक उपयोग हेतु भवनों के निर्माण के लिए नि:शुल्क भूमि देने का प्रावधान किया गया है।

(v) कथोड़ी आदिवासियों हेतु कृषि प्रशिक्षण :- कथोड़ी व सहरिया आदिवासी सर्वाधिक पिछड़े हुए हैं। कथोड़ी आदिवासी वन उपजों के संग्रहण मे ही रुचि लेते हैं। अतः कथोड़ी आदिवासियों को कृषि करने हेतु प्रेरित करने के लिए उनको खेती की क्रियाओं, उन्नत बीजों, संतुलित खाद और पौध संरक्षण मे उपायों की जानकारी देने हेतु 2 दिवसीय प्रशिक्षण दिया जाता है जिसमें फसलों की पूर्ण जानकारी दी जाती है। पहला दो दिवसीय प्रशिक्षण बुवाई के समय दिया जाता है तथा दूसरा दो दिवसीय प्रशिक्षण खड़ी फसलों के समय दिया गया है जिसमें अंकुरण के पश्चात् की समस्त कृषि क्रियाओं की जानकारी दी जाती है। यह एक नवीनतम योजना है।

(vi) कथोड़ी आदिवासी कृषकों को बीज वितरण :- कृषि अनुसंधान केन्द्रों द्वारा तैयार मक्का, उड़द और अरहर की उन्नत किस्मों के जो बीज तैयार किए जाते हैं उन बीजों को इन्हें उपलब्ध कराया जाता है ताकि पैदावार में भी वृद्धि हो सके। कथोड़ी आदिवासी कृषकों के उत्थान हेतु मक्का व उड़द के बीजों के साथ उर्वरक व फसल संरक्षण कीटनाशकों का निःशुल्क वितरण किया जाता है ताकि फसलों का उत्पादन बढ़े और उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हो।

राजस्थान सरकार के उद्यान विभाग के माध्यम से संचालित योजनाऐं :-

(i) उन्नत सब्जियों के तहत क्षेत्रविस्तार योजना :- इस योजना के तहत .10 हेक्टर क्षेत्र में टमाटर, बैंगन, मिर्ची व भिण्डी के प्रदर्शन आयोजित किए जाते हैं जिससे आदिवासी प्रेरित होकर अपने आप खेतों में इनकी पौध लगाऐ, खुद भी सब्जी खाऐं तथा अधिशेष की बिक्री कर अपनी आय बढ़ाऐं। इस उपयोगी योजना को 2001-02 में न जाने क्यों समाप्त कर दिया गया, जबकि यह आदिवासी कृषकों में बहुत लोकप्रिय थी।

(ii) नई फसल प्रदर्शन :- आदिवासियों में मसाले वाली फसलो के उत्पादन को बढ़ाने के लिए .05 हेक्टर क्षेत्र में लहसुन, प्याज, अदरक, हल्दी व मेथी के प्रदर्शन आयोजित किया जाता है। प्याज व मेथी हेतु निःशुल्क बीज, खाद व कीटनाशी भी दिया जाता है। 2001-02 में यह योजना भी कर दी गई

(iii) रेशम कीट पालन व मशरूम उत्पादन कार्यक्रम :--जनजाति अनुसूचित क्षेत्र के आदिवासियों के लिए यह दोनों योजनाएँ बहुत लाभप्रद हैं। कृषक सामान्य फसलों की तुलना में इनसे तीन गुणा अधिक आमदनी कर सकता है। यह योजना वर्तमान में उदयपुर जिले में चलायी जा रही है।

रेशम उत्पादन से जुड़ी गतिविधियाँ जैसे शिशु रेशम कीटपालन, रेशम धागाकरण, शहतूत कटिंग, शहतूत नर्सरी उत्पादन, बांस उपकरण निर्माण आदि में आदिवासी बेहतर ढंग से अपने श्रम का योगदान कर रहे हैं। इसी तरह मशरुम उत्पादन भी है। रेशम उत्पादन कार्यक्रम के तहत जुड़े आदिवासी कृपकों को एक बार में 600 रु. फसल मुआवजा तथा 1500 रु. का बांस उपकरण अनुदान दिया जाता है।

(iv) कृषक प्रशिक्षण योजना--नई फसल प्रदर्शन व उन्नत सब्जियों के प्रदर्शन से लाभ उठाने वाले आदिवासी कृषकों को एक दिवसीय उद्यानिकी प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इसमें आदिवासी अपने खेतों में नई फसलें व सब्जियाँ बेहतरीन ढंग से उपजा सकेंगे।

(v) बैफ के माध्यम से उद्यान विकास--आदिवासी कृषकों का आर्थिक स्तर ऊँचा उठाने हेतु उनके खेतों पर फलदार पेड़ व खेते के चारों ओर मेड़ पर वानिकी पौधे लगाने हेतु निःशुल्क दिए जाते हैं। इससे उन्हें फल भी मिलते हैं तथा बड़े होने पर वानिकी पेड़ों के विक्रय से आमदनी भी हो जाती है।

(vi) कृषक मेला योजना--इस योजना के तहत विभिन्न फसलों तथा सब्जियों के प्रदर्शन स्थलों के निकट रबी व जायद की फसलों के दौरान मेला आयोजित किया जाता है ताकि कृषकों की जानकारी बढ़े और वे जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग द्वारा किए जा रहे कृषक उत्थान कार्यक्रमों से लाभान्वित हो सकें। प्रत्येक मेले में कम से कम 50 कृषकों को जानकारी देने का लक्ष्य रखा गया है।

पशुपालन विभाग के सहयोग से संचारित योजनाएँ--

(i) बैफ के माध्यम से कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों का संचालन--

आदिवासी कृषकों के पास उपलब्ध पशुओं की दूध देने की क्षमता, बढ़ाने, अच्छी नस्ल की उत्पत्ति हेतु उदयपुर, बांसवाड़ा व प्रतापगढ़ (चित्तौड) के पशुओं का कृत्रिम गर्भाधान करना व अच्छी नस्ल बनाना तथा दूध उत्पादन क्षमता बढ़ाना इसका मुख्य उद्देश्य है।

सिंचाई योजनाऐं–

(i) विस्फोटन द्वारा खेतों के कुओं को गहरा करना–

अल्पवृष्टि से और भू-जल स्तर के नीचे जाने से कुंओं का जलस्तर कम हो गया है ऐसे कुओं को गहरा कराने के लिए निर्धन आदिवासी को विभाग द्वारा वित्तीय सहायता दी जाती है। कुल कार्य का खर्च लगभग 8500 रु. आता है, जिसमें से लगभग 3250 रु. की आर्थिक सहायता विभाग द्वारा दी जाती है।

(ii) सामुदायिक जलोत्थान सिंचाई योजना–

आदिवासी कृषकों की जमीन टीलों व पहाड़ियों पर स्थित है तथा नदी नाले काफी नीचे बह रहे हैं। आदिवासी अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण इन उपलब्ध जन संसाधनों का उपयोग व्यक्तिगत रूप से करने में सक्षम नहीं है। ऐसे में सामुदायिक जलोत्थान सिंचाई योजनाएँ बनाकर कार्यान्वित की जाती है तथा योजना लागत का 90 प्रतिशत विभाग द्वारा वहन किया जाता है तथा 10 प्रतिशत लाभार्थी कृषकों से नकद/श्रम के रूप में वसूला जाता है। ऐसी कई योजनाएँ क्षेत्र में चल रही हैं।

(iii) एनिकट/वाटरशेड का निर्माण–

जनजाति उपयोजना क्षेत्र में बहने वाली नदी नाले अत्यधिक ढलाव होने से उनका वर्षा जल तीव्रगति से बहकर व्यर्थ चला जाता है। दूसरी ओर समीप के आदिवासी कृषकों की भूमि का कटाव होता है। अतः इस क्षति को रोकने के लिए एनिकट/वाटरशेड निर्माण की योजना चलाई जा रही है जिससे जल बहाव की गति पर नियंत्रण किया जाता हैं और जल का भण्डारण किया जाता है; साथ ही एनीकट में उपलब्ध जल का कृषक जलोत्थान योजना के माध्यम से लाभ भी लेते हैं। इस योजना का संचालन सामूहिक रूप से–सिंचाई विभाग, स्वच्छ परियोजना, भू–संरक्षण विभाग, पंचायत समिति, पहल परियोजना व जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के माध्यम से किया जा रहा है।

(iv) डीजल पम्पसेट का वितरण–

आदिवासी कृषकों द्वारा उनकी कृषि भूमि के पास उपलब्ध सतही जल व खेत के कुओं में उपलब्ध जल को खेतों तक पहुँचाने हेतु डीजल अथवा विद्युत पम्पसेट प्रदान करने का कार्य किया जाता है। योजना की राशि 20,000 रु है, जिसमें 10,000 रु. का अनुदान तथा शेष राशि कृषक स्वयं का वित्तीय संस्थाओं से ऋण के रूप में प्राप्त कर वहन करेगा।

विद्युत विभाग के माध्यम से संचालित योजनाऐं–

(i) कुटीर ज्योति योजना–गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले ग्रामीण दस्तकारों को केन्द्र सरकार की कुटीर ज्योति योजना के तहत एकल प्वाइन्ट विद्युत कनेक्शन प्रदान करने की यह योजना है। इसका क्रियान्वयन ग्रामीण विद्युतीकरण निगम द्वारा किया जाता है। इस कार्य हेतु अनुमानित लागत 1600 रु. प्रति कनेक्शन है जिममें से 1000 रु. प्रति कनेक्शन का अनुदान भारत सरकार द्वारा दिया जाता है तथा 600 रु. की राशि का अनुदान जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग देता है।

(ii) जनजाति बस्ती विद्युतीकरण–आदिवासी ग्राम से दूर फलों में (ऊंची पहाड़ी टेकरियों) रहते हैं जिससे गांव के विद्युतीकृत हो जाने पर भी इन्हे घरेलू विद्युत कनेक्शन का लाभ नहीं मिल पाता। 15-20 परिवारों की बस्ती होने पर इन्हें विद्युत की सुविधा प्रदान करने हेतु मुख्य ग्राम से जनजाति बस्ती तक विद्युत तंत्र स्थापित करने के लिए विभाग द्वारा आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी जाती है।

शैक्षणिक योजनाऐं :

(i) छात्रगृह किराया योजना–ऐसे आदिवासी छात्र/छात्राऐं जो माध्यमिक/उच्च माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा 9 से 12 तक तथा महाविद्यालयों में पढ़ते हैं तथा जिनको छात्रावास में स्थानाभाव के कारण आवासीय सुविधा नहीं मिल पाती है और वे किराये के मकान में रहकर नियमित अध्ययन करते हैं उन्हें 150 रु प्रतिमाह की दर से अधिकतम 10 माह हेतु मकान किराये का पुनर्भरण किया जाता है। 2 छात्रों के ग्रुप को भी यह सुविधा दी जाती है।

(ii) स्वयंपाठी आदिवासी छात्र/छात्राओं को परीक्षा शुल्क का पुनर्भरण योजना–ऐसे सभी छात्र-छात्राओं को जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण फीस नहीं भर पाते उन्हें 10वीं तथा 12वीं की परीक्षा व राजस्थान के विश्वविद्यालयों द्वारा आयोजित स्नातक व स्नातकोत्तर परीक्षा फीस भरने के लिए 270 रु. प्रति छात्र/छात्रा के हिसाब से आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। वर्ष 2001-02 में यह लाभदायक योजना बंद कर दी गई।

(iii) प्रतिभावान छात्रवृत्ति योजना–ऐसे आदिवासी प्रतिभावान छात्र-

छात्राऐं जिन्होंने राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित कक्षा 10 व 12वी की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की है उन्हें तथा विश्वविद्यालय में स्नातक व स्नातकोत्तर में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण छात्र-छात्राओं को प्रतिभावान छात्रवृत्ति दी जाती है।

इन्हें अगली कक्षा में प्रवेश लेने हेतु 250 रु. प्रतिमाह के हिसाब से अधिकतम 10 माह हेतु 2500 रु. वार्षिक एक समान छात्रवृत्ति दी जाती है।

(iv) छात्राओं को उच्च शिक्षा हेतु आर्थिक सहायता–आदिवासी छात्राओं को उच्च शिक्षा हेतु प्रोत्साहन देने के लिए यह योजना शुरू की गई। योजना का लाभ उन छात्राओं को मिलेगा जो अनुसूचित क्षेत्र की मूल निवासी हों और कॉलेज में अध्ययनरत हों। इस योजना के तहत प्रत्येक छात्रा को 250 रु प्रतिमाह की दर से 10 माह तक आर्थिक सहायता दी जाती है।

(v) आश्रम छात्रावासों के छात्रों हेतु पुस्तकें–इस योजना में आश्रम छात्रावासों में रहकर अध्ययन करने वाले छात्रों को पाठ्यपुस्तकें नि:शुल्क उपलब्ध करायी जाती हैं। प्रति छात्र/छात्रा 125 रु. औसत व्यय करने का प्रावधान है। छात्रों को यह सुविधा कक्षा 6 से 12 तथा छात्राओं को कक्षा 9 से 12 तक उपलब्ध है।

(vi) छात्रावासों में विशेष कोचिंग–आश्रम छात्रावासों के आवासीय छात्र/छात्राओं को कक्षा 10वीं में विज्ञान, गणित व अंग्रेजी तथा 12वीं कक्षा में कला वर्ग में विशेष अंग्रेजी व अनिवार्य अंग्रेजी; वाणिज्य व विज्ञान वर्ग में सभी ऐच्छिक विषयों व अंग्रेजी जैसे कठिन विषयों में कमजोरी दूर करने के लिए विषय से सम्बन्धित अध्यापकों की सेवाऐं लेकर कक्षाऐं लगायी जाती हैं। इसके तहत प्रतिवर्ष 500 रु. प्रतिमाह की दर से 6 माह तक देय है।

(vii) एकलव्य खेल छात्रावास का संचालन–आदिवासी छात्रों को खेलकूद हेतु प्रोत्साहित करने तथा उन्हें राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धाओं के लिए तैयार करने के उद्देश्य से 100 छात्रों की क्षमता का 'एकलव्य खेल छात्रावास' लोधा (बांसवाड़ा जिला) में प्रारंभ किया गया है। इस छात्रावास में विशेषज्ञों द्वारा तीरन्दाजी व ऐथलेटिक्स का विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें कक्षा 6 से 12वीं तक के खिलाड़ी बालकों को प्रवेश दिया जाएगा तथा इसमें आयु सीमा का कोई प्रतिबंध नहीं होगा।

(viii) आवासीय विद्यालयों के छात्र-छात्राओं के लिए खेलकूद

प्रतियोगिता उपयोजना क्षेत्र में संचालित आश्रम   के आवासीय छात्र छात्राओं के लिए अन्तर्जिला खेलकूद प्रतियोगिता (संभाग स्तर पर) आयोजित की जाती है। इसके लिए प्रतिवर्ष 1.50 लाख रु. की राशि स्वीकृति है। छात्र व छात्राओं के लिए अलग-अलग प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है।

प्रशिक्षण कार्यक्रम-

(i) बी. एड. विशेष बैच :- रोजगार के अवसरों में वृद्धि की दृष्टि से उपयोजना क्षेत्र के जनजाति छात्र/छात्राओं के लिए, बांसवाड़ा, उदयपुर व चित्तौडगढ जिलों में बी. एड. के विशेष बैच संचालित किये जा रहे हैं। प्रशिक्षण अवधि मे छात्रों को 150 रुपये प्रतिमाह की दर से वृतिका प्रदान की जा रही है तथा महाविद्यालय छात्र शुल्क, होस्टल शुल्क, पाठ्यपुस्तकें, डायरी व्यय आदि विभाग द्वारा वहन किये जाते हैं।

(ii) शारीरिक शिक्षण-प्रशिक्षण :- जनजाति के खिलाड़ियों हेतु रोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु उदयपुर जिले में बी. पी. एड. का एक बैच चलाया जा रहा है। प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण की अवधि में 150 रुपये प्रति माह की वृतिका की जाती है। महाविद्यालय शुल्क, परीक्षा शुल्क, यूनिफार्म तथा लेखन सामग्री का व्यय विभाग द्वारा वहन किया जाता है।

(iii) औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान :- जनजाति के युवकों को रोजगारोन्मुख व्यवसायों का प्रशिक्षण प्रदान कर उन्हें स्वरोजगार चलाने अथवा तकनीकी क्षेत्र में रोजगार के लिए तैयार करने के लिए तकनीकी शिक्षा निदेशालय के माध्यम से 14 से 30 वर्ष की आयु के युवकों को इंजीनियरिंग एवं गैर इजीनियरिंग में एक एवं दो वर्षीय प्रशिक्षण वेल्डर, प्लम्बर डीजल मैकेनिक, स्टेनो, हिन्दी एवं अंग्रेजी, फिटर, वायरमैन, इलेक्ट्रोनिक्स एवं रेडियो, टी वी आदि व्यवसायों में प्रशिक्षण देकर रोजगार एवं स्वरोजगार प्रारम्भ करने योग्य बनाया जाता है।

प्रशिक्षणरत छात्रों को 150 रुपये प्रतिमाह छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। उत्तीर्ण होने पर राष्ट्रीय/राज्यस्तरीय प्रमाण-पत्र भी प्रदान किये जाते हैं।

(iv) पशुधन सहायक प्रशिक्षण :- जनजाति के बेरोजगार युवकों को रोजगार उपलब्ध कराने की दृष्टि से उदयपुर में पशुधन सहायक प्रशिक्षण चलाया जा रहा है। इस प्रशिक्षण में 10 माह का प्रशिक्षण दिया जाता है। उपयोजना क्षेत्र के 50 जनजाति काश्तकारों को प्रतिवर्ष प्रशिक्षण दिये जाने का प्रावधान है।

(v) फूड क्राफ्ट प्रशिक्षण :- होटल व्यवसाय में प्रशिक्षण के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकार के सहयोग से संचालित फूड क्राफ्ट संस्थान के 4 व्यवसायों में जनजाति के युवक-युवतियों के लिए 20 अभ्यार्थियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था है। प्रशिक्षणरत छात्र-छात्राओं को 500 रुपये छात्रवृत्ति, फीस पुनर्भरण एव पुस्तकें उपलब्ध करायी जाती हैं। उत्तीर्ण होने पर प्राविधिक शिक्षा मण्डल राजस्थान, जोधपुर द्वारा प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाता है, जो कि रोजगार प्राप्ति के लिए मान्यता प्राप्त है।

(vi) जी. एन. एम. प्रशिक्षण-जी. एन. एम. प्रशिक्षण बाँसवाड़ा जिले के जिला चिकित्सालय के अधीन वर्ष 10+2 अथवा प्रथम वर्ष प्रशिक्षण प्राप्त की पात्रता के आधार पर दिया जाता है। यह प्रवेश निदेशक, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य राजस्थान जयपुर के माध्यम से होता है। स्टाइफंड के रूप में प्रश्म वर्ष में 250 रु , द्वितीय वर्ष में 260 रु. एवं तृतीय वर्ष में 270 रु. प्रतिमाह दिया जा रहा है। इस योजना की प्रशिक्षण अवधि 3 वर्ष है। प्रतिवर्ष 40 प्रशिक्षणार्थियों को लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा जाता है।

(ब) परावर्तित क्षेत्र विकास उपागमन (माडा) कार्यक्रम

माडा लघुखण्डों में व्यक्तिगत एवं सामुदायिक विकास के कार्यक्रम सचालित किये जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों में संचालन से माडा क्षेत्र में निवास कर रहे जनजाति परिवारों के आर्थिक स्तर को उसी क्षेत्र में निवास करने वाले गैर जनजाति परिवारों के समकक्ष लाने के प्रयास किये जा रहे हैं। आदिवासी लोगों के विकास के लिए अपनायी गई रणनीति में व्यक्तिगत लाभ की योजनाओं पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

(i) आश्रम छात्रावास-माडा क्षेत्र में 34 आश्रम छात्रावास संचालित किये जा रहे हैं।

(ii) शिक्षा प्रोत्साहन-जनजाति के अधिक के अधिक बालक-बालिकाओं को शिक्षा की ओर प्रवृत्त किये जाने हेतु माडा योजना में आश्रम छात्रावास के आदिवासियों हेतु पुस्तक वितरण कार्यक्रम चल रहा हैं।

(iii) पेयजल कार्यक्रम-पेयजल कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 2000-2001 में 20.49 लाख रुपये के बजट प्रावधान के विरुद्ध 25.49 लाख रुपये व्यय कर 57 हैण्डपम्प की स्थापना की जा चुकी हैं।

(iv) लघु सिंचाई–इस कार्यक्रम हेतु वर्ष 2000-01 हेतु कुल 165.78 लाख रु. आवंटन के विरुद्ध 147.99 लाख रु. व्यय किये गये हैं। विस्फोटन से कृषि कुऐं गहरे कराने हेतु 78.41 लाख रु. आवंटन के विरुद्ध 34.83 लाख रु व्यय कर 2650 लक्ष्यों के विरुद्ध 1938 की उपलब्धि अर्जित की गई है। एनीकट निर्माण मद अन्तर्गत 50.43 लाख रु. के विरुद्ध 98.07 लाख रु. व्यय किया गया। 4 एनीकट निर्माण किये गये हैं।

जलोत्थान सिंचाई योजना मद में 15.42 लाख रु. के विरुद्ध 2.00 लाख रु व्यय किए गये।

(v) एस. टी. सी., बी. पी. एड. व बी. एड.–एस. टी. सी. प्रशिक्षण में वर्ष 2000-2001 में 45 आशार्थियों की क्षमता के विरुद्ध 39 आशार्थियों को प्रशिक्षण दिया गया जिसके लिए कोई राशि का प्रावधान नहीं था फिर भी पूर्व बचत से 0.50 लाख रुपये व्यय किया गया है। इसी प्रकार 60 छात्रों के लिए बी एड प्रशिक्षण हेतु 9.61 लाख रुपये का प्रावधान रखा गया जिसके विरुद्ध 655 लाख रु. व्यय कर 38 छात्रों को प्रशिक्षण दिया गया। वर्ष 2001-2002 में एस. टी सी. प्रशिक्षण शिक्षा विभाग द्वारा बन्द कर दिया गया है। 60 छात्रों के बी. एड प्रशिक्षण हेतु 9.61 लाख रुपये का प्रावधान रखा गया है। हाल ही में 55 छात्रों को प्रवेश दिया गया है।

(स) सहरिया विकास कार्यक्रम

सहरिया विकास कार्यक्रमान्तर्गत वर्ष 2000-2001 में विशेष केन्द्रीय सहायता मद अन्तर्गत कुल 135.45 लाख रु. एवं राज्य योजना मद में 13.23 लाख रु. का वित्तीय प्रावधान रखा गया जिसके विरुद्ध क्रमशः 134.30 लाख रु. एवं 3.56 लाख रु. व्यय किये गये। वर्ष 2001-2002 में विशेष केन्द्रीय सहायता मद अन्तर्गत कुल 95.00 लाख एवं राज्य योजना मद में 52.73 लाख का वित्तीय प्रावधान रखा गया है। जिसके विरुद्ध दिसम्बर, 2001 तक क्रमशः 42.96 लाख एव 14.51 लाख रुपये का व्यय किया गया है।

(i) वर्ष 2000-2001 में रिवाल्विंग फण्ड में 50 व्यक्तियों को लाभान्वित करते हुए 0.96 लाख रु. का व्यय किया गया। वर्ष 2001-02 में 0.14 लाख रु का व्यय किया गया।

(ii) वर्ष 2000-2001 में 0.50 लाख रु. का व्यय कर 200 कृषकों को कृषि उपकरण वितरित किये गये।

(iii) कृषि ट्यूबवैल की स्थापना हेतु वर्ष 2000-2001 में 5.48 लाख के विरुद्ध 5.33 लाख रु. व्यय कर 5 ट्यूबवैल स्थापित किये गये, जिससे 25 कृषकों को लाभ हुआ।

(iv) वर्ष 2000-2001 में 9 आश्रम छात्रावासों का संचालन कर क्षमता के विपरीत 390 सहरिया जनजाति छात्र-छात्राओं को लाभान्वित किया गया। वर्ष 2001-2002 में सहरिया क्षेत्र में संचालित 9 आश्रम छात्रावासों में 300 छात्र-छात्राओं की क्षमता के विपरीत 413 सहरिया जनजाति छात्र-छात्राऐं शिक्षा, भोजन व आवासीय सुविधाओं आदि का नि:शुल्क लाभ ले रहे हैं।

सहरिया क्षेत्र में संचालित तीन छात्रावास, रैलावन, गरडा व वमनगंवा में छात्र क्षमता 25 से 50 की जाकर 75 अतिरिक्त छात्रों को प्रवेश दिया गया।

(द) माडा कलस्टर योजना

माडा कलस्टर क्षेत्र में जनजाति विकास की विभिन्न योजनाओं के लिए वर्ष 2000-2001 में 26.89 लाख रु. का प्रावधान किया गया था जिसके विरुद्ध 23.08 लाख रुपये व्यय किये गये। ब्लास्टिंग द्वारा कुंए गहरे कराने पर 1.96 लाख रुपये व्यय कर 58 जनजाति परिवार लाभान्वित किए गये। 8.43 लाख रुपये व्यय कर 16 हैण्डपम्प स्थापित किये गये। इसके अतिरिक्त 346 छात्राओं को उपस्थिति प्रोत्साहन एवं 803 जनजाति व्यक्तियों को अंशपूंजी अनुदान उपलब्ध कराया गया है।

(i) समाज कल्याण—वर्ष 2001-02 में इस कार्यक्रम में अन्तर्गत 393.50 लाख रु. का आवंटन किया गया जिसके विपरीत माह दिसम्बर, 2001 तक 86.74 लाख रु. व्यय किये गये। 5000 जनजाति छात्रों को पोस्ट मेट्रिक छात्रवृत्ति देने का लक्ष्य रखा गया जिसके विपरीत माह दिसम्बर, 2001 तक 1064 छात्रों को छात्र वृत्ति दी गई 7000 विकलांग व्यक्तियों को सहायता देने के लक्ष्य के विरुद्ध माह दिसम्बर, 2001 तक 2468 विकलांग व्यक्तियों को सहायता दी गई।

(ii) बीस सूत्री कार्यक्रम सूत्र संख्या 11 (बी) की प्रगति—बीस सूत्री कार्यक्रम के सूत्र संख्या (11 बी) के अन्तर्गत आदिवासियों को लाभान्वित करने की योजनाऐं शामिल हैं। वर्ष 2000-01 में 73000 परिवारों के लक्ष्यों के विपरीत 74374 परिवारों को लाभान्वित किया गया। अनुसूचित क्षेत्र में 47,374 परिवारो को लाभान्वित किया गया। अनुसूचित क्षेत्र में 47,954, मादा क्षेत्र 9503 माडा

कलस्टर क्षेत्र में 1273, बिखरी आबादी क्षेत्र में आवास योजना के अन्तर्गत 8828 परिवारों को लाभ किया गया है।

इस कार्यक्रम के लिए वर्ष 2001-02 में 73000 परिवारों को विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत लाभान्वित करने का लक्ष्य लिया गया है। जिसमें से माह दिसम्बर, 2001 तक 36965 (53.06%) परिवारों को लाभ मिला है। लाभान्वित परिवारों में से अनुसूचित क्षेत्र में 25933 माडा क्षेत्र में 6648 माडा कलस्टर क्षेत्र में 354 बिखरी आबादी क्षेत्र में 3433 एवं सहरिया में 597 परिवारों को लाभान्वित किया गया है।

(iii) आश्रम छात्रावास की सुविधा—जनजाति के छात्रों में शिक्षा के प्रति लगाव बढ़ाने एवं अभिभावकों को आर्थिक भार से मुक्त करने के उद्देश्य से जनजाति विकास विभाग द्वारा अनुसूचित क्षेत्र (जनजाति उपयोजना क्षेत्र) में 139 आश्रम छात्रावास (113 छात्रों हेतु तथा 26 छात्राओं हेतु) माडा क्षेत्र में 34 आश्रम छात्रावास (27 छात्रों हेतु व 7 छात्राओं हेतु) तथा सहरिया क्षेत्र में 9 आश्रम छात्रावास (6 छात्रों हेतु 3 छात्राओं हेतु) संचालित किये जा रहे हैं।

सभी आश्रम छात्रावासों हेतु उन्हीं छात्रों को प्रवेश मिलता है। जिनके निवास स्थान से डेढ़ कि. मी. की दूरी तक उस स्तर का विद्यालय नहीं है तथा जिस कक्षा में वह प्रवेश ले रहा है।

(य) बिखरी आबादी योजना

बिखरी आबादी योजना के अन्तर्गत वर्ष 2000-2001 में 140.15 लाख रुपये के आवंटन के विरुद्ध 170.16 लाख रु. व्यय कर 122 डीजल पम्पसेट वितरित किये, 507 कुँऐं गहरे कराये तथा 108 हैण्डपम्प लगाने के कार्य किये गये। छात्राओं हेतु उच्च शिक्षा प्रोत्साहन से 748 प्रतिभावान विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति से, 417 उच्च व्यावसायिक शिक्षा प्रोत्साहन में 198 अभ्यार्थियों को लाभान्वित किया गया है। 3496 व्यक्तियों को अंशपूंजी अनुदान से लाभान्वित किया गया है। 2001-2002 में प्रावधित की गई राशि 144.00 लाख रुपये के विरुद्ध माह दिसम्बर, 2001 तक 76.79 लाख रुपये व्यय किये गये हैं। जिससे 41 डीजल पम्पसेट वितरण, 145 कुऐं गहरे कराये, 53 हैण्डपम्प निर्माण एवं 2 एनिकट निर्माण के कार्य किये गये। छात्राओं हेतु उच्च शिक्षा प्रोत्साहन में 369 प्रतिभावान विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति से 251 छात्र/छात्राओं को लाभान्वित किया गया है। 2664 व्यक्तियों को अंशपूंजी अनुदान से लाभान्वित किया गया है।

सारणी संख्या - 3.8
जनजाति क्षेत्र विकास योजनाओं क्षेत्रवार प्रावधान व व्यय

(राशि लाख रु. मे)

क्र.सं.	मद क्षेत्र	वर्ष 2000-01		वर्ष 2001-02	
		आवंटन	व्यय	आवंटन	व्यय
1	विशेष केन्द्रीय सहायता				
	(अ) जनजाति उपयोजना	2451.60	1844.30	2088.00	1221.39
	(ब) परावर्तित क्षेत्र विकास उपागमन (माडा)	574.08	522.50	566.00	189.09
	(स) सहरिया विकास परियोजना	135.45	134.30	95.00	42.96
	(द) माडा क्लस्टर योजना	26.89	23.08	30.00	6.10
	(य) बिखरी जनजाति योजना	140.15	170.16	144.00	76.79
	योग विशेष केन्द्रीय सहायता	3328.17	2694.34	2923.00	1536.33
2	राज्य योजना	37.09	38.04	3040.00	201.45
3	केन्द्र प्रवर्तित योजना	-	-	17.16	0.97
	कुल योग	3365.26	2732.38	5970.16	1738 75

स्रोत : वार्षिक प्रशासनिक प्रतिवेदन 2001-02, जनजाति क्षेत्रीय विकास, उदयपुर

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि राज्य सरकार आदिवासी विकास के लिए प्राप्त विशेष केन्द्रीय सहायता राशि के आवंटन का पूर्ण उपयोग नहीं कर पा रही है। वर्ष 2000-01 में 3328.17 लाख रु. की विशेष केन्द्रीय सहायता के आवंटन के विरुद्ध राज्य सरकार मात्र 2694.34 लाख रु. ही व्यय कर पायी।

इसी प्रकार केन्द्र प्रवर्तित योजना के तहत 2001-02 में प्राप्त राशि 17 16 लाख रु. के विरुद्ध दिसम्बर, 2001 तक मात्र 97000 रु. ही विकास कार्यो पर खर्च किए गए हैं।

सबसे ज्यादा ध्यान देने की जरूरत जनजाति उपयोजना क्षेत्र व माडा क्षेत्र में है, इन्हीं क्षेत्रों में विकास कार्यों को और गति देने की आवश्यकता है।

संविधान की धारा 275 (1) के अन्तर्गत राज्य सरकार को जनजाति विकास हेतु सहायता :-

(i) संविधान की धारा 275 (1) के तहत भारत सरकार अनुसूचित जाति व जनजाति कल्याण योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए राज्य सरकार को वित्तीय सहायता देती है।

(ii) इस मद में राज्य सरकार को 2000-01 में कुल 857.29 लाख रु. तथा 2001-02 में 890.13 लाख रु. की राशि भारत सरकार ने दी।

सारणी 3 9

संविधान की धारा 275 (1) के अन्तर्गत प्राप्त राशि का उपयोग

(राशि लाख रु. में)

क्र स.	योजना	आवंटन वर्ष 2000-01	वर्ष 2001-02	योग	कुल व्यय अप्रेल, 2000 से दिसम्बर, 2001 तक
1	परावर्तित क्षेत्र विकास उपागमन (माडा) योजना व बिखरी जनजाति योजना क्षेत्र	857.29	890.13	1747.42	335.64
2	सहरिया आदिम जाति परियोजना	67.00	38.00	105.00	1 विद्यालय व 1 विश्रान्ति गृह

स्रोत – वार्षिक प्रशासनिक प्रतिवेदन 2001-02, जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग, उदयपुर।

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि भारत सरकार द्वारा अनुसूचित जनजातियों हेतु विभिन्न कल्याण योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए राजस्थान सरकार को दी गई वित्तीय सहायता का भी राज्य सरकार पूर्ण उपयोग नहीं कर पाई है। 2000--01 व 2001-02 के कुल राशि 1747.42 लाख रु. के आवंटन की तुलना में राजस्थान सरकार अप्रैल 2000 से दिसम्बर 2001 (18 माह) तक मात्र 335.64 लाख रु. ही उपयोग कर पाई है। इसी प्रकार सहरिया आदिम जाति विकास परियोजना हेतु उपयुक्त अवधि में आवंटित राशि 105 लाख रु. का उपयोग कर एक आवासीय विद्यालय व एक विश्रान्ति गृह बनाया गया है। मांडा व बिखरी जनजाति योजना क्षेत्रों में केन्द्र द्वारा दी गई वित्तीय सहायता का पूरा उपयोग करना आवश्यक है अन्यथा भविष्य में भारत सरकार इस राशि में कटौती कर सकती है। एक ओर तो वित्तीय सहायता के अभाव में कई योजनाएँ कार्यान्वित नहीं हो पाती हैं दूसरी ओर इस तरह प्राप्त वित्तीय सहायता अनुपयोजित रह जाना यह दर्शाता है कि वित्तीय कल्याण योजनाओं के बनाने व उन्हें कार्यान्वित करने मे आदिवासियों की जरूरत के अनुसार सरकारी अधिकारी पूरे मनोयोग से कर्म नहीं कर रहे हैं। उन्हें इस तरफ प्रेरित करने की जरूरत है ताकि आदिवासियों को रोजगार मिले, उनके क्षेत्र में स्थायी सम्पत्ति बने और उनका जीवन स्तर ऊँचा उठे।

(र) माणिक्य लाल वर्मा आदिम जाति शोध संस्थान द्वारा किये जा रहे शोध, विकास व कल्याण परक कार्य :-

संस्थान का काम काज पाँच प्रकोष्ठों द्वारा सम्पन्न किया जा रहा है जो इस प्रकार है :

(i) प्रायोजित शोध प्रकोष्ठ :-

संस्थान द्वारा व्यक्तिगत शोधकर्त्ताओं व संस्थाओं को आदिवासियों की आर्थिक, सामाजिक व अन्य समस्याओं पर शोध करने हेतु वित्तीय सहायता दी जाती है। आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं पर लिखी गई मौलिक पाण्डुलिपियो के प्रकाशन हेतु अनुदान राशि दी जाती है। वर्ष 1999-2000 तक 117 व्यक्तिगत व 20 संस्थागत शोधार्थियों को शोध सहायता प्रदान की गई। 2000-2001 में 12 व्यक्तिगत शोधार्थी व 3 संस्थागत शोधार्थियों को शोध सहायता प्रदान की गई। प्रकाशन सहायता के अन्तर्गत 1984-85 से 2000-2001 तक 55 पाण्डुलिपियों के प्रकाशन हेतु सहायता प्रदान की गई।

(ii) शोध व मूल्यांकन प्रकोष्ठ :-

संस्थान द्वारा जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पहलुओं विकास योजनाओं तथा कार्यक्रमों पर संस्थान द्वारा करीब 105 अध्ययन सम्पादित किये गये हैं। संस्थान द्वारा किया गया कार्य "सहरिया कार्यक्रमों का मूल्यांकन" अध्ययन पूर्ण हो गया है। संस्थान द्वारा वर्तमान में निम्नलिखित लघु मूल्यांकन अध्ययन कराए गये हैं। जो इस प्रकार हैं:-

1. उन्नत किस्म की सब्जियों का क्षेत्र विस्तार 2. विस्फोट द्वारा कुँए गहरे करना 3. नवीन फसल प्रदर्शन 4. एनिकट निर्माण 5. नाव जाल वितरण योजना 6 रेशम कीट पालन व मशरुम उत्पादन 7. मत्स्य पालन प्रशिक्षण 8. बीमारी दुर्घटना सहायता 9. मत्स्य बीज उत्पादन 10. टी. बी. नियन्त्रण 11. कथोडी विकास योजनाऐं 12. माडा की लिफ्ट योजनाऐं 13. माडा कलस्टर की लिफ्ट योजनाऐं 14. बिखरी आबादी की लिफ्ट योजनाऐं।

(iii) प्रशिक्षण शाखा

विगत कुछ वर्षों से संस्थान ने अपना ध्यान जनजाति युवाओं को प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु तैयार करने पर केन्द्रित किया गया है जिसके तहत विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं के परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण, कक्षा दसवीं तथा बारहवीं के छात्रों के कैरियर मार्गदर्शन योजना, जनजाति आकांक्षा अभिवर्द्धन, चेतना शिविर तथा कार्य शालाऐं आयोजित की जा रही हैं जिसके परिणाम उत्साहवर्धक रहे तथा राज्य प्रशासनिक सेवाओं में छात्रों का चयन होना प्रारम्भ हुआ। इसी प्रकार अन्य प्रतियोगी परीक्षाओ में भी पर्याप्त संख्या में छात्रों को लाभ मिलना प्रारम्भ हुआ है।

1. तकनीकी एवं चिकित्सा सेवाओं में प्रवेश हेतु प्रतिष्ठित संस्थाओं में कोचिंग :- जनजाति उपयोजना क्षेत्र के जनजाति छात्र/छात्राओं का मेडिकल एवं इंजीनियरिंग सेवाओं में प्रायः नगण्य प्रतिनिधित्व रहता है। आज के परिप्रेक्ष्य में निर्धन छात्र उच्च व्यवसायिक सेवाओं में बिना उच्च स्तरीय कोचिंग के सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है। ऐसी स्थिति में राज्य के कोटा स्थित संस्थान जो कि वर्ष पर्यन्त छात्रों को कोचिंग प्रदान कर प्रतियोगी परीक्षा में सफलता की ओर अग्रसर कर रहे हैं उनके माध्यम से जनजाति बालकों के लिए अवसर सुनिश्चित करने की दृष्टि से इस योजना को क्रियान्वित किया जा रहा है ताकि दूर-दराज के क्षेत्र में निवासित जनजाति छात्र/छात्राऐं कोटा स्थित प्रतिष्ठित संस्थानों के माध्यम से कोचिंग प्राप्त कर सफलता प्राप्त कर सकें। इस हेतु अनुमोदित कोटा स्थित ऐलन एवं केरियर प्वाइन्ट संस्थान में जनजाति छात्र/छात्राओं को वर्ष पर्यन्त कोचिंग हेतु शैक्षिक एवं आवासीय आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। वर्ष 2001-2002 के लिए 15 विद्यार्थियों को कोटा स्थित ऐलन एवं केरियर प्वाइन्ट संस्थान में कोचिंग प्राप्त करने भिजवाया गया।

2. प्रतिष्ठित कोचिंग संस्थान से सिविल सेवा (पूर्व) परीक्षा हेतु कोचिंग- जनजाति उपयोजना क्षेत्र के जनजाति अभ्यार्थियों का शैक्षणिक सुविधाओ के अभाव, आर्थिक व सामाजिक परिवेश में स्वतः प्रेरणा के नहीं होने से प्रशासनिक सेवाओं आइ.ए.एस./आर.ए.एस. में प्रतिनिधित्व लगभग नगण्य है।

इस उद्देश्य से पात्र जनजाति छात्रों को राज्य के बाहर व राज्य में अन्दर स्थित प्रतिष्ठित संस्थानों के माध्यम से मुख्य परीक्षा के लिए चयन सुनिश्चित कराने हेतु इन सेवाओं की पूर्व परीक्षा हेतु चार माह नि:शुल्क कोचिंग दिलाई जायेगी।

3. जनजाति आकांक्षा अभिवर्द्धन चेतना शिविर :- संस्थान ने प्रतिभावान जनजाति छात्रों को चिन्हित कर प्रतिभा को उचित शैक्षणिक दिशा प्रदान करने के हेतु कदम बढ़ाये हैं। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संस्थान द्वारा जनजाति के लोगों में चेतना जागृत करने हेतु समय-समय पर चेतना शिविरों का आयोजन किया जाता है। वर्ष 1999-2000 में 4 चेतना शिविर, वर्ष 2000-01 में 6 चेतना शिविर आयोजित किये गये एवं वर्ष 2001-2002 के लिए 11 चेतना शिविरों का आयोजन किया जाकर 550 शिक्षार्थियों को प्रशिक्षण दिया गया।

4. केरियर काउन्सलिंग :- जनजाति उपयोजना क्षेत्र के अन्तर्गत चयनित राजकीय सीनियर माध्यमिक विद्यालय महाविद्यालयों में अध्यनरत जनजाति क्षेत्र के छात्र/छात्राओं को सतत् केरियर निर्माण एवं उच्च श्रेणी के रोजगार प्राप्त करने हेतु परामर्श देने के लिए विभिन्न पत्र/पत्रिकाऐं, केरियर चार्ट व अन्य माध्यमो से जानकारी प्रदान की जाती है। जिसके लिए प्रति स्कूल 2400.00 रु. एवं प्रति महाविद्यालय 3000.00 रु. वार्षिक की राशि का प्रावधान है। यह योजना वर्ष 2000-2001 से प्रारम्भ की गई जिससे 32 उच्च माध्यमिक विद्यालयों एवं 8 महाविद्यालयों में केरियर परामर्श ईकाईयाँ स्थापित की गई हैं।

5. विज्ञान एवं वाणिज्य विषय लेने हेतु प्रोत्साहन - जनजाति उपयोजना क्षेत्र के छात्र/छात्राओं को कक्षा 11वीं में विज्ञान एवं वाणिज्य विषय में रुचि पैदा करने हेतु इन विषयों में प्रवेश लेने वाले छात्रों को प्रोत्साहन एवं लेबोरेट्री व्यय पुनर्भरण हेतु 1000.00 रु. वार्षिक एक मुश्त प्रोत्साहन राशि दी जाती है।

6. एक वर्षीय कम्प्यूटर डिप्लोमा पाठ्यक्रम :- रोजगार के अवसर बढाने हेतु द्वारा वर्ष 1997 98 में जनजाति अभ्यार्थियों के लिए पोस्ट

ग्रेजुएट डिप्लामा इन कम्प्यूटर एप्लीकेशन (पी जी डी सी ए) का एक वर्षीय पाठ्यक्रम आरम्भ किया गया जिसमे 12 जनजाति छात्रो को प्रवेश दिया गया वर्ष 1999-2000 में 24 जनजाति छात्रों एवं वर्ष 2000-01 में 27 जनजाति छात्रों को प्रवेश दिया गया।

(iv) सांस्कृतिक शाखा :- राजस्थान के जनजातियों की कला एवं सस्कृति के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु संस्थान सतत प्रयत्नशील रहा है। संस्थान मे स्थित जवाहर लाल नेहरु संग्रहालय, शिल्पग्राम स्थित संग्रहालय एवं माउण्ट आबू स्थित आर्ट गैलरी जनजाति संस्कृति से समृद्ध है जिससे आगन्तुक सेनानियों को राजस्थान की जनजातियों की पारम्परिक लोक कला एवं संस्कृति का दर्शन होता है। जनजाति लोक कला एवं संस्कृति को बढ़ावा देने हेतु जिला राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर प्रदशर्नियों का आयोजन तथा लोक कलाकारों को अपनी कला-प्रदर्शन हेतु सांस्कृतिक दल बनाकर विभिन्न कार्यक्रमों में भिजवाया जाता है।

(ल) राजस्थान जनजाति क्षेत्रीय विकास सहकारी संघ द्वारा चलायी जा रही व्यवसायिक गतिविधियाँ :- राजस संघ आदिवासी कल्याण हेतु कुछ प्रमुख व्यावसायिक गतिविधियों का संचालन अपनी पूँजी लगाकर करता है अगर अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता हो तो यह बैंकों से तथा एन.सी.डी.सी. के माध्यम से मार्जिन मनी के रूप की सहायता लेता है।

(i) उपभोक्ता सामग्री वितरण :- राजस संघ उपभोक्ता सामग्री के अन्तर्गत सामग्री वितरण में गेहूँ, चावल, चीनी के थोक विक्रेता के रूप में कार्यरत है तथा अनियन्त्रित उपभोक्ता सामग्री खाद्य तेल, गुड़, दालें, साबुन और विभिन्न मसालों की आपूर्ति की जाती है। यद्यपि इस व्यवसाय में सभी खर्चे निकालने के बाद संघ को प्राय: न्यूनतम लाभ रहा है। तथापि इस गतिविधि से बाजार मूल्य नियन्त्रित हुआ है।

संघ द्वारा उपभोक्ता सामग्री का वितरण चल उपभोक्ता वाहनों द्वारा आदिवासियों के मेलों व हाटों में किया जाता रहा है। वर्ष 2000-2001 में नियन्त्रित उपभोक्ता सामग्री का व्यवसाय 4357.92 लाख रुपये एवं अनियन्त्रित उपभोक्ता सामग्री का 254.51 लाख रुपये का किया गया है वर्ष

2001-2002 के तहत माह दिसम्बर 01 तक नियन्त्रित उपभोक्ता सामग्री का व्यवसाय 3057.40 लाख रुपये एवं अनियन्त्रित उपभोक्ता सामग्री का व्यवसाय 123.63 लाख रुपये का किया जा चुका है।

(ii) कृषि उपादान वितरण :- जनजाति उपयोजना क्षेत्र में दुर्गम स्थानों पर वर्षा में कृषि उपादान पहुँचाने में आने वाली असुविधा एवं समय पर आदिवासियो को खाद बीज व कीटनाशक औषधियाँ उपलब्ध हो सकें इस बात को ध्यान मे रखकर संघ फसल बुवाई के पन्द्रह बीस दिन पूर्व ही लेम्पस मुख्यालय पर कृषि उपादान पहुँचाने की व्यवस्था करता है। हेम्पस ग्रामीण् क्षेत्रों के सेवा केन्द्र हैं। उपादान स्वीकृत ऋण सीमानुसार उधार पर या नकद पर विक्रय किये जाते हैं।

वर्ष 2001-2002 में माह दिसम्बर 01 तक खाद का 481.68 लाख रुपये उन्नत बीज 12.85 लाख रुपये तथा कीटनाशक औषधियाँ 2.69 लाख रुपये का व्यवसाय किया है। इस प्रकार कुल व्यवसाय 497.02 लाख रुपये का हुआ है।

(iii) लघु वन उपज – राजस संघ द्वारा जनजाति उपयोजना एवं सहरिया क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की लघु वन उपजों का संग्रहण आदिवासियों तथा लेम्पस के माध्यम से किया जाता है। राजस संघ द्वारा इन उपजों की संग्रहण दरों में बाजार मूल्यों के अनुपात में समय-समय पर वृद्धि की जाती है। सीता माता, डैया, अम्बासा, पानरवा तथा माऊन्ट आबू के गेम सेन्चुरी क्षेत्र घोषित होने में राजस सघ द्वारा लघु वन उपज संग्रहण पिछले कुछ वर्षों में कम हुयी है।

इससे लघु वन उपज संग्रहण पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। वर्ष 2000-01 मे इस मद में 108.56 लाख रुपये का लघु वन उपज संग्रहण किया गया है तथा 2001-02 में दिसम्बर, 2001 तक 68.83 लाख वन उपजों का संग्रहण किया गया।

(iv) मत्स्य आखेट एवं विपणन :- आदिवासियों के सतत कल्याण के लिए कटिबद्ध राजस संघ द्वारा जयसमन्द, माही बजाज, सागर, कडाना, बेक वाटर, अनास चाप के दैहों के समीप वाली आदिवासियों की 30 सहकारी समितियों के माध्यम से करीब 3300 आदिवासी मछुआरों को रोजगार उपलब्ध करवा रहा है सघ ने इन्हे निजी व्यवसाइयों के शोषण से मुक्त किया है सघ द्वारा

निजी व्यवसायियों की तुलना में न केवल दुगुनी मजदूरी दी जाती है वरन् आदिवासियों को जाल एवं नाम हेतु विशेष केन्द्रीय सहायता मद से सहायता भी उपलब्ध करवाई जा रही है।

इस व्यवसाय से आदिवासियों को अच्छे पारिश्रमिक के साथ-साथ प्रोटीन युक्त बेहतर भोजन उपलब्ध भी होता है। प्रति वर्ष टनों में मत्स्य आखेट होता है। इसकी कमी न हो इसलिए संघ विशेष केन्द्रीय सहायता मद से राशि प्राप्त कर कलकत्ता, गुजरात तथा मध्य प्रदेश से मत्स्य बीज मंगवाकर उनका पालन करवाने के बाद जयसमन्द में स्थानान्तरित करता है ताकि आदिवासी इस लाभ से वंचित न हो सके।

(व) स्वच्छता जल एवं सामुदायिक स्वास्थ्य परियोजना के अन्तर्गत किए जा रहे कार्य :- स्वच्छ (स्वच्छता जल नारु नियन्त्रण व सामुदायिक परियोजना) जो कि सीड़ा व यूनिसेफ के आर्थिक सहयोग से चलाई जा रही थी, एक अत्यन्त सफल परियोजना सिद्ध हुई। स्वच्छ की सफलता व अनुभवों को मद्देनजर रखते हुये इसके स्वरूप को बनाए रखने के लिए स्वच्छ को एक जनवरी 1996 से स्वयं सेवी गैर सरकारी संस्था के रूप में पंजीकृत किया गया है।

स्वच्छ द्वारा जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग के सौजन्य से निम्नलिखित योजनाऐं क्रियान्वित की जा रही हैं:-

(i) तपेदिक नियंत्रण कार्यक्रम :- जनजाति उपयोजना क्षेत्र में वर्ष 96-97 से तपेदिक नियन्त्रण कार्यक्रम आरम्भ किया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 96-97 से वर्ष 2000-2001 तक रु. 410.66 लाख रु. प्राप्त हुए। संशोधित योजना के तहत चिकित्सा विभाग द्वारा स्वच्छ के कार्यकर्त्ताओं को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है तथा उपचार हेतु दवाईयां उपलब्ध कराई जा रही हैं। स्वच्छ परियोजना द्वारा क्षय रोगियों को पोष्टिक आहार सत्तू दिया जाता है।

इस कार्यक्रम के तहत दवाईयों पर व्यय नहीं होने के कारण व्यय कम हुआ है। स्वीकृत राशि के उपयोग हेतु टी.एस.पी. क्षेत्र के अतिरिक्त ग्रामों में क्षय रोगियों की पहचान कर उनका उपचार करने हेतु अतिरिक्त स्वास्थ्यकर्मियों को लगाने का तैयार किया जा रहा है

(ii) फ्लोरोसिस नियन्त्रण कार्यक्रम :- इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विशेष केन्द्रीय सहायता मद में मार्च 2001 तक 180.87 लाख रुपये प्राप्त हुए तथा दिसम्बर तक रु. 118.59 लाख का व्यय किया गया था।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पूर्व में मात्र 30 ग्रामों में कार्य प्रारम्भ किया गया था। अब कार्य क्षेत्र में वृद्धि कर कुल 80 ग्रामों में कार्य किया जा रहा है। योजना के तहत कुल 7000 किट वितरण के लक्ष्य के विरुद्ध 2925 ए.ए. फिल्टर किट क्रय किये गये हैं तथा 2177 किटों का वितरण किया जा चुका है।

(iii) जलोत्थान सिंचाई योजना/एनिकट निर्माण :-

जलोत्थान सिंचाई योजना एवं एनीकट निर्माण के अन्तर्गत 99-2000 में स्वच्छ को 20 कार्यों के लिए 175.00 लाख रु. की प्रशासनिक स्वीकृति दी गई। मार्च, 2001 तक 13 कार्यों की तकनीकी स्वीकृति भी दी गई जिनकी कुल लागत रु 115.23 लाख है। स्वच्छ परियोजना द्वारा 9 एनीकट का कार्य पूर्ण हो चुका है तथा 2 लिफ्ट योजनाओं का कार्य प्रगति पर है। अब तक निर्माण कार्यों के लिए प्राप्त 86.25 लाख रु. में से 79.69 लाख रु. का व्यय किया जा चुका है।

आदिवासी विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत राजस्थान में चलायी जा रही विकास परक व कल्याणपरक योजनाऐं अच्छी हैं किन्तु उनसे लाभान्वित होने वाले आदिवासियों की संख्या बहुत कम है। कृषि यंत्रों के क्रय हेतु दिया जाने वाला अनुदान अपर्याप्त है, इसमें वृद्धि करने की आवश्यकता है।

आदिवासियों की प्रकृति को ध्यान में रखकर योजनाऐं बनाना आवश्यक है। भील आदिवासी कृषि कार्य करते हैं। फल व सब्जियाँ उगाना उनके लिए लाभदायक है फिर भी उन्नत सब्जियों के तहत क्षेत्र विस्तार योजना बंद कर दी गई। ऐसी लाभप्रद योजनाओं को पुन: चालू करने की जरूरत है। दूसरी ओर कथोड़ी आदिवासी हमेशा वन उपज संग्रह करने वाले रहे हैं। कृषि कार्यों में उनकी रुचि कम रही है; कथोड़ी आदिवासियों को कृषि कार्यों हेतु प्रशिक्षण देने की अपेक्षा उन्हें फलदार वृक्ष लगाने हेतु देना अथवा रेशम कीट पालन, शहद हेतु मधुमक्खी पालन कार्य सिखाना अपेक्षाकृत आसान कार्य है। योजनाऐं बनाते समय इन्हीं छोटे तथ्यो पर ध्यान देने की जरूरत है

आदिवासियों को उनके कल्याण व विकास हेतु विभिन्न योजनाओं की जानकारी देने के लिए मेले का आयोजन करना ही पर्याप्त नहीं है।

अधिकांश आदिवासी दिन भर अपना पेट भरने की जुगाड़ में रहते हैं वे इन सरकारी मेलों में स्वेच्छा से नहीं आएंगे। इस हेतु समर्पित अधिकारियों व कर्मचारियों को प्रत्येक आदिवासी ग्राम या फला में पहुँच कर उन्हें उनके लिए सरकार द्वारा चलायी जा रही लाभप्रद योजनाओं की जानकारी देनी आवश्यक है। हाँ, आदिवासी मेलों जैसे बेणेश्वर का मेला, घोटिया आम्बा मेले के दौरान उन्हें इन योजनाओं की जानकारी दी जा सकती है।

चतुर्थ अध्याय

आदिवासी विकास कार्यक्रमों का प्रशासन

1. जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग

जनजाति बहुल क्षेत्रों के विकास हेतु संविधान के नीति-निदेशक तत्त्वों में विशेष व्यवस्था है। राजस्थान राज्य में स्वतंत्रता के पश्चात् जनजाति विकास के लिए जो प्रयत्न किए गये थे वे अपर्याप्त थे। 1974 तक यही स्थिति रही, 1975 में इस कार्य के लिए योजनाबद्ध प्रयत्न शुरू किये गये और उनके अन्तर्गत सर्वप्रथम आदिवासी क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास एवं विकास योजनाओं के समुचित व निरन्तर क्रियान्वयन व विकास कार्यों पर दृष्टि रखने के लिए राजस्थान सरकार ने जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग की स्थापना की। शुरूआत में इस विभाग का मुख्यालय जयपुर था किन्तु यह जनजाति बहुल क्षेत्र दक्षिण राजस्थान से दूर होने के कारण कई कठिनाइयाँ उपस्थित होती थीं। इस समस्या के हल के लिए अप्रैल, 1978 में विभाग का मुख्यालय जयपुर से उदयपुर स्थानान्तरित कर दिया गया जो कि आदिवासी क्षेत्र के अधिक निकट है।

उद्देश्य

जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए की गई-

(1) जनजाति उपयोजना क्षेत्र के सर्वांगीण विकास हेतु।

(2) जनजातियों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व बौद्धिक विकास हेतु।

(3) जनजाति विकास की विभिन्न योजनाओं के निर्माण, समन्वय, नियंत्रण व निर्देशन के लिए।

(4) जनजाति बहुल क्षेत्रों में प्रशासन के स्तर को अन्य क्षेत्रों के समकक्ष लाना व जनजाति वर्ग के जीवन-स्तर का उन्नयन।

जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग आदिवासियों के जीवन-स्तर में सुधार लाने, उनकी सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखने व उनके विकास के लिए उनके जीवन की सामाजिक विषमताओं को दूर करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का क्रियान्वयन विभिन्न सम्बद्ध विभागों के माध्यम से करवाता है। विभाग के कार्य क्षेत्र में तीन तरह के क्षेत्र आते हैं-

(i) जनजाति उपयोजना क्षेत्र

जिन तहसीलों की कुल जनसंख्या में 50% से अधिक आदिवासी जनसंख्या है वे सभी तहसीलें जनजाति उपयोजना क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं। तहसीलों को आधार इसलिए माना गया है, क्योंकि वे प्रशासनिक इकाइयाँ हैं। इस तरह से डूँगरपुर व बाँसवाड़ा पूर्णरूपेण आदिवासी जिले हैं। उदयपुर जिले में छः तहसीलें– खेरवाड़ा, कोटड़ा, सराड़ा, सलूम्बर, झाडोल (फलासिया), धरियावद (लसाडिया) तथा गिर्वा पंचायत समिति के 81 गाँव इस योजना क्षेत्र में आते हैं। चित्तौड़गढ जिले की प्रतापगढ़ और अरनोद तहसीलें व सिरोही जिले की आबू रोड़ पंचायत समिति इस जनजाति उपयोजना क्षेत्र में सम्मिलित है। इस प्रकार 5 जिलों की 23 पंचायत समितियों के 4437 गाँव इस योजना क्षेत्र में सम्मिलित हैं।

(ii) परिवर्तित क्षेत्र विकास उपागमन (माडा) क्षेत्र

जनजाति उपयोजना क्षेत्र से बाहर बिखरी हुई अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक विकास हेतु राज्य के 17 जिले अलवर, धौलपुर, भीलवाड़ा, बूँदी, उदयपुर, राजसमंद, झालावाड़, कोटा, बारां, चित्तौड़गढ़, पाली, सिरोही, टौंक, सवाईमाधोपुर, करौली, जयपुर तथा दौसा में 44 खण्डों का निर्माण किया गया है। इस श्रेणी में ऐसे एक साथ लगे गाँवों के समूह को सम्मिलित किया गया है जिनमे प्रत्येक की कुल जनसंख्या 25,000 से अधिक है जिसमें 50% से अधिक जनसंख्या आदिवासियों की है। इन कुल 44 खण्डों में 3592 ग्राम हैं।

(iii) सहरिया आदिम जाति क्षेत्र

इस क्षेत्र के अन्तर्गत बारां जिले की शाहबाद और किशनगंज दो तहसीले आती हैं। यह राजस्थान की एकमात्र आदिम जाति अभी भी काफी पिछड़ी हुई है अतः भारत सरकार के गृह मंत्रालय के निर्देशानुसार इस पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इन दोनों तहसीलों के लिए ''सहरिया विकास समिति'' का गठन किया गया है।

(iv) माडा कलस्टर योजना क्षेत्र

इसमें वे कलस्टर आते हैं जिनकी कुल जनसंख्या 5000 या इससे अधिक है तथा जिसमें 50% से अधिक जनसंख्या आदिवासियों की है। राज्य के 8 जिलो में 11 माडा कलस्टर हैं जिसमें 161 ग्राम सम्मिलित हैं।

(v) बिखरी जनजाति योजना क्षेत्र

इसमें जनजाति उपयोजना क्षेत्र, परावर्तित विकास उपागमन क्षेत्र, माडा कलस्टर व सहरिया आदिम जाति क्षेत्र के अतिरिक्त वे आदिवासी आते हैं जो राज्य के 30 जिलों में छिट पुट बसे हैं। इनकी कुल संख्या 17.31 लाख है।

2. प्रशासनिक व्यवस्था

राजस्थान सरकार के मंत्रालय में जनजाति विकास मंत्री है जो स्वतंत्र रूप से राज्य स्तर पर जनजाति कल्याण एवं विकास कार्य को देखते हैं। विभागीय मंत्री की अध्यक्षता में राज्य स्तर पर जनजाति के हितों की रक्षा व जनजाति कल्याण कार्यों की समीक्षा करने व दिशा-निर्देशन हेतु राजस्थान अनुसूचित जनजाति परामर्शदात्री परिषद एवं जनजाति उपयोजना समन्वय व निर्देशन समिति का पुनर्गठन राज्य सरकार के आदेश दिनांक 6-5-2000 द्वारा किया गया। इस परिषद के गठन का उद्देश्य जनजाति विकास विभाग द्वारा क्रियान्वित की जा रही योजनाओं की समीक्षा करना तथा नई योजनाओं के लिए परामर्श देना है।

राज्य में जनजाति विकास कार्यक्रमों के समुचित योजना, क्रियान्वयन व प्रबंधन का भार आयुक्त, जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग उदयपुर के कंधों पर है।

आयुक्त जनजाति विकास विभाग का कार्य-क्षेत्र

आयुक्त जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग का कार्य-क्षेत्र जनजाति उपयोजना क्षेत्र, माडा क्षेत्र तथा सहरिया क्षेत्र, माडा कलस्टर व बिखरी आबादी जनजाति क्षेत्र है। इसके अलावा वह अपने कार्य-क्षेत्र के सभी विकास कार्यक्रमों के आयोजन व परिवीक्षण के लिए जिम्मेदार है। वह आदिवासी क्षेत्र में विभिन्न सरकारी विभागों की कार्यप्रणाली में समन्वय की पद्धति को भी सुनिश्चित करते हैं। उनका यह प्रयत्न रहता है कि विकास कार्यों तथा पर्यावरण में उपलब्ध सम्पदा से आदिवासियों को अधिक-से-अधिक लाभ मिले।

·आयुक्त महोदय उपर्युक्त प्रथम तीनों क्षेत्रों में निम्नलिखित विकास कार्यक्रमो के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी बनाए गए हैं-

(1) कृषि, पशुपालन व मत्स्य विभाग,

(2) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम,

(3) अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की उत्पादन, उपभोग व सामाजिक कार्यों की पूर्ति हेतु साख सुविधाओं का प्रबंध,

(4) वन का उपयोग व वन विकास,

(5) माध्यमिक स्तर पर शिक्षा कार्यक्रम जिसमें अनौपचारिक व प्रौढ

शिक्षा तथा औद्योगिक प्रशिक्षण सस्थाओं के प्रशिक्षण भी सम्मिलित हैं

(6) समाज कल्याण के विभिन्न कार्यक्रम, जैसे–पोषाहार, महिला विकास, बाल विकास कार्यक्रम;

(7) लघु कुटीर, खादी व ग्रामोद्योग का विकास तथा खनिजों का खनन व उपयोग;

(8) पेयजल व्यवस्था;

(9) ग्रामीण आवासन; तथा

(10) आदिवासियों की भूमि पर अतिक्रमण रोकने हेतु व साहूकारों या सेठों द्वारा आदिवासियों का शोषण रोकने के लिए कानूनी व्यवस्था का क्रियान्वयन करना।

आयुक्त जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग ही राजस्थान जनजाति क्षेत्रीय विकास सहकारी संघ के भी पदेन अध्यक्ष हैं। उनके अधीन एक अतिरिक्त आयुक्त, अतिरिक्त आयुक्त (माडा), सात उप निदेशक, एक अधिशासी अभियता, एक वरिष्ठ लेखाधिकारी व पांच परियोजना अधिकारी हैं। इसके अतिरिक्त एक सहायक निदेशक, एक कनिष्ठ अनुसंधान अधिकारी, एक लेखाधिकारी, 2 सहायक लेखाधिकारी हैं। एक सहायक अभियन्ता, एक सह आचार्य व एक व्याख्याता तथा 5 उपजिलाशिक्षा अधिकारी भी इनके अधीनस्थ हैं।

सहरिया क्षेत्र में सहरिया विकास परियोजना के क्रियान्वयन हेतु आयुक्त के अधीन एक अतिरिक्त जिलाधीश व परियोजना अधिकारी है, जिनका मुख्यालय शाहबाद (जिला बारां) है।

जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग दो क्षेत्रों (जनजाति उपयोजना क्षेत्र तथा माडा क्षेत्र) में जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों तथा आदिवासी विकास से सम्बद्ध विभिन्न विभागों के माध्यम से आदिवासी विकास की सभी योजनाओं को क्रियान्वित करने में सहायता देता है। सहरिया आदिम जाति क्षेत्र में योजनाओं के क्रियान्वयन में सहरिया विकास समिति सहायता देती है। जिला स्तर पर जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों द्वारा इन कार्यक्रमों की समीक्षा की जाती है।

जिलाधीश, जिन्हें इन अभिकरणों का अध्यक्ष बनाया जाता है, परियोजना निदेशक के सहयोग से विकास कार्यों के नियंत्रण व निर्देशन का काम करते हैं।

जनजाति उपयोजना के कार्यक्रमों में सहायता करने के लिए उदयपुर में एक परियोजना अधिकारी की नियुक्ति की गई है। इसी तरह से सहरिया विकास कार्यक्रमों को गति देने हेतु शाहबाद (बारां) में नियुक्त परियोजना अधिकारी उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त जनजाति उपयोजना क्षेत्र में प्रतापगढ़ (चित्तौड़गढ़) डूँगरपुर, बाँसवाड़ा व आबूरोड़ (सिरोही) में एक-एक परियोजना अधिकारी नियुक्त है, जो जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के परियोजना निदेशक के अधीन कार्य करता है।

अधिकारों का प्रत्यायोजन
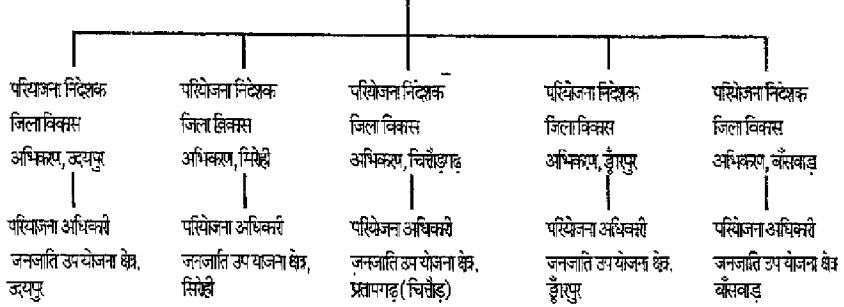
विभिन्न विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी इन जनजाति क्षेत्रों में किए गए विकास कार्यों का प्रतिवेदन समय-समय पर आयुक्त जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग को भेजते हैं। जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग इस बात के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है कि उसकी बनाई गई विभिन्न जनजाति विकास योजनाओं को जिला स्तर पर लगन, उत्साह से क्रियान्वित किया जाए और जिले के सर्वोच्च अधिकारी जिलाधीश इन योज़नाओं के क्रियान्वयन का समय-समय पर निरन्तर परिवीक्षण व निर्देशन करते रहें।

जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण में दो संस्थान हैं–

(i) राजस्थान जनजाति क्षेत्रीय विकास सहकारी संघ

जनजाति क्षेत्रों में आदिवासियों को विभिन्न उपभोक्ता वस्तुएँ व उनकी जरूरत की अन्य वस्तुएँ उचित मूल्य पर वितरित करने तथा आर्थिक शोषण से उन्हें मुक्त करने हेतु राजस्थान सरकार द्वारा 1976 में राजस्थान जनजाति क्षेत्रीय विकास सहकारी संघ की स्थापना की गई। यह संघ अपने भ्रमणशील वाहन (मोबाइल वैन) के माध्यम से मेले या साप्ताहिक हाट बाजार में वस्तुओं की

बिक्री करता है तथा लेम्पस (एक इकाई) के माध्यम से किसानो का खेती की सामग्री खाद बीज वितरित करता है इसका मुख्यालय उदयपुर में है तथा जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग के आयुक्त ही इसके पदन अध्यक्ष ह इसके कुल 336 सदस्य हैं।

संघ की स्थापना के विस्तृत उद्देश्य इस प्रकार हैं–

(1) अपने कार्य-क्षेत्र के लोगों के लिए संचित सेवाओं की व्यवस्था करना।

(2) क्षेत्र की आदिवासी जनसंख्या को ऋणग्रस्तता से राहत दिलाने की दृष्टि से व्यापारियों व साहूकारों द्वारा शोषित किए जाने से बचाना।

(3) विकास के अन्तर को कम करने के लिए अध:संरचना उपलब्ध कराना तथा सहकारी संगठनों के माध्यम से जनजातियों की निर्धनता दूर करना।

(4) अपनी स्वयं की या अन्य सम्बद्ध संस्थाओं के माध्यम से कृषि व वन उत्पादों के उत्पादन, विपणन, प्रसंस्करण व विक्रय में सहायता देना, परामर्श देना और वित्तपोषण करना।

(5) खाद्यान्न, उपभोक्ता माल, बीज, खाद, कृषि उपकरणों इत्यादि के प्रदाय हेतु राज्य सरकार व राज्य स्तरीय सहकारी संस्थाओं एवं स्वशासी निकायों के एजेन्ट के रूप में कार्य करना।

यह संघ स्वयं भी अपने से सम्बद्ध निकायों के माध्यम से आदिवासियों से कृषि उत्पाद, गौण वन उत्पाद क्रय करता है तथा पूरे लाभ के साथ बाजार मे इनका विक्रय करता है। इस तरह से यह शक्तिशाली सौदे-बाजी के माध्यम से आदिवासियों को उनकी फसल अथवा वन उपज का पूरा मूल्य दिलाता है। राजस संघ के पास 1000 लाख रु. की अधिकृत पूँजी है जिसमें से 846.16 लाख रु की प्रदत्त हिस्सा पूँजी है। इसे विशेष केन्द्रीय सहायता भी मिलती है।

(ii) माणिक्य लाल वर्मा आदिमजाति शोध व प्रशिक्षण संस्थान

आदिवासियों की संस्कृति, उनके आर्थिक व सामाजिक विकास के सम्बन्ध में शोध करने व प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था के उद्देश्य से राजस्थान सरकार ने 2 जनवरी, 1964 को इस संस्थान की स्थापना की।

इस प्रकार संस्थान के वृहत्त उद्देश्य इस प्रकार हैं–

(1) भारत सरकार, राज्य सरकार व अन्य संस्थानों की विभिन्न योजनाओ के क्रियान्वयन व प्रभाव का मूल्यांकन करना।

(2) आदिवासियों की भावी विकास आवश्यकताओं की पहचान करना।

(3) राज्य के आदिवासियों के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर शोध-कार्य करना।

(4) आदिवासियों के सामाजिक-आर्थिक आयामों का राज्य के अन्य समूहों की स्थिति से तुलनात्मक अध्ययन करना।

(5) आदिवासी संस्कृति व जीवन मूल्यों को उजागर करना।

(6) आदिवासी आर्थिक विकास व कल्याण कार्यक्रमों पर सरकार को शोध आधारित परामर्श देना।

(7) जनजाति के शिक्षित अभ्यार्थियों को विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओ मे सफलता दिलाने हेतु परीक्षा पूर्व मार्गदर्शन कक्षाऐं आयोजित करना।

1979-80 में इस संस्थान का प्रशासनिक नियंत्रण समाज कल्याण विभाग से लेकर जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग को स्थानान्तरित कर दिया गया। तभी से यह संस्थान आयुक्त जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग के सीधे नियंत्रण में कार्य कर रहा है। यह अशोक नगर उदयपुर में स्थित है।

3. सरकारी साधन सुविधाएँ : आदिवासी विकास और अधिकारी

जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग के आयुक्त को अपने कर्त्तव्य-सम्पादन के सम्बन्ध में आवागमन के लिए कार मिलती है और कई बार उन्हें उदयपुर से जयपुर सचिवालय में विभिन्न सभाओं में भाग लेने हेतु आना-जाना पड़ता है। इसके लिए राजस्थान सरकार उनके आने-जाने के हवाई टिकट का खर्च वहन करती है।

उपनिदेशक को भी उपलब्धि के आधार पर कार/जीप मिलती है। इनके द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में दौरे पर जाने पर भत्ता इत्यादि भी मिलता है। कई बार इन्हें प्रगति के अपेक्षित विवरण लेकर अपने मुख्यावास से लेकर विभाग के मुख्यालय तक आने-जाने का कार्य करना पड़ता है। इसके लिए भी सरकार द्वारा सुविधाएँ दी जाती हैं।

जिला स्तर पर जिला विकास अभिकरण के परियोजना निदेशक के पास जीप होती है। उप परियोजना अधिकारी को भी आवश्यकता पड़ने पर जिला प्रशासन द्वारा जीप उपलब्ध करवायी जाती है। कई अधिकारी व कर्मचारी विभिन्न विभागों से जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग द्वारा राजस्थान जनजाति क्षेत्रीय विकास सहकारी संघ में प्रतिनियुक्ति पर कार्य कर रहे हैं। अतः उन्हें प्रतिनियुक्ति भत्ता भी दिया जाता है।

राजस संघ की शाखाओं के प्रत्येक प्रबन्धक के पास मेटाडोर वैन तथा बडी मोबाइल वैन होती है। इसके अतिरिक्त इन सभी अधिकारियों के पास

टेलीफोन सुविधा व अधीनस्थ तृतीय श्रेणी कर्मचारियों व चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की यथेष्ट सख्या रहती है।

4. अधिकारी व कर्मचारियों का आदिवासियों के साथ व्यवहार

प्राय: देखा गया है कि अधिकारियों के द्वारा क्षेत्रों में जो दौरे किए जाते हैं उनमें बहुत अधिक रुचि की बात तो दूर की है, महज औपचारिकता की रस्म सम्पन्न की जाती है और यही कारण है कि आदिवासियों की मूल-भूत समस्या, खाद्यान्न की तथा पानी व सिंचाई की सुविधाएँ भी यह विभाग पूर्ण तो क्या पर्याप्त रूप में भी उपलब्ध नहीं करवा पाया है। उदाहरणार्थ, पूरे अम्बासा के फला पाटवेल में सिर्फ एक हैण्ड पम्प है और कई लोगों को डेढ़-दो किलोमीटर दूर से आकर इस हैण्ड पम्प से पानी भर कर ले जाना पड़ता है। इसी तरह से सरथूना का आंजनीफला पीने के पानी की समस्या से बहुत बुरी तरह से ग्रस्त है।

अधिकारी अधिकतर उन्हीं ग्रामों का निरीक्षण करते हैं, जो सड़क के किनारे होते हैं। वे अधिक अन्दर की ओर, कच्चे व ऊबड़-खाबड़ भागों से होकर काफी अन्दर के सड़क से दूर के गाँवों में दौरे पर कभी-कभी ही जाते हैं। अधिकारी इतनी सुविधाएँ होते हुए और गाँव में पहुँच कर भी प्रत्यक्षत: आदिवासियो से न मिल कर गाँव के पटवारी या ग्रामसेवक या सरपंच से ही विकास कार्यक्रमों की प्रगति की जानकारी प्राप्त कर लेने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं। कई बार उपर्युक्त तीनों व्यक्ति के राहत कार्यों के घपलों में भागीदार होने से अधिकारियों को सही सूचना नहीं मिल पाती।

अधिकारी आदिवासियों द्वारा की गई शिकायतों पर गौर नहीं करते। अधिकारी गाँवों में उनके समक्ष तो उनकी समस्याओं को सुलझाने का वादा करते हैं, परन्तु वापस अपने मुख्यावास पर आकर उन्हें भुला देते हैं और किसी अन्य गॉव के दौरे की तैयारी में लग जाते हैं। इस तरह समस्या, समस्या ही बनी रहती है और कई बार समस्या विकराल रूप धारण कर लेती है।

अधिकत्तर अधिकारी आदिवासियों को हेय दृष्टि से देखते हैं और उनसे बात करना अपना अपमान समझते हैं। कई बार अधिकारियों के समक्ष भाषा की समस्या भी आड़े आ जाती है। अधिकारी स्थानीय भाषा, दक्षिणांचल की बागड़ी या कोटा की हाड़ौती बोली नहीं जानते और आदिवासी हिन्दी नहीं जानते हैं। ऐसे मे आपस में प्रत्यक्षवार्ता में बाधा हो जाती है। मध्यस्थता करने वाले सामान्यत: पटवारी, ग्रामसेवक, सरपंच होते हैं, जिनके सामने डर के मारे आदिवासी उनके गलत अथवा अवैधानिक आचरण की शिकायत भी नहीं कर सकता; क्योंकि

शिकायत करने के साथ ही उत्पीड़न का दौर शुरू हो जाता है। अधिकारियों व कर्मचारियों द्वारा महिला आदिवासियों के यौन शोषण के भी तथ्य सामने आए हैं। ऐसा अक्सर राहत कार्यों में लगी महिला श्रमिकों के साथ अथवा वन विभाग के कर्मचारियों द्वारा अवैध रूप से लकड़ी ले जाती हुई महिला के पकड़े जाने पर होता है। इन दोनों ही कार्यों में आदिवासियों की मजबूरी निहित है। उन्हें जीवित रहने के लिए पैसा चाहिए और वे जब मजदूरी करेंगे या वन उपज बेचेंगे तभी पैसे की प्राप्ति होगी।

घंटाली (बाँसवाड़ा) स्थित आदिवासियों के लिए कार्य कर रही **श्रीलता स्वामीनाथन** के अनुसार, "मैं अक्सर गाँव में भीली घाघरा लूगड़ी पहनती हूँ। एक दिन अजीब घटना हुई। मैं भील वस्त्र पहने हुए जंगल में अकेली जा रही थी। एक वन अधिकारी ने मुझे देखा और लपक कर मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं घबरा गई। कुछ सम्भल कर मैंने उसे अंग्रेजी में डाँटना शुरू किया। वह तो मुझसे ज्यादा घबरा गया था। कोई भील औरत अंग्रेजी में जबानदराजी करे, यह वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था। वह पीछे हट गया और मैं भाग गई। इस मामूली घटना से अंदाज लगाया जा सकता है कि जंगलों में आदिवासी औरतों के साथ वन अधिकारी व अन्य अधिकारी किस तरह से बर्ताव करते हैं। श्रीलता आगे कहती हैं–"सबसे बड़ी परेशानी हुई है कि जिन क्षेत्रों में हमारे संगठन का प्रभाव है, वहाँ सरकारी अधिकारी, विशेष रूप से जंगलात व सार्वजनिक निर्माण विभाग के, काम नहीं करवाना चाहते, क्योंकि हमारे लोग निर्धारित मजदूरी माँगते हैं। घपले नहीं होने देते। किसी चीज में मिलावट का अवसर अधिकारियों को नहीं मिलेगा। इस प्रकार से ये अनुभव तो उस शिक्षित महिला के हैं, जो इन आदिवासियों के मध्य रह कर कार्य कर रही है। अन्य आदिवासी महिलाओं के साथ क्या-क्या गुजरता होगा, यह कल्पना सहज है। अक्सर इस क्षेत्र के अखबारों में भी आदिवासी महिलाओं के साथ छेड़-छाड़ के और बलात्कार के हादसे प्रकाशित होते रहते हैं।

मैंने स्वयं आदिवासियों से बात करने पर पाया कि जब कभी कोई अधिकारी गाँव में आता है तो उसके खाने-पीने का खर्चा भी उन्हें ही उठाना पडता है। बेबस और गरीब आदिवासी यह कहाँ से जुटा पाते होंगे ? होता यह है कि मांस के लिए कोई जानवर, अक्सर मुर्गा आदिवासी से लिया जाता है। शराब महुड़ी (महुए के फूल से खींची हुई) की मिल जाती है अथवा अंग्रेजी शराब मँगा ली जाती है, फिर साहब के ड्राइवर या साथ आए लोग खाना बनाने का काम करते हैं। तब तक साहब तथाकथित मुआयना करके आते हैं और फिर खाने-पीने का दौर शुरू होता है और फिर आगे अवर्णनीय। लेकिन सभी अधिकारी और

कमचारी एसे नही हात कई अधिकारी इनकी दशा देख कर दु खी हो जाते हे विशेषकर इन क्षेत्रो मे आए नए अधिकारी लेकिन अधिक सख्या उन लोगो की है जा बरसो से इस क्षेत्र म जमे हुए पुरान पापी हे जिनके मुँह मे आदिवासी शोषण का खून लग चुका है।

सर्वेक्षण के दौरान देखा कि राहत कार्य नाममात्र के चल रहे हैं और जहाँ पर राहत कार्य चालू हैं वहाँ पर भी कई प्रकार की गड़बड़ियाँ सामने आती हैं। अक्सर जिस गाँव के क्षेत्र में राहत कार्य चालू है वहाँ के सभी लोगों की बात छोड़िए, एक परिवार से एक जरूरतमंद को भी कभी-कभी काम पर नहीं लिया जाता। सिंचाई, पी. डब्ल्यू. डी., भू-संरक्षण विभाग के कार्यों में 10 से 20 रुपये देकर खाली कागजों पर हस्ताक्षर या अंगूठा लगवा लिया जाता है जिससे अधिकारी और बाबू मिली भगत से न्यूनतम मजदूरी लिख कर शेष धनराशि उठा लेते हैं। अधिकारियों और डूँगरपुर के जनसम्पर्क अधिकारियों से बातचीत करने पर उन्होंने दलील दी कि राहत कार्यों का भुगतान मजदूर द्वारा किए गए कार्य के माप के आधार पर किया जाता है। मस्टरोल मुझे कहीं पर भी नहीं दिखाए गए ताकि मैं उनके दावे का सत्यापन कर सकूँ। उधर आदिवासियों में किए गए मेरे सर्वेक्षण मे यह शिकायत आम तौर पर है कि मजदूरी का पूरा भुगतान हमें नहीं मिलता।

फिर काम पर आने वाली आदिवासी नवयुवतियों के साथ इन ओवरसियरों, बाबुओं के द्वारा छेड़छाड़ और भद्दी मजाक एक आम बात हो गई है। आदिवासी अपनी बेबसी में यह सब सहने पर मजबूर हैं। किए गए सर्वेक्षण में यह शिकायत भी स्पष्ट झलकती है कि गरीब आदिवासी को मजदूरी का भुगतान समय पर नहीं दिया जाता, फलतः उन्हें साहूकार से उधार लेकर काम चलाना पड़ता है। जिस पर वह और ब्याज वसूलता है अथवा मजदूरी में मिले गेहूँ को सस्ते दामों में खरीद कर महँगे दामों में बेचता है।

अगर कोई आदमी सच्चाई का पता लगाना चाहे तो भी नहीं लगा पाता। सर्वेक्षण कार्य के समय झाड़ोल में डाक बंगले में मेरे ठहरने के दौरान वहां राहत कार्यों की मजदूरी के रूप में बँट रहे गेहूँ के बाँटने की पद्धति प्राचीनकालीन थी। पत्थर के बाट बनाकर अनाज तोलकर दिया जा रहा था। आदिवासी बेचारे डर के मारे कुछ बोल नहीं रहे थे। जब तक पर्ची पर कार्य दिन अंकित नहीं हो, यह पता नहीं लगाया जा सकता कि आदिवासी को कितना गेहूँ कम मिल रहा है। तोलने के दौरान हेर-फेर तो वहीं स्पष्ट हो जाता है, जब पत्थर के बाट बनाए जाते हैं और तोलने के काम में लाए जाते हैं।

—— सरकार और जनजाति विकास विभाग आदिवासियों के अकाल

के प्रति कितने जागरूक हैं यह इस बात से साफ जाहिर हो जाता है कि क्षेत्र के विकास हेतु आवंटित धनराशि समय पर खर्च नहीं हो पा रही है और खर्च न हो पाने के कारण भी बड़े अजीब से दिए गए हैं जैसे जनजाति उपयोजना क्षेत्र मे स्वीकृत पद रिक्त पड़े हैं। अतः कर्मचारियों के अभाव में स्वीकृत धनराशि खर्च नहीं हो पा रही। अगर कर्मचारी नहीं हैं तो नयी भर्ती कीजिए, कुछ बेरोजगारों को रोजगार भी मिलेगा और आदिवासियों को कर्त्तव्यनिष्ठ कर्मचारी मिलेंगे।

दूसरी ओर आबू रोड़ तहसील के सियावा और सीमलवाड़ा तहसील मे सरथूना ग्राम में किए गए सर्वेक्षण से स्पष्ट जाहिर हो रहा है कि आदिवासी रोजगार की तलाश में गुजरात को पलायन कर रहे हैं। ऐसे में इन आदिवासी विकास कार्यों पर स्वीकृत धन का खर्च न हो पाना संकेत करता है कि सरकार आदिवासियों के विकास पर मात्र-कागजी खाना पूर्ति ही अधिक कर रही है। वास्तविक कार्य कम हो पा रहे हैं और वे अपर्याप्त भी हैं।

5 नेताओं और मंत्रियों के भ्रमण

उच्चाधिकारियों व मंत्रियों के सामने कृत्रिम रूप से आदिवासियों की स्थिति बढ़ा-चढ़ा कर बतलाई गई। कुछ आदिवासियों को जिन्हें पहले तोते की तरह रटा दिया जाता है कि मंत्री जी के द्वारा पूछने पर किस तरह जवाब देना है। रातों-रात वृक्षारोपण भी कर दिया जाता है। ''मंत्री चाहे कितनी बार इन क्षेत्रो में चल रहे विकास कार्यक्रमों का निरीक्षण करने आ जाएँ,'' विकास की औपचारिकताएँ तो पूरी होती रहेंगी, लेकिन आदिवासी पिछड़े ही रहेंगे।

राजस्थान के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री हरिदेव जोशी के बाँसवाड़ा विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र में पीपलखूँट पंचायत के ग्राम मुड़ासेल के सर्वेक्षण के दौरान पाया गया कि उस क्षेत्र में वन विभाग द्वारा परकोटे निर्माण के अलावा कोई कार्य नहीं चलाया जा रहा और आदिवासियों के घरों में खाने के लिए कुछ भी नहीं है। वे पहले तो मुझे सरकारी आदमी समझ, कुछ नहीं बोले, जब मैंने अपनी असलियत बताई तो उन लोगों के मुँह से वस्तुस्थिति सुन कर आँखें नम हो आईं। जानवरो के लिए चारा नहीं है, खुद के खाने के लिए महाजन से उधार लेकर काम चलाया जा रहा है। बेरोजगार नवयुवकों और पढ़े-लिखे नवयुवकों को भी कहीं रोजगार नहीं मिल रहा है।

आदिवासी सिर्फ भगवान् भरोसे ही अपना जीवनयापन कर रहे हैं वर्षा न होने से दक्षिणी राजस्थान के इस क्षेत्र में लगातार पिछले तीन वर्षों से सूखे की स्थितियाँ चल रही हैं

सूखे के मारे निरीह आदिवासियो स भी सरकारी कर्मचारी और कल्याण कार्यों में लगे कर्मचारी नजराना लेने में नहीं चूकते। बारां जिले की शाहबाद तहसील क्षेत्र में सहरिया आदिवासी बसते हैं। यह राजस्थान की एकमात्र आदिम जनजाति है। उन आदिवासियों से भी बाबू लोग चिरोंजी, गोंद, शहद, जड़ीबूटियाँ उनका काम करने के बदले में मुफ्त में ले लेते हैं या नाममात्र के दाम देकर जबरदस्ती खरीद लेते हैं। इन सब हालातों को देखकर अंग्रेजी राज्य की स्थिति के बारे में पढ़ी हुई वह बात याद आ जाती है जब बुनकरों के वस्त्रों अथवा दस्तकारो की बनाई चीजों को अंग्रेज मनमाने सस्ते दामों पर खरीद लेते थे। एकत्र की हुई चीजें अक्सर जनजाति विकास विभाग के दौरे पर आये उच्चाधिकारियों को भी भेंट स्वरूप दी जाती हैं।

कई ग्राम तो ऐसे हैं जहाँ पर इस विभाग के अथवा सरकारी कर्मचारी महीने में 10 दिन मुश्किल से जाते हैं। उन गाँवों में रहने वाले आदिवासियों की दशा कैसी है, उनके लिए पीने का पानी भी है या नहीं, खाने को अनाज़ भी है या नहीं; यह पूछने वाला कोई नहीं है। यह और बात है कि उन गाँवों का विकास सरकारी कागजों में जरूर हो रहा है।

6. कीचड़ में कमल

आदिवासी विकास के महायज्ञ में ऐसा भी नहीं है कि सभी लोग एक जैसे हैं। सभी भ्रष्ट हैं, ऐसा कहना अनुचित होगा। नाम न लेते हुए यह कहा जा सकता है कि कई अधिकारी ऐसे भी हैं जो रिश्वत और लूटमार की कमाई को छूते तक नहीं हैं। यह बात उनकी कुल जमीन-जायदाद और उनकी अपनी आर्थिक स्थिति को देखकर भी प्रमाणित की जा सकती है; परन्तु कर्मचारियों में यह बात देखने को नहीं मिलती। यही कारण है कि ईमानदार अधिकारी के अधीनस्थ कर्मचारी भी कई बार घपला कर जाते हैं। फिर ईमानदार अधिकारी को इस क्षेत्र मे अधिक टिकने भी नहीं दिया जाता।

हाँ, एक क्षेत्र में जरूर कहा जा सकता है और वह है शिक्षा का क्षेत्र, जहाँ पर अध्यापक प्रत्यक्ष रूप से आदिवासी लोगों से जुड़े हैं, उनकी जीवन-शैली के बारे में विशद् जानकारी रखते हैं और उनकी इच्छा भी होती है कि ये विद्यार्थी आगे बढ़ें पर यह वर्ग ऐसा है जो सिर्फ सोच ही सकता है, विद्यालयों में न्यूनतम सुविधाएँ भी नहीं हैं। कई विद्यालयों की कक्षाएँ पेडों के नीचे चलती हैं। कहने को सरकार ने निःशुल्क

प्राथमिक शिक्षा का नारा दे रखा है पर वास्तविकता में इन आदिवासी बच्चों से भी आधा शुल्क वसूल किया जाता है। उनको स्लेट, पट्टियाँ और कलम, किताबें खुद खरीद कर लानी पड़ती हैं। हाँ, शालापोशाक के मामले में जरूर कई स्थानों पर विद्यालयी अध्यापकों ने छूट दे रखी है। गरीब आदिवासी का गरीब बालक जिसके पास खाने को अनाज तक पर्याप्त नहीं, वह पहनने के लिए सफेद कमीज और खाकी निकर कहाँ से खरीदे! सरकारी घोषणाएँ सिर्फ कागजों तक ही हैं।

आश्रम स्कूल में कार्यरत कर्मचारियों में से कुछ का रवैया तो इन बच्चों के प्रति उपेक्षापूर्ण रहता है, किन्तु कुछ हृदय से इनकी जरूरतों का ध्यान रखते हैं। वे सरकार से लगातार अपनी जरूरतों की माँग करते हैं और बच्चों को उपलब्ध भी करवाते हैं, फिर भी आश्रम स्कूलों में बच्चों को पर्याप्त राशन, चाय, नाश्ता न दिये जाने की शिकायत आम हैं। मुश्किल यह है कि ईमानदार अधिकारी अल्प संख्या में होने के कारण बहुत कुछ कर पाने में अक्षम हैं, फिर भी वे अपने स्तर पर आदिवासियों के विकास के लिए, उनके रोजगार के लिए जो कुछ भी कर सकते हैं, नि:स्वार्थ भाव और निष्पक्ष रूप से बिना किसी प्रशंसा की आशा में कर रहे है।

7. आदिवासी क्षेत्रों के विकास हेतु प्रशासनिक पुनर्गठन

आदिवासी क्षेत्रों में विकास हेतु प्रशासन को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत हैं-

(i) विकास प्रशासन को समस्त आदिवासी समाज को एकरूप नहीं मान कर उनकी क्षेत्रीय व अन्य विषमताओं को दृष्टि में रखते हुए ही अपेक्षित योजनाएँ बनानी चाहिए। यदि समरूप नीति बनाकर उसे ही क्रियान्वित कर दिया जाएगा तो अधिकांश जनजातियाँ अपनी विभिन्नताओं के कारण उन नीतियो से लाभान्वित नहीं हो पाएँगी। आदिवासियों के विकास के लिए जो भी प्राथमिकताएँ तय की जाती हैं, अक्सर बाहरी लोगों द्वारा तय की जाती हैं, जिनका आदिवासियों से न तो प्रत्यक्ष सम्पर्क होता है और न वे आदिवासियों की जरूरतों को जानते हैं। ऐसे में आदिवासी उन विकास योजनाओं में अपनी पूर्ण सहभागिता प्रदर्शित नही कर पाते और वे योजनाएँ असफल रहती हैं। अत: नीति-नियोजन का कार्य कर्मठ व आदिवासी जीवन को नजदीक से जानने वाले व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए और आदिवासियों की आवश्यकताओं को भी जान लेना श्रेयस्कर होगा।

(ii) विकास प्रशासन का यह दायित्व हो जाता है कि वह विकास योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन के साथ यह भी सुनिश्चित करे कि उनके वांछित लाभ आदिवासियों तक पहुँचे।

(iii) आदिवासी क्षेत्र में खण्ड विकास अधिकारी और विभिन्न योजनाओ के प्रसार अधिकारी ही योजनाओं के प्रत्यक्ष क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होते हैं। यह वह वर्ग होता है जो शहरों से आता है और जिसे नौकरी की मजबूरी में ग्रामों में व कस्बों में काम करना पड़ता है। फलतः वे इन योजनाओं के क्रियान्वयन में रुचि नहीं ले पाते। इस सन्दर्भ में ईश्वरलाल पं. वैश्य का कहना है कि नागरिक, प्रशासन, पुलिस व मेडीकल सेवाओं की तरह ग्रामीण सेवाओं के लिए स्थायी प्रकृति का काडर बनाया जाना चाहिए और इनमें वे ही नवयुवक-नवयुवतियाँ भाग भर्ती की जायें जो गाँवों में रहने के और ग्रामवासियों के उत्थान के लिए कार्य करने के इच्छुक हों। एक बार इस काडर में चयन होने के बाद अन्य काडर मे उनका तबादला नहीं किया जाए।

(iv) दुर्भाग्य है कि आदिवासियों में से ही उच्च शिक्षा प्राप्त सरकारी नौकरियों में लगे आदिवासी समाज के विकास को प्रेरित नहीं कर पाये हैं। वे मुट्ठी भर पढ़े-लिखे आदिवासी जिन्हें राष्ट्रीय धारा में समुचित स्थान पाने में सफलता मिल जाती है। वे समूचे देश में फैल जाते हैं। इस तरह आदिवासियों का शिक्षित वर्ग अपने ही क्षेत्र से दूर फेंक दिया जाता है। इसलिए अपने क्षेत्र के विकास के लिए कार्य करने अथवा सामाजिक क्रांति के वास्तविक साधन के रूप में लगने की अपेक्षा आदिवासी समाज के लिए उसकी उपयोगिता समाप्त-सी हो जाती है। शहरी और आदिवासी-बहुल क्षेत्रों में गैर आदिवासी व बाहरी लोगों का तीव्र गति से जमाव बढ़ रहा है, जिससे आदिवासियों में कटुता उत्पन्न होती है। इस स्थिति से निपटने के लिए आदिवासी प्रशासनिक अधिकारियों व कर्मचारियो को आदिवासी-बहुल क्षेत्रों में ही नियुक्त किया जाना चाहिए, क्योंकि वे स्थानीय समस्याओं को बेहतर समझेंगे और आदिवासियों के प्रति उनका रुख सहानुभूति-पूर्ण होगा।

(v) अक्सर गैर आदिवासी अधिकारी व कर्मचारी जो आदिवासी क्षेत्रो मे काम करते हैं, उनमें यह भावना होती है कि आदिवासी समाज पिछड़ा हुआ है, बुद्धिहीन है, जिसे सुधारने के लिए व ऊँचा उठाने के लिए वे आए हैं। कई आदिवासी अधिकारी भी अपने ही इन अशिक्षित सगे भाइयों को उपेक्षापूर्ण दृष्टि

से देखते हैं। सेवक और सेवा के बीच का यह अलगाव उनमें दुराव पैदा करता है। ऐसी स्थिति का एक ही हल है कि आदिवासियों को ही आदिवासी सेवकों (अधिकारियों व कर्मचारियों) के रूप में प्रशिक्षित करना चाहिए। यह एक सुनियोजित, दीर्घकालिक व व्ययसाध्य कार्य है, लेकिन इसके परिणाम आने वाले समय में बहुत अच्छे होंगे। ऐसे प्रशिक्षण के लिए दसवीं के पश्चात् ही प्रारम्भिक परीक्षा के माध्यम से आदिवासी बालक, बालिकाओं का चयन कर लेना चाहिए। वे बाद में अपनी औपचारिक स्कूली पढ़ाई भी करते रहें, साथ ही प्रशिक्षण भी प्राप्त करते रहें। इनके लिए बहुत ही सजगता से प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए, जहाँ इन्हें विभिन्न आदिवासी समस्याओं के हल, आदिवासी जीवन–स्तर ऊँचा उठाने के लिए कार्य करने के ढंग के बारे में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। सादगी, सीमित आवश्यकताएँ, कठोर परिश्रम, स्वावलम्बन, आपसी सहयोग जैसी आदिवासी जीवन की विशेषताएँ इन प्रशिक्षकों व प्रशिक्षणार्थियों के जीवन में इस तरह उतर जानी चाहिए कि इनकी कार्य–शैली में कभी भी मजबूरी या औपचारिकता की गंध नहीं आ पाए।

(vi) इस प्रकार से प्रशिक्षित अधिकारियों व कर्मचारियों को आदिवासियों से स्वयं सम्पर्क करना चाहिए। यह आशा नहीं करनी चाहिए कि आदिवासी उनसे आकर मिले, तभी वे उनकी समस्याओं को हल करेंगे। इन अधिकारियों व कर्मचारियों को जहाँ वे नियुक्त किए जाएँ, वहाँ की बोली का भी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि वहाँ उन्हें आदिवासियों से उनकी बात समझ कर आत्मीय सम्बन्ध बनाने में मदद मिले ताकि वे आदिवासियों से विकास की विभिन्न योजनाओं में उत्साहजनक भागीदारी पा सकें।

(vii) देश में तीव्रता से हो रहे परिवर्तनों के क्रम को रोका या सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। प्रत्येक परिवर्तन में कुछ पीड़ाएँ भी होती हैं। चिरपरिचित व्यवस्थाओं का स्थान जब नवीन व्यवस्थाएँ लेती है, तो कुछ समस्याओं का जन्म होना स्वाभाविक है, जैसे आदिवासियों की बुरी आदतों व कुप्रथाओं को छुड़वाने का अभियान चलाते समय कुछ निहित स्वार्थी तत्त्व विरोध करें। ऐसे में अधिकारियो व कर्मचारियों को चाहिए कि वे मानवीय दृष्टिकोण विकसित करें और आदिवासियो को प्रेम से समझाएँ, ताकि उनके कटुता और विरोध के स्वरों को समाप्त किया जा सके। ऐसे में कड़ाई या पुलिस बल का प्रयोग व्यर्थ और कई समस्याओं को जन्म देने वाला होगा।

(viii) विकास कार्यक्रम सहभागी योजना के तहत किसी योजना के क्रियान्वयन में आदिवासी नेताओं आदिवासी छात्रा व नवयुवको का भा सहयोग लिया जाए तो बेहतर परिणाम होंगे।

(ix) एक आदर्श व व्यावहारिक आदिवासी योजना वही कहलाएगी, जिसके क्रियान्वयन के परिणामस्वरूप एक जनजातीय समूह व अन्य जनजातीय समूहों के बीच विषमता मिटे, साथ ही जनजातीय व गैर जनजातीय व्यक्तियों के बीच के अन्तर को समाप्त किया जा सके। विकास कार्यों में लगे व्यक्तियों को इसी कसौटी पर अपने विकास कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना चाहिए।

(x) उन लोगों को, जिनके लिए परियोजना-विशेष निर्मित की जा रही, उन्हें भी परियोजना लागू करते समय विश्वास में लेना चाहिए, तभी उनमें महत्त्वपूर्ण सुधार होगा; परन्तु आदिवासियों को चम्मच से खिलाने की प्रवृत्ति भी तुरन्त रोकी जानी चाहिए। ऐसे प्रयत्न किए जाने चाहिए, जिनसे वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें। यह स्पष्ट है कि उनकी समस्याएँ अल्पावधि में हल नहीं की जा सकतीं।

(xi) आदिवासी जनसंख्या की मुख्य समस्या गरीबी है और उनके साथ जुड़ी है-अत्यन्त निम्न साक्षरता। इसी कारण से अन्य वर्गों द्वारा इनका शोषण किया जाता है। फलस्वरूप इनकी स्थिति और भी खराब होती है। प्रशासन को चाहिए कि आदिवासी क्षेत्रों में अबाध प्रवेश को नियंत्रित करे, ताकि आगन्तुको की वजह से आदिवासी समाज में विकृतियाँ उत्पन्न न हों और वे शोषण के शिकार न बनें।

(xii) आदिवासी क्षेत्रों में प्रशासन को बड़े कारखानों की स्थापना या वृहत् परियोजना के प्रारम्भ को टालना चाहिए; क्योंकि वे पर्यावरण के लिए हानिकारक होंगे, विशेषकर वन सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। दूसरे, हालाँकि ये परियोजनाएँ आदिवासियों को रोजगार देंगी, परन्तु उद्योगपति आदिवासी क्षेत्र के विकास के बहाने सस्ती जमीन, सस्ती विद्युत प्राप्त करेंगे। उद्योग लगते ही जमीन महँगी, खाना-पीना महँगा और निर्माण होने के बाद आदिवासियों की मजदूरी भी समाप्त। ऐसे में आदिवासियों को वहाँ से पलायन करना पड़ता है। उनके स्थान पर नए लोग आ बसते हैं। ऐसी परियोजनाओं का विरोध होना चाहिए।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात है प्रशासन द्वारा आदिवासियों के विकास के लिए ईमानदारी से प्रयत्न किया जाए। वक्त लगेगा, किन्तु दीर्घकाल में सफलता अवश्य मिलेगी और वह सफलता हमेशा बनी रहेगी।

□□□

पंचम अध्याय

विकास कार्यक्रमों का आदिवासियों पर प्रभाव

आदिवासियों के कल्याण हेतु सरकारी स्तर पर प्रयास यों तो द्वितीय पंचवर्षीय योजना से ही शुरू हो गए थे, परन्तु उनकी समस्याओं को गहराई से समझ कर विशिष्ट ढंग से उनकी समस्याओं के निदान हेतु प्रयास 1974-75 अर्थात् पंचम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 'जनजाति उपयोजना क्षेत्र' बनाकर शुरू किए गए।

इन योजनाओं के माध्यम से जो धनराशि उन पर व्यय की गई इसका उन्हें कितना लाभ मिला? उनके जीवन स्तर में कितना परिवर्तन हुआ? उनके आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश में कितने अच्छे और कितने बुरे बदलाव आए? क्या उनके क्षेत्र का पर्यावरण पूर्ववत् सुरक्षित है? कहीं इन विकास कार्यक्रमों के माध्यम से हम जाने-अनजाने उनके जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप तो नहीं कर रहे हैं ? आदिवासी विकास कार्यक्रमों के अल्पकालिक व दीर्घकालीन प्रभाव क्या-क्या रहे हैं ? इन सब ज्वलंत प्रश्नों व जिज्ञासाओं का इस अध्याय के माध्यम से उत्तर देने का प्रयत्न किया गया है। इसका महत्त्व यह भी है कि प्रशासन विकास कार्यक्रमों में उपस्थित विभिन्न कमियों और गड़बड़ियों की गंभीरता से छान-बीन करे और उनको दूर करने के लिए उचित कदम उठाए। साथ ही देश की जनता के समक्ष यह भी स्पष्ट हो कि उससे कर के रूप में वसूले गए पैसे का कितना सदुपयोग हो रहा है।

1. आर्थिक जीवन पर प्रभाव

विकास योजनाओं के आरम्भ से पूर्व इस जनजाति उपयोजना क्षेत्र में घने जंगल थे और आदिवासी अपनी आजीविका के लिए उन्हीं पर निर्भर थे। कुछ आदिवासी कृषि-कार्य भी किया करते थे। जंगलों के विनाश के साथ ही आदिवासियों की रोजी-रोटी का संकट शुरू हुआ और सरकार उनकी सहायता के लिए आगे आई। वन उपज एकत्र करने का काम धीरे-धीरे गौण होता गया और आदिवासियों की कृषि पर निर्भरता बढ़ती गई। कृषि के अतिरिक्त वे मजदूरी भी करने लगे वनों के विनाश के साथ ही वर्षा का

औसत भी घटा और यह क्षेत्र अक्सर सूखाग्रस्त रहने लगा। सूखे से निबटने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न राहत कार्यक्रम चलाए गए ताकि आदिवासी अपने परिवार के लिए रोटी का जुगाड़ कर सके। साथ ही उनकी गरीबी और बेरोजगारी को दूर करने के लिए उन्हें कृषि और सहायक धन्धों को शुरू करने की भी सुविधा दी गई। पर ऐसी ऋण और सहायता पाने वाले आदिवासी परिवारों की संख्या कम है, क्योंकि सर्वेक्षित 160 आदिवासी परिवारों में से मात्र 45 परिवारों को ही सरकारी सहायता प्राप्त हो पाई है, शेष अभी भी गरीबी में ही दिन काट रहे थे।

पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान आदिवासियों के उत्थान पर करोड़ों रुपए खर्च कर दिए गए हैं, इसके बावजूद सुदूर ग्रामों में रहने वाले आदिवासी परिवारों की आर्थिक स्थिति दयनीय है। उदाहरण स्वरूप- ''एक बालबाड़ी उदयपुर जिले की कोटड़ा तहसील की हेडमारिया ग्राम पंचायत के विलवण गाँव में चलती है। विलवण निवासी दीता परमार के दो बेटे इस बालबाड़ी में आते हैं, पर हाजिरी रजिस्टर बताते हैं कि ये दोनों वनवासी बच्चे बालबाड़ी में कभी भी एक साथ उपस्थित नहीं रहे। कारण खोजने पर पता चला कि दोनों भाइयों के बीच एक ही कमीज और नेकर है। उसे पहन कर एक भाई बालबाड़ी आ जाता है दूसरा भाई नंगा घर पर बैठा रहता है।''

स्पष्ट है कि विकास योजनाओं के लाभ सभी आदिवासियों तक नही पहुँच पाए हैं। इस संदर्भ में कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। प्रथम उदाहरण- ''घाटोल पंचायत समिति (जिला : बाँसवाड़ा) के मुड़ासेल ग्राम में सर्वेक्षण के दौरान पाया गया कि आदिवासियों की स्थिति अवर्णनीय थी, राहत कार्यों का भुगतान 2 महीने से अटका हुआ था, उनके तन पर पहने कपड़े तार-तार हो रहे थे और घरों में मात्र 5 से 10 किलो मक्का पड़ी हुई थी। द्वितीय उदाहरण- ''बाँसवाड़ा जिले की कुल आबादी के 80 प्रतिशत से भी अधिक लोग आदिवासी हैं। इनका मुख्य व्यवसाय खेती है और इन्हें मानसून पर निर्भरता के कारण प्राय: अकाल से जूझना पड़ता है। केन्द्रीय अध्ययन दल, जो दक्षिण राजस्थान में सूखे की स्थिति का जायजा लेने आया था, उसने बाँसवाड़ा जिले की पीपल-खूँट पंचायत समिति के लाम्बा डाबरा ग्राम में देखा कि-'' आदिवासियो की झोंपड़ियों में खाद्यान्न के रूप में कुछ भी नहीं था। एक-आध झोंपड़ी मे केवल आधा किलो नमक और मक्का पाया गया।''

आदिवासी अब कृषि पर ही निर्भर हैं। किए गए सर्वेक्षण में कुल 160 आदिवासी परिवारों का प्रमुख व्यवसाय इस प्रकार था–

सारणी संख्या – 5.1 (अ)

आदिवासी परिवारों का प्रमुख व्यवसाय

व्यवसाय	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
कृषि	118	73.75
मजदूरी	30	18.75
नौकरी	9	5.63
व्यापार या दुकान आदि कार्य	3	1.87
योग	160	100.00

गौण व्यवसाय के आधार पर इन्हीं 160 आदिवासी परिवारों की स्थिति इस प्रकार पाई गई:-

सारणी संख्या – 5.1 (ब)

आदिवासी परिवारों का गौण व्यवसाय

गौण व्यवसाय	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
मजदूरी	127	79.38
कृषि	16	10.00
वन उपज एकत्र करना	15	9.37
अन्य कार्य	2	1.25
योग	160	100.00

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कृषि आदिवासियों की आजीविका का साधन है। गौण व्यवसाय के रूप में आदिवासी मजदूरी पर निर्भर हैं। मजदूरी के ऊपर यह निर्भरता सूखे के दौरान और अधिक बढ़ जाती है। सरकार भी सूखे की समस्या के स्थायी समाधान के लिए इन्हें कोई स्थायी रोजगार प्रदान करने में असफल रही है। सूखा-ग्रस्त क्षेत्र घोषित करने के पश्चात् जनजाति उपयोजना क्षेत्र में राहत कार्यों का जोर बढ़ जाता है और जो जुलाई माह तक आते-आते वर्षा की संभावना के साथ ही कम होते जाते हैं।

इस क्षेत्र क आदिवासियो का यहा नियात बन गई हे यही कारण ह कि "आदिवासियों की सरकार पर निर्भरता खतरनाक ढंग से बढ़ती जा रही है।"

आदिवासियों का लगातार निर्धनता की स्थिति में रहने का एक कारण है इनके परिवार में सदस्यों की संख्या का अधिक होना। सामान्यत: एक परिवार में 6-7 सदस्य पाए जाते हैं। इस शोधकर्त्ता द्वारा किए गए सर्वेक्षण से भी यह सिद्ध हो गया। उपर्युक्त वर्णित 160 परिवारों के आधार पर आदिवासी परिवारों में सदस्य संख्या इस प्रकार थी:-

सारणी संख्या-5.2

आदिवासी परिवारों में सदस्य संख्या

स्यों की संख्या	आदिवासी परिवार (संख्या)	प्रतिशत
2 से 5 सदस्यों वाले	64	40.00
6 से 10 सदस्यों वाले	90	56.25
10 से अधिक सदस्यों वाले	6	3.75
I	160	100.00

जब तक कृषि कार्य चलता रहता है, तब तक तो अदृश्य बेरोजगारी महसूस नहीं होती पर सूखे की स्थिति में 5 सदस्यों के परिवार में से एक सदस्य को राहत कार्यों पर मजदूरी दी जाती है। ऐसे में कमाने वाला एक तथा खाने वाले चार अन्य सदस्य हों तो खाने की व्यवस्था कर पाना भी बहुत मुश्किल हो जाता है, कपड़े या झोंपड़ी की तो बात ही छोड़ दी जाए। परिवार के अकार्यशील सदस्यों में बच्चे अधिक होते हैं। हालांकि कई बच्चे 9-10 वर्ष के होते ही शहरों या समीपवर्ती कस्बों में चाय की दुकान या होटलों पर नौकर का काम करना शुरू कर देते हैं और अपना पेट पालने लगते हैं फिर भी अकाल के कारण मजदूरी चाहने वाले सभी आदिवासियों को मजदूरी नहीं मिल पाती और कभी मिलती भी है तो उन्हें न्यूनतम मजदूरी से भी काफी कम मजदूरी पर कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार परिवार के कुछ सदस्य मिलकर जैसे-तैसे परिवार को जिंदा रखते हैं।

सर्वेक्षित ग्रामों में कुल 160 आदिवासी परिवारों से 104 आदिवासी राहत कार्यों पर लगे हुए थे अर्थात् राहत कार्यों से प्राप्त मजदूरी उस समय उनके परिवार के पालन में काम आ रही थी। इन क्षेत्रों में निम्नलिखित विभिन्न प्रकार के राहत कार्य सरकार द्वारा चलाए जा रहे थे:-

सारणी संख्या-5.3

राहत कार्यों में आदिवासी

राहत कार्य	काम पाने वाले आदिवासियों की संख्या	प्रतिशत
सरकार द्वारा चलाए जाने वाले कार्य :		
स्वयं के खेत में कुआँ खोदने का कार्य	24	23.00
वृक्षारोपण हेतु गड्ढे खोदना	23	22.00
शाला भवन निर्माण	16	15.00
मेड़बंदी	13	12.50
सड़क निर्माण	11	10.60
मिट्टी खोदकर तालाब की पाल पर डालना	6	5.80
एनीकट निर्माण	3	2.90
नहर खोदना	3	2.90
स्वयंसेवी संस्था द्वारा चलाए जाने वाले कार्य :		
मसालों की पिसाई	5	4.80
कुल आदिवासी	104	100.00

स्पष्ट है कि 99 आदिवासी सरकार द्वारा चलाए जाने वाले राहत कार्यों में तथा 5 आदिवासी मजदूर एक स्वयंसेवी संस्था द्वारा आदिवासियों को रोजगार प्रदान किए जाने वाले प्रयासों के अन्तर्गत मसालों की पिसाई के कार्य में संलग्न थे। इस प्रकार सरकारी राहत कार्यक्रमों ने अपने विभिन्न दोषों के बावजूद भी आदिवासियों को विषम सूखे की स्थिति में आजीविका प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

जहाँ तक आदिवासियों को सरकारी सहायता का प्रश्न है, यह विभिन्न विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत दी जाती है। सर्वेक्षण किए गए कुल 160 आदिवासी परिवारों में से मात्र 45 आदिवासी परिवार ही भाग्यशाली थे, जो

यह सरकारी सहायता प्राप्त कर सके। इन परिवारों को विभिन्न प्रकार की सहायता इस प्रकार दी गई:-

सारणी संख्या - 5.4
आदिवासी परिवारों को सरकारी सहायता

सहायता का प्रकार	लाभान्वित आदिवासी परिवार	प्रतिशत
(1) गाय, बैल क्रय करने हेतु	7	15.60
(2) डीजल पम्प क्रय करने हेतु	8	17.80
(3) स्वयं का व्यवसाय शुरू करने व अन्य सहायक कृषि कार्यों हेतु	10	22.20
(4) कुँआ खोदने हेतु	15	33.30
(5) खाद व अन्य आदानों के क्रय हेतु	3	6.70
(6) मकान बनवाने हेतु	2	4.40
कुल	45	100.00

स्पष्ट है कि शेष 115 आदिवासी परिवारों को किसी प्रकार की सरकारी आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं हो सकी। इस प्रकार 28.12 प्रतिशत आदिवासी परिवार ही सहायता प्राप्त कर पाए। एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि सरकार इन परिवारों को आर्थिक सहायता या विभिन्न औजार इत्यादि देने के साथ ही यह समझ लेती है कि ये परिवार गरीबी की सीमा रेखा से ऊपर उठ गए। दिए हुए ऋण का 50 प्रतिशत तक अनुदान होता है। सरकारी उदासीनता का परिणाम यह है कि इन सहायता प्राप्तकर्त्ताओं ने अपने-अपने धधे भी सही ढंग से नहीं संभाल रखे हैं। जिसको बढ़ई के काम हेतु औजार दिए हैं उसकी शिकायत यह है कि लकड़ी उचित दाम पर नहीं मिलती, फलस्वरूप बनाया हुआ सामान महँगा पड़ता है। महँगा होने के कारण उसे कोई नहीं खरीदता है। अब वह व्यक्ति अपने औजारों को झोंपड़ी के एक कोने में रखकर पुन: रोजगार की तलाश में है।

जनजाति उपयोजना क्षेत्र में आदिवासियों की गरीबी की स्थिति यह है कि औरतों के पास पहनने के लिए पूरे कपड़े नहीं हैं। एक पूर्व न्यायपालिका अधिकारी के अनुसार ''बाँसवाड़ा जिले के 35 प्रतिशत गाँवों में बेहद

गरीबी है। पहाड़ों पर बसे इन गाँवों में खेती नहीं होती। रोजगार का कोई साधन भी नहीं है। गरीबी का यह आलम है कि सास और बहू के पास-फटी पुरानी एक ही साड़ी होती है। जब सास बाजार जाती है तो बहू घर में नंगी रहती है और जब बहू को बाहर जाना होता है तो सास नंगी रहती है।'' यही कारण है कि गरीबी की मार से त्रस्त आदिवासी, जब भी इस क्षेत्र में कोई बड़ा नेता आता है, उसके सामने अपनी समस्याओं का चिट्ठा खोलते है, परन्तु नेता भी आश्वासन देकर चला जाता है।

यह बात जनजाति विकास योजना कार्य में लगे हुए अधिकारी भी स्वीकार करते हैं। माणिक्य लाल वर्मा आदिम जाति शोध संस्थान के अधिकारियों के अनुसार, ''आदिवासी विकास के लिए किए गए प्रयत्न विविधतापूर्ण होते हुए भी प्रयोगात्मक ही अधिक रहे हैं। यह महसूस किया गया कि विकास कार्यक्रमों के निर्धारण में कृषि आधार की उपेक्षा की गई। सामाजिक सेवा एवं संसाधनों की कमी व आदिवासियों को शोषण से बचाने हेतु प्रभावी उपायों का अभाव रहा। इन कारणों के चलते योजनाओं के क्रियान्वयन और प्रारंभिक आश्वासनों के बीच दूरी बढ़ी है जिससे सामान्य आदिवासी के मनोबल को धक्का लगा है। निम्न वर्ग के आदिवासियों मे उदासीनता बढ़ी है। वे सहायता को सरकारी मदद समझ कर ग्रहण तो कर लेते हैं पर सहभागिता का भाव नहीं आ पाता।'' आदिवासियों की सरकार पर निर्भरता को कम करने के लिए और विकास कार्यक्रमों में आदिवासियों की भागीदारी को बढ़ाने के लिए सहभागी विकास योजना मार्च, 1987 से शुरू की गई। इस कार्यक्रम के तहत विकास कार्यों से लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों का भी सहयोग लिया जाता है। इससे आदिवासियों के विकास में उनकी स्वयं की सहभागिता बढ़ेगी और वे मन लगाकर अपना काम-धंधा करेंगे।

विकास प्रशासन का यह दायित्व है कि विकास योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन के साथ यह भी सुनिश्चित करे कि उनके वांछित लाभ आदिवासियों तक पहुँच रहे हैं। उन्हें इस बात का पता लगाना चाहिये कि कौन-से ऐसे आदिवासी परिवार हैं जो गरीबी में जीवनयापन कर रहे हैं और अभी भी किसी प्रकार की सरकारी सहायता से वंचित रह रहे हैं। ऐसा करने पर समग्र रूप से आदिवासियो का जीवन स्तर सुधरेगा

2. सामाजिक जीवन पर प्रभाव

आजादी के पश्चात् के चार दशकों में आदिवासियों की सामाजिक स्थिति में अपेक्षित परिवर्तन नहीं हो पाए हैं और जिन परिवर्तनों से उन्हें दूर रखना चाहिए था, वे प्रवृत्तियाँ उनके जीवन में दृष्टिगोचर हो रही हैं। अपेक्षा थी कि आदिवासी शिक्षित हों, विभिन्न कुरीतियों और अंधविश्वासों से उबरे, अपने परिवार पर और स्वास्थ्य पर ध्यान दें, शहरी लोगों का अंधानुकरण न करें। पर वस्तुस्थिति इस अपेक्षा से बहुत भिन्न रही है। निम्न बिंदु इसको स्पष्ट करते हैं:-

(अ) जहाँ तक शिक्षा की बात है किए गए सर्वेक्षण में कुल 160 उत्तरदाताओं में से 96 निरक्षर, 34 साक्षर तथा 30 शिक्षित पाए गये। सौभाग्य की बात है कि ये सभी आदिवासी अब सोचने लगे हैं कि उनके बच्चों की पढ़ाई जरूर होनी चाहिए; क्योंकि उनकी दुर्दशा का एक प्रमुख कारण उनका अशिक्षित होना है। परंतु उनके सोचने मात्र से तो बच्चों की पढ़ाई पूरी नहीं हो जाती। पढ़ाई के लिए बच्चे के पास होनी चाहिए कॉपियाँ, किताबें, पोशाक, चप्पलें, कलम। ये सब वे कहाँ से लाएँ और वह भी तब, जब उनकी खुद की रोटियों का ही ठिकाना नहीं और फिर धीरे-धीरे मासूम बचपन पढ़ने के ख्वाबों को मन में संजोए हुए किसी हलवाई की भट्टी या चाय वाले की दुकान पर जूठे कप प्लेटों को धोते-धोते दम तोड़ देता है।

सरकार ने यद्यपि सभी आदिवासी ग्रामों में प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालय खोल रखे हैं पर अधिकांश विद्यालय भवन के अभाव में पेड़ की छाया के नीचे चलते हैं। बारिश होते ही छुट्टी और स्वयं अध्यापक भी आदिवासियों की झोंपड़ियों में ही शरण लेने को बाध्य हो जाते हैं। पूर्ण देख-रेख के अभाव में ऐसा भी पाया गया कि 4 अध्यापकों वाले विद्यालय के अध्यापक अपनी मनोवृत्ति के अनुरूप बड़े मजे से अपना समय चक्र बना लेते हैं- पहले पन्द्रह दिन 2 अध्यापक आते हैं तो शेष पन्द्रह दिन दो अध्यापक। कितना प्रजातांत्रिक निर्णय है? इस प्रकार जो थोड़े-से आदिवासी बच्चे आते हैं (सिर्फ वे ही बच्चे जिनके माँ-बाप उपर्युक्त चीजों की व्यवस्था करके उन्हें स्कूल भेजने में सक्षम हैं) उनकी पढ़ाई भी अपेक्षित रूप से नहीं हो पाती है।

आदिवासी छात्राओं की शिक्षा की स्थिति तो और भी दयनीय है।

लडकों की तुलना में आदिवासी अपनी लड़कियों की पढ़ाई के बारे में कतई चिन्तित नहीं होते। वे सोचते हैं कि जाना तो उन्हें पराए घर ही है फिर उन पर क्यों पैसा बरबाद किया जाए, उल्टे घर पर रहेगी तो घर का कुछ काम-धाम ही करेगी। इस प्रकार वर्तमान में वे ही आदिवासी छात्राएँ पढ़ रही हैं, जिनके माँ-बाप साक्षर या शिक्षित हैं अथवा सरकारी या गैर सरकारी पदों पर कार्यरत हैं। लड़कियों के सामने प्राथमिक शिक्षा के बाद दिक्कत आती है कि आगे पढ़ने कहाँ जाएँ। जहाँ जाना चाहती हैं वहाँ पहले से ही अधिक छात्राएँ रह रही होती हैं। महाविद्यालयी छात्राओं के लिए भी छात्रावास का अभाव है जिसके कारण पढ़ने की इच्छुक छात्राओं को रोजाना बस से आना-जाना पड़ता है। खेरवाड़ा में समाज कल्याण विभाग का जो छात्रावास उच्च माध्यमिक स्तर तक की छात्राओं के लिए हैं वह भी अपर्याप्त है। वहाँ अवलोकन से ज्ञात हुआ है कि छात्राओं के लिए शौचालय, मूत्रालय व स्नानघर के लिए बने हुए कमरे बिल्कुल बेकार पड़े हुए हैं और सभी छात्राओं को प्रथम दो कार्यों हेतु बाहर जाना पड़ता है और स्नान के लिए छात्रावास से बाहर 50 कदम की दूरी पर लगे हैण्ड पम्प से पानी भर कर लाना पड़ता है।

राज्य सरकार की माडा योजना (परावर्तित क्षेत्र विकास उपागम)- के अन्तर्गत अलवर जिले के राजगढ़ कस्बे में अनुसूचित जनजाति के छात्रावास की कमोबेश यही स्थिति है जो खेरवाड़ा वाले छात्रावास की है। ''छात्राओं को तेल, साबुन, पोशाक, पुस्तकें, पढ़ाई-लिखाई हेतु स्टेशनरी आदि भी नहीं दी गई है।'' ऐसी परिस्थितियों में जब छात्र-छात्राएँ शिक्षा ही प्राप्त न कर सकेंगे तो उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति कैसे सुधर सकेगी?

सरकार ने आदिवासी बच्चों के रहने, खाने और विभिन्न वस्तुएँ प्रदान करने के लिए आश्रम विद्यालय भी खोले हैं, लेकिन आदिवासी बच्चों की संख्या को देखते हुए वर्तमान में वे अपर्याप्त हैं।

आदिवासियों द्वारा विभिन्न रीति-रिवाजों, जैसे - शादी, मृत्युभोज पर खर्च भी बहुत किया जाता है। सभी 160 परिवारों में मृत्युभोज और पितृपूजा की परम्परा प्रचलित है। शराब की आदत भी सदाबहार है। थोड़ा-सा भी पैसा आ जाएगा तो बाल बच्चों के खाने के बार में बाद में सोचेंगे पहले शराब पीने की

सोचेंगे। कई बार रुपए उधार लेकर भी रस्में निभाई जाती हैं।

सर्वेक्षण से निम्नलिखित बातें ज्ञात हुईं–

सारणी संख्या – 5.5

आदिवासी परिवारों द्वारा रीति–रिवाजों पर खर्च

खर्च सीमा	आदिवासी परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1,000 रुपये तक	32	20.00
1,001 रुपये से 2,000 रुपये तक	7	4.37
2,001 रुपये से 5,000 रुपये तक	84	52.50
5,001 रुपये से 8,000 रुपये तक	37	23.13
कुल	160	100.00

स्पष्टत: प्रदर्शित है कि आदिवासी परिवारों द्वारा शादी व मृत्युभोज जैसे अवसरों पर सामान्यत: 2000 रु से 5000 रुपये तक खर्च किए जाते है। इनमें से अधिकतर धनराशि उधार ली जाती है। जिसका बाद में वे जिन्दगी भर चुकारा करते रहते हैं या महाजन के यहाँ उनके बेटों को बन्धुआ मजदूर की–सी जिन्दगी गुजारनी पड़ती है। लेकिन एक बात यह भी है कि आदिवासी इन अवसरों पर धन–धान्य से एक–दूसरे की मदद भी करते हैं।

इन रीति–रिवाजों को पूरा करने के लिए आदिवासियों द्वारा लिए गए उधार की स्थिति भी प्रदर्शित है:–

सारणी संख्या – 5.6

आदिवासी परिवारों द्वारा महाजनों से लिया गया ऋण

धनराशि	आदिवासी परिवार	प्रतिशत
1,000 रुपये तक	38	23.75
1,001 रुपये से 2,000 रुपये तक	18	11.25
2,001 रुपये से 5,000 रुपये तक	9	5.63
5,001 रुपये से 7,000 रुपये तक	4	2.50
उधार नहीं लेने वाले	91	56.87
कुल	160	100.00

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस ऋण में वह धनराशि शामिल नहीं है जो आदिवासियों द्वारा अपने सगे-सम्बन्धियों व मिलने-जुलने वालों से ली गई है; क्योंकि वे उस पर ब्याज अदा नहीं करते हैं। अतः वे उसे "उधार" की श्रेणी में नहीं रखते। अनुमान किया जा सकता है कि महाजनों से उधार न लेने वाले 91 परिवार में से अधिकांश परिवार ऐसे हैं, जिन्होंने इन विभिन्न अवसरों पर रस्मों को निभाने के लिए अपने सगे-सम्बन्धियों से धनराशि प्राप्त की। इस प्रकार सुलभ ऋण के कारण उनके सामाजिक जीवन में ये कुरीतियाँ और फिजूलखर्ची खत्म नहीं हुई है।

कुल 160 परिवारों में से मात्र 19 परिवार ही ऐसे हैं, जो कृषि के उन्नत तरीकों अर्थात् उत्तम खाद, उत्तम बीज व कीटनाशक पदार्थों का इस्तेमाल करते हैं। इस प्रकार इनकी कृषि का तरीका भी परम्परागत ही है जिसके कारण अधिक फसल उत्पादन नहीं हो पाता है। कुल 160 परिवारों में से 12 परिवार ही ऐसे हैं जिन्होंने शिक्षा और रेडियो पर कृषि से सम्बद्ध विभिन्न कार्यक्रम सुनकर उन तरीकों को खेती में अपनाया भी है। इन्हीं परिवारों के पास ट्रांजिस्टर भी हैं।

अधिकतर आदिवासी परिवार बीमार होने पर पहले ऊपरी हवा (भूत-प्रेत) को कारण मानते हैं और जब मरीज की दशा बिगड़ने लगती है तो फिर उसे निकट के चिकित्सालय में ले जाते हैं, जहाँ उसके प्राण बचाना डॉक्टरों के लिए भारी पड़ जाता है।

अधिकतर आदिवासी परिवारों में वैवाहिक जीवन बिताने वाले युगलों को परिवार नियोजन के स्थायी साधनों की (नसबन्दी के अतिरिक्त) जानकारी नहीं है। चार या पाँच बच्चे हो जाने पर भी वे इस भ्रान्त धारणा के कारण नसबन्दी नहीं करवाते कि इससे कमजोरी आ जाएगी, शारीरिक काम नहीं कर सकेंगे, सहवास क्षमता घट जाएगी इत्यादि। इस वजह से परिवार में नए सदस्यों का आगमन तब तक जारी रहता है, जब तक कि प्रकृति स्वयं इस पर नियंत्रण नहीं लगा देती। इस मामले में अम्बासा के कथोड़ी जो तुलनात्मक रूप से अन्य आदिवासी जातियों से पिछड़े हैं, उन्होंने नसबन्दी करवाने मे बड़ी तत्परता दर्शायी।

अतः आदिवासियों के पारम्परिक जीवन से कुरीतियाँ और अंधविश्वास अभी दूर नहीं हो सके हैं। हाँ शहरी सभ्यता से सम्पर्क के फलस्वरूप कई

नई बुराईयाँ जैसे बेइमानी अकर्मण्यता झूठ बोलने की प्रवृत्ति आदि उनमे घर कर गई हैं

3. आदिवासियों के जीवन में बढ़ता बाह्य हस्तक्षेप

पहले आदिवासियों के अपने-अपने क्षेत्र थे जिनमें सामान्यतः अपरिचित आदमी का आना वर्जित था। उन क्षेत्रों में वे निश्चिन्त होकर सहज जीवन जीते थे। अब विकास के बढ़ते चरणों के साथ ही गैर आदिवासी लोग गाँव में पहुँचने लगे। ये लोग विद्यालयों के शिक्षक, डिस्पेन्सरी के कर्मचारी, साहूकार इत्यादि हैं। कुछ लोग तो सरकार द्वारा आदिवासियों के कल्याण के लिए भेजे गए और कुछ ने आदिवासियों के बीच अपने लेन-देन और किराना और मनिहारी की चीजों के विक्रय की संभावना देख कर गाँव में अपने-आपको स्थापित कर लिया। किराना और मनिहारी की दुकानें इतनी नहीं चलीं जितना लेन-देन का धन्धा चला और धीरे-धीरे आदिवासियों की अच्छी उपजाऊ और सिंचित जमीनें उनके हाथ से निकल कर महाजनों के कब्जे में आ गईं। इस प्रकार एक पोटली लेकर आए महाजन लोग गाँव के धन्ना सेठ हो गए और आदिवासी उनकी हर जायज और नाजायज माँग मानने को मजबूर हो गया।

सरकार द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में नियुक्त किए गए कर्मचारियों व अन्य शहरी क्षेत्रों के लिए आदिवासी संस्कृति एक अजूबे की तरह थी। उन्होंने आदिवासियों की सहायता कम की और उनके निजी जीवन में अधिक रुचि ली। आदिवासी युवक-युवतियों के सहज और निश्छल स्वभाव का भी फायदा इन कर्मचारियों ने उठाया, फलस्वरूप एक ओर अवैध सम्बन्ध आदिवासी युवतियों और गैर-आदिवासी युवकों में बढ़े तो दूसरी ओर इस तरह के सम्बन्धों के कुपरिणामों से सचेत होकर आदिवासी पंचायतों ने अपने आदिवासी युवक-युवतियों के आपसी मेल-जोल पर भी रोक लगानी शुरू कर दी। फलस्वरूप इनके सहज और निजी जीवन में हस्तक्षेप हुआ और जैसे बहता हुआ पानी रोक दिया गया। फिर बाहरी व्यक्तियों ने इनके रीति-रिवाजों और नृत्य-गायन की भी हँसी-मजाक उड़ाना शुरू किया जिससे इन भोले आदिवासियों के मन में हीन-भावना घर कर गई और वे अपने परम्परागत नृत्य-संगीत से भी उदासीन होने लगे।

शहरों में मजदूरी के लिए काम पर आने और सौदा-सुलभ लेने के

लिए आने-जाने वाले युवक, वृद्ध, नवयुवतियाँ शहर या कस्बे के रंग-ढंग से परिचित हुए। आज जो भी अकर्मण्यता, बेइमानी और झूठ की प्रवृत्ति हम इन आदिवासियों में देखते हैं वह शहरी सभ्यता की ही भेंट है। परिणाम यह है कि आज आदिवासी दूध में पानी मिलाता है, और उसे धड़ल्ले-से बेच कर चला जाता है। इस तरह से शहरी जीवन की बुराइयाँ आदिवासी जीवन मे प्रवेश कर गई हैं।

4. पर्यावरण और संस्कृति पर प्रभाव

(i) प्रकृति, विकास और आदिवासी – आदिवासियों और प्रकृति के बीच सम्बन्ध सेवक और देवी के रहे हैं। आदिवासी शहरी सभ्यता के प्रदूषण से कोसों दूर जंगलों में स्वच्छन्द विचरण करते रहे, जंगल उनकी आजीविका का प्रमुख साधन रहा है और जंगल ही उनका आश्रय-स्थल रहा है। सघन वनों में कल-कल बहते झरने या छोटी नदियाँ उनकी प्यास बुझाने के लिए पर्याप्त हैं। ये लोग कंद-मूल-फल इकट्ठे करते खाते, पानी पीकर जंगल में बनाई हुई झोंपड़ियों में रहते आए हैं। जंगल में जंगली जानवरों का भय इन्हें अधिक नहीं सताता। मुकाबला करने के लिए हथियार इन्होंने विकसित किए। कई जानवरों का शिकार भी ये भोजन के लिए करते थे। इस प्रकार प्रकृति ने अपना वरदहस्त इन पर रखा हुआ था और ये भी जंगलों को अनावश्यक नुकसान नहीं पहुँचाते थे। कुछ पेड़ों को काटने की तो आदिवासी समाज में मनाही है और जरूरत पड़ने पर भी पूरा पेड़ न काट कर उसकी टहनियां काटी जाती हैं। यही कारण है कि आज भी वनों से निकट सम्पर्क रखने की कोशिश में व्यस्त कथोड़ी आदिवासी अपनी झोंपड़ी पत्तों, घास-फूस और पेड़ की डालियों से ही बनाते हैं। मिट्टी, चूने या केल्हू का प्रयोग बिल्कुल नहीं करते। दूसरी ओर कोटा जिले की शाहबाद तहसील के सहरिया आदिवासी वनों से बहुमूल्य उपजें, जैसे-चिरौंजी, शहद, गोंद व लाख इकट्ठी करते हैं।

आदिवासी क्षेत्रों में विकास कार्यक्रमों की शुरूआत द्वितीय पंचवर्षीय योजना में हुई। इन विकास कार्यक्रमों को बनाने वाले वे लोग रहे हैं, जिनका आदिवासियों से प्रत्यक्ष सम्पर्क कभी नहीं रहा। वे आदिवासियों की आजीविका के स्रोत नहीं जान पाए। प्रकृति और आदिवासी के बीच घनिष्ठता के रिश्ते का या तो समझ नहीं पाए या समझने की कोशिश नहीं की तब पर्यावरण के

बारे में भारतीय जनता में तो क्या वैज्ञानिकों में भी इतनी चेतना और चिन्ता नहीं थी।

फलस्वरूप विकास कार्यक्रमों के नाम पर सिंचाई परियोजनाओं की स्वीकृति हुई और फिर इन विकास कार्यक्रमों को चलाने के लिए बाहरी सरकारी कर्मचारियों की फौज आने लगी। सरकार ने अपनी इस फौज को वहाँ रहने की सुविधाएँ दीं। कालोनी बनायी गयी, आदिवासी ग्रामों तक पहुँचने के लिए सड़क और यातायात के खूब सारे साधन दिए गए। आखिर इन लोगों के लिए, जिन्होंने कभी गरीबी नहीं देखी, जिन्होंने आदिवासियों का वन नहीं देखा, मजबूरन यहाँ टिकाने के लिए सरकार ने यथा-संभव सभी सुविधाएँ जुटाईं। ऐसे में सरकार को वनों की भी सफाई करनी पड़ी, फर्नीचर बनाने या अन्य कार्यों के लिए ठेकेदारों को वन काटने की भी स्वीकृति दी, फलस्वरूप ठेकेदारों ने नृशंसतापूर्वक सागवान के बेशकीमती वनों का सफाया शुरू कर दिया। इस प्रकार सारी कार्यवाहियाँ आदिवासियो की जमीन पर उनसे पूछे बिना उन्हीं के विकास के नाम पर की जाने लगीं। विभिन्न परियोजनाओं की शुरूआत के नाम पर सरकार ने ठेकेदारों को वनों की कटाई के ठेके दिए और देखते-ही-देखते ठेकेदारों ने पहाड़ियों को नगा करना शुरू कर दिया। स्थानीय राजनेताओं का उन्हें वरदहस्त मिला हुआ ही था। आदिवासी की ताकत से बाहर था इन्हें रोकना। आदिवासी तो यह भी नहीं समझ पाए कि इन वनों का विनाश इतने बड़े पैमाने पर होगा कि उनके सामने जीने का भयंकर संकट उपस्थित हो जाएगा।

आदिवासी बुजुर्ग याद करते हैं- ''उनका सामान्य जीवन सदा इतना कष्टप्रद नहीं था और अपनी जिन्दगी में वे कहीं बेहतर दिन देख चुके है - तीस-चालीस वर्ष पहले या इससे भी पूर्व। बेहतर दिनों की याद के साथ प्राय: अच्छे घने वनों की याद जुड़ी रहती है, जिनमें अनेक खाद्य पदार्थ, चारा, खाद, लकड़ी आदि पर्याप्त मात्रा में नि:शुल्क मिलती थी। अब वे घने वन प्राय: लुप्त हो चुके हैं।''इस प्रकार विकास के नाम पर इनके जनजीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप करके इनके समक्ष रोजी-रोटी का संकट खड़ा कर दिया गया। अब सरकार इन्हीं क्षेत्रों में राहत कार्यक्रम चलाने को बाध्य है, ताकि आदिवासियों को रोजगार मिल सकें और वे जीवित रह सकें।

(ii) प्रदूषण के आदिवासी क्षेत्रों में बडी फेक्ट्रियों का

संकेन्द्रीकरण तो नहीं है पर 60 से 70 किलोमीटर दूर जरूर बड़ी फैक्ट्रियों के संकेन्द्रण हैं, जैसे बाँसवाड़ा में तो नजदीक ही औद्योगिक क्षेत्र है। डूँगरपुर और उदयपुर क्षेत्रों में उदयपुर औद्योगिक क्षेत्र और बारां के सहरिया आदिवासियों से काफी दूर कोटा का औद्योगिक क्षेत्र है। हालाँकि इन क्षेत्रों में प्रदूषण अन्य क्षेत्रों की तुलना में तो कम है, परन्तु फिर भी वे जलस्रोत, जो पहले औद्योगिक क्षेत्रों से होकर निकल रहे हैं और बाद में आदिवासियों के क्षेत्र में पहुँचते हैं वे अत्यधिक प्रदूषित हो चुके होते हैं, जैसे - जावर की खदानों से निकाला हुआ जस्ता, उदयपुर के निकट देबारी के जिंक स्मेल्टर प्लांट में शोधित किया जाता है। शोधन के समय हानिकारक विषैली गैसों का धुँआ निकलता है, साथ ही पानी, जो सफाई के काम आता है वापस उसी जलस्रोत में छोड़ दिया जाता है। ऐसे में जल में रहने वाले जीव जिनमें मछलियाँ प्रमुख हैं विषाक्त हो जाती हैं। उन्हें खाने वाले आदिवासी और अन्य व्यक्ति विभिन्न घातक बीमारियों से ग्रस्त हो जाते हैं। इन जलस्रोतों का पानी नहीं पिया जा सकता और खेतों में सिंचाई के कार्य हेतु भी अयोग्य हो जाता है। बाँसवाड़ा के औद्योगिक क्षेत्रों के निकले हुए धुँए के बादलों से ,आस-पास के निवासी प्रभावित हुए हैं।

आदिवासी क्षेत्रों में जहाँ-तहाँ लगे पत्थर तोड़ने के क्रशरों ने भी स्थानीय वातावरण को प्रदूषित करने में कम भूमिका नहीं निभाई है। उड़ती हुई घातक धूल आते-जाते लोगों के फेफड़ों और वहाँ काम करने वाले आदिवासियों के फेफड़ों में अनजाने ही पहुँच कर जमा होती रहती है और परिणाम होता है-गरीब आदिवासी को क्षय रोग।

राजस्थान के जनजाति उपयोजना क्षेत्र में कई खनन परियोजनाएँ चल रही हैं, जिनके स्पष्ट प्रभावों का कोई अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है, परन्तु उड़ीसा के गंधमर्दन पर्वत क्षेत्र में लगाई जा रही भारत अल्यूमिनियम कम्पनी और मध्य प्रदेश के कोरबा ताप विद्युत गृह और कोयला खानें तथा बस्तर क्षेत्र में खनन के भयंकर दुष्परिणाम सामने आए हैं। गंधमर्दन पर्वत क्षेत्र के आदिवासी तो प्राण पण से भारत अल्यूमिनियम कम्पनी की स्थापना का विरोध कर रहे हैं। स्थापना के प्रारंभिक चरण में बालको (भारत अल्यू क) ने जब ओपन कास्ट खनन का कार्य शुरू किया तो लोगों ने संभावित विनाश को महसूस किया वर्षा के दिनो मे नदी नालों में लाल जल जाता

हुआ देखा। खनन के कारण आई बालू ने जलस्रोत सुखा दिए। रनिझवन नदी पत्थर बालू से पटी हुई है और निर्जीव हो चुकी है। गंधमर्दन पर्वत क्षेत्र के आदिवासी भुखमरी से, वनों से उपलब्ध खाद्य पदार्थों के कारण ही बचे हुए थे। जैसे ही आदिवासियों को लगा कि खनन से वन नष्ट होंगे तो उन्होंने हर कीमत पर इसका विरोध करने का निश्चय किया।

सम्भवत: बाद में इस तरह की खनन परियोजनाओं के दुष्प्रभाव राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों में होंगे। जरूरत इस बात की है कि पर्यावरण संरक्षण इतने विवेक से किया जाए कि आदिवासियों के जलस्रोतों के साथ आजीविका के स्रोतों पर भी प्रदूषण का प्रभाव नहीं पड़े।

पर्यावरण के प्रदूषण के समान ही खतरनाक है-मानसिक प्रदूषण, जो आदिवासियों के जीवन की सहजता को लीलता जा रहा है। यह परिणाम है गैर-आदिवासी सरकारी कर्मचारियों, महाजनों और शोषकों के आदिवासी क्षेत्रों में आ बसने का। आदिवासियों में भी शहरी ज़ीवन जीने की ललक बढ़ती जा रही है और ऐसे में हो रही है भौंडी नकल और उसके कई दुष्परिणाम भी सामने आ रहे हैं। आदिवासी युवतियाँ शहरी युवतियों की नकल में साज-सिंगार का सामान महँगे दामों पर खरीदती हैं। वह भी अक्सर नकली होता है। कई ऐसी चीजें जिनका सामाजिक, आर्थिक जीवन में कोई उपयोग नहीं है अब इनकी झोंपड़ियों में भी यदा-कदा दिखाई देती हैं। आदिवासी युवक खेती नहीं करना चाहता, वह नौकरी करना चाहता है। दफ्तर के बाबुओं की तरह रहना पसन्द करने लगा है। पढ़ने वाले युवकों का भी एक--मात्र उद्देश्य छोटी-मोटी नौकरी पाना हो गया है, न कि उन्हीं के क्षेत्र में कोई सम्बद्ध कुटीर उद्योग को शुरू करना। वे अब इसे पिछड़ा काम मानने लगे हैं।

आदिवासी युवतियाँ अपनी ऐसी जरूरतें, जो देखा-देखी बनी हैं; पूरी करने के लिए अपनी अस्मत का भी स्वेच्छा से सौदा कर लेती हैं। हालाँकि ऐसे कार्य गुप-चुप किए जाते हैं ताकि आदिवासी समाज को इनकी भनक न मिले फिर भी अब सड़कों के और विशेष कर राष्ट्रीय राज-मार्ग न. 8 के पास के ग्रामों में से कई में देह-विक्रय एक आम बात हो गई है। इसके पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण भूख भी है। लेकिन यह सिलसिला एक बार चल निकलता है तो थमने का नाम नहीं लेता ऐसे मे साधारण आदमी की नजरो

में आदिवासी युवतियाँ वासना-पूर्ति का सहज उपलब्ध साधन बन जाती हैं।

इस प्रकार आदिवासियों के सामाजिक जीवन में भी शहरी सभ्यता से सम्पर्क के दुष्प्रभाव देखने को मिल रहे हैं। जो यौन-जीवन पहले सहज था, अब ढका-छुपा होने लगा है। अब आदिवासी क्षेत्रों में नृत्य और गायन कम होने लगे हैं, क्योंकि ऐसे अवसरों पर शहरी शोहदों की भीड़ आ जुटती है,जो नृत्य कम देखते हैं लड़कियों को छेड़ते ज्यादा हैं। आदिवासी गाँवों में पहुँचना भी अब अगम्य नहीं रह गया है। जंगल कट चुके हैं। अतः उनकी सहज गतिविधियाँ निर्बाध नहीं चल पातीं।

आदिवासी गाँवों में महाजन लोग बहुत पहले व्यापार और धन उधार देने की संभावनाओं को देख कर बस चुके थे। उन्होंने जम कर इनका शोषण किया। इनकी जमीनों पर कब्जा किया, इन्हें शराब सहजता से उपलब्ध करायी और जिन दुर्गुणों को इनकी गरीबी ने रोका हुआ था, वे भी इनमें शुरू हुए। इस प्रकार शहरों और कस्बों के तथाकथित सभ्य लोगों के सम्पर्क ने आदिवासी जीवन के भीने-भीने महकते और खिलते जंगली पुष्पों को तहस-नहस कर दिया है।

(iii) वन-विनाश–चित्तौड़गढ़ जिले और मध्य प्रदेश सीमा पर लगे क्षेत्र में सघन वन हैं, जो सुरक्षित घोषित हैं, परन्तु वन विनाश का उदाहरण देखिए - "वन विभाग के भ्रष्ट कर्मचारियों ने जंगल से लकड़ियाँ ले जाने के लिए अपनी जेब की राशि तय कर रखी है। प्रतापगढ़ में लगे सघन वन से चोरी छिपे पेड़ों की कटाई होती है। काटे जा रहे वृक्षों में सागवान और खैर के पेड़ होते हैं।" स्पष्ट है वनों के आधुनिक रक्षक ही वनों के भक्षक बन रहे हैं। सर्वेक्षित क्षेत्रों में से कई में वृक्षों के नाम पर आदिवासियों द्वारा लगाए पेड़ ही रह गए हैं, वनों के नाम-निशान नहीं हैं। सर्वेक्षण किए गए ग्रामों में वृक्षों की स्थिति इस प्रकार है-

ग्राम रास्तापाल जिला डूँगरपुर - पहाड़ियों पर घरों के अलावा उनके द्वारा लगाए पेड़ जैसे - आम, तेंदू के वृक्ष हैं। इनके अतिरिक्त खट्टे बेरों और खजूर के पेड़ भी हैं। आम और टेमरू (तेंदू का फल) को आदिवासी अधिक फल लगने पर बाजार में जाकर बेच देते हैं, खजूर उनके खाने के काम आता है। जंगलनुमा पेड़ों की कटाई के बारे में कुछ पूछना व्यर्थ है। जो भी पेड हैं या तो खजूर हैं या फिर उनके खुद के लगाए हुए हैं या उनके

खेतों की सीमा में आते हैं। अत: उनकी आजीविका का स्रोत हैं। उनकी वे बेटे के समान रक्षा करते हैं।

ग्राम माथूगामड़ा पाल जिला डूँगरपुर - पेड़ों में महुआ, आम, बेर, रिजवे, बबूल, नीम के पेड़ हैं, किन्तु अधिकतर पेड़ निजी जमीन पर है। अत: उन्हें काटने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। किन्तु जो सार्वजनिक भूमि पर हैं उन्हें धीरे-धीरे अपने ईंधन सम्बन्धी जरूरतों के लिए आदिवासियों द्वारा काट लिया गया। अत: अब पहाड़ियाँ नंगी-सी हो गई हैं। पहाड़ियों मे भूक्षरण की क्रिया जारी है।

ग्राम सरथूना जिला डूँगरपुर - रास्ते में सीमलवाड़ा और पीठ से होकर गुजरते हुए संरक्षित वनों को देखा। अन्दर के पेड़ काफी छितराए से लगे, परकोटा भी कई जगहों से टूटा हुआ था। सड़क के किनारे छोटे-छोटे पौधों में दो जगहों पर पानी दिया जा रहा था। कई गड्ढ़े खाली पड़े थे, स्पष्ट था कि इन गड्ढ़ों में लगाए पौधे सूख गये। आदिवासियों के घरों के पास के पुराने पेड़ ही बचे हुए हैं जो इस बात की गवाही देते हैं कि इस क्षेत्र में कैसे वन थे, जो उपजाऊ भूमि निकालने, सड़क निर्माण और ईंधन सम्बन्धी जरूरतों को पूरी करने के लिए काट डाले गए। अब आदिवासियों की अपनी जमीन पर लगे हुए पेड़ों में आम, महुआ के वृक्ष ही शेष रह गये हैं।

स्पष्ट है कि आदिवासी इलाकों में जंगल तेजी से उजड़ रहे हैं। पेड़ों की कटाई से जमीन की उर्वरता का ह्रास हो रहा है, क्योंकि वृक्षों की जड़ें भूमि की उपजाऊ ऊपरी परत को जकड़ कर मूल्यवान तत्त्वों को बहने से रोकती है। अब जमीन धीरे-धीरे उतनी उपजाऊ नहीं रही फलस्वरूप अधिक खाद डालनी पड़ती है। पेड़ कटने से भूमिगत जल का स्तर और नीचे उतर जाता है। सबसे बड़ी बात यह है कि वन वर्षा को आकर्षित करते हैं। यही कारण है कि दक्षिणी राजस्थान जहाँ 60 से. मी. से 100 से. मी. वर्षा कभी होती थी, पिछले तीन वर्षों से सूखे की चपेट में है।

सरकार के द्वारा विभिन्न बहुउद्देशीय सिंचाई परियोजनाएँ भी वन विनाश के लिए जिम्मेदार हैं। इनके जलाशयों के डूब क्षेत्र में विस्तृत वन क्षेत्र आ जाता है। बाँध निर्माण हेतु जंगलों को साफ करना पड़ता है। उदयपुर के एक पर्यावरण दल ने जाखम-पन बिजली परियोजना को धरियावद क्षेत्र मे परिस्थिति के संतुलन के लिए घातक माना है। स्वयंसेवी संस्था ''प्रयास''

का कहना है – ''मात्र थोड़ी-सी बिजली पैदा करने की यह योजना वन और वन्य जीवों के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध होगी। जाखम नदी पर बाँध बनने से आस-पास के घने जंगलों का पहले ही बड़े पैमाने पर विनाश हो चुका है। सैंकड़ों हेक्टेयर सघन वन क्षेत्र बाँध की डूब में आ चुका है।'' स्पष्ट है ऐसी योजनायें पर्यावरण के लिए घातक हैं, फिर भी सरकार राजनीति से प्रेरित होकर विभिन्न वैज्ञानिक दलों की राय को अमान्य कर देती है। परिणामतः बाँध बनता है आदिवासियों के लिए और आदिवासी ही सबसे पहले वहाँ से विस्थापित होते हैं। भागना पड़ता है उन्हें, उनके स्थान पर आकर रहने लगते हैं शहरी लोग। बाँसवाड़ा जिले की पीपलखूँट पंचायत समिति के गाँव लिम्बोदा के भील आदिवासियों ने स्वीकार किया कि अब निरन्तर ऐसी स्थिति आ रही है कि कुछ ही वर्षों में जलाऊ लकड़ी मिलना कठिन हो जाएगा। स्पष्ट है आदिवासी तीव्र गति से काटे जा रहे वनों को देख कर भविष्य आदिवासी के भयावह चित्र का अनुमान लगा रहे हैं। वनों की कटाई के लिए आदिवासी तो जिम्मेदार इस सम्बन्ध में हैं कि इन्होंने भी ईंधन के लिए और रोटी कमाने के लिए पेड़ काटे हैं। दूसरी ओर जब ठेकेदार पेड कटवाता है तो वे विरोध नहीं करते। इनसे कहीं अधिक दोषी सरकारी नीतियाँ हैं, जिनके अन्तर्गत विकास कार्यक्रमों के नाम पर अंधाधुंध ठेके देकर वृक्षों की कटाई करवाई गई।

डूँगरपुर जिले की सागवाड़ा पंचायत समिति के गाँव फोफली बोर के लोग स्पष्ट कहते हैं कि ''उनके वन ठेकेदार द्वारा कडाना बाँध के विस्थापितो के पुनर्वास कार्यक्रम के अन्तर्गत काटे गए। इन वनों के लुप्त होने के बाद से ही लोग अपनी आजीविका के लिए संकट उपस्थित हुआ देखते हैं।'' 160 आदिवासी परिवारों के किए गए सर्वेक्षण के अन्तर्गत उनसे प्रश्न पूछा गया था कि उनके क्षेत्र में पेड़ किसके द्वारा काटे जा रहे हैं। इस सम्बन्ध में उन्होने जो जानकारी दी, वह इस प्रकार है–

109 परिवारों के मुखियाओं के अनुसार पेड़ों की कटाई गाँव वाले ही करते हैं। 20 परिवारों के मुखियाओं के अनुसार पेड़ नहीं काटे जा रहे हैं। 30 परिवारों के मुखियाओं के अनुसार उनके क्षेत्र में पेड़ ही नहीं हैं, काटेंगे क्या? 1 परिवार के मुखिया के अनुसार पेड़ों की कटाई ठेकेदार द्वारा की गई।

सर्वेक्षण से प्राप्त परिणामों से ज्ञात होता है कि वर्तमान में पेड़ों की कटाई छुट-पुट स्तर पर आदिवासियों द्वारा स्वयं की जा रही है, क्योंकि उनके सामने अस्तित्व का संकट उपस्थित हो गया है। वे मूलतः वनों के रक्षक रहे हैं, परन्तु विवश होकर उन्हें यह कार्य भी करना पड़ रहा है। लेकिन आदिवासियों के द्वारा काटे जा रहे पेड़ नगण्य हैं। उनकी तुलना मे कुछ नहीं है जहाँ पर सरकार ने पेड़ों की कटाई का ठेका दिया और ठेकेदार ने जमीन को साफ कर दिया। स्पष्ट है इस सम्बन्ध में वन विनाश के लिए सरकारी नीतियाँ ही अधिक जिम्मेदार रही हैं।

(iv) भोलेपन का शोषण- आदिवासियों के अशिक्षित होने का फायदा सरकारी कर्मचारियों से लेकर गाँव और शहर के महाजन तक उठाते हैं। वे आदिवासियों को लूटने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं। इसके अतिरिक्त यदि आदिवासी अशिक्षित होते हुए भी चतुर हो तब भी लुटना उसकी मजबूरी बन जाता है; विशेषकर राहत कार्यों के भुगतान के समय, जब उसे दिए गए पैसे चुपचाप न लेने पर मजदूरी से हटाने की धमकी दी जाती है। न्यूनतम घोषित मजदूरी कहीं नहीं दी जाती है।''

इसके साथ ही अगर काम करने वाली आदिवासी महिलाएँ हों तो ऐसे मे काम करवाने वाले कर्मचारी कुछ सुन्दर-सी युवतियों को चुन कर उन्हें अपेक्षाकृत कम काम देते हैं। बाद में इन युवतियों का दैहिक शोषण किया जाता है। काम माँगने वाली युवतियों से कर्मचारियों की छेड़-छाड़ इन क्षेत्रों मे अब बहुत साधारण-सी बात हो गई है। ''पुरुषों से महिलाओं को एक या दो रुपये कम मजदूरी दी जाती है।'' कम धन राशि देने के पीछे कारण यह दिया जाता है - ''तुमने आदमियों के बराबर काम ही नहीं किया, बराबरी के पैसे किस बात के।''

आदिवासियों में गरीबी इतनी अधिक है कि थोड़े-से पैसों के लिए युवतियों द्वारा गलत मार्ग अपना लिया जाता है। कुछ जगहों पर तो इन लोगों ने इसे अपनी नियति मान लिया है। उदयपुर-अहमदाबाद राजमार्ग नं. 8 पर डूँगरपुर जिले के गाँवों में फलता-फूलता देह-व्यापार इस बात का सबूत है। इसके अतिरिक्त भी आदिवासी युवतियाँ सामान्यतः जहाँ दिन को काम करती हैं, अगर रात को वहीं निर्माण कार्य-स्थल पर रुकती हैं तो ऐसी घटनाएँ साधारण हैं। कई छोटे-मोटे होटल भी देह-पिपासुओं को आदिवासी

युवतियाँ चोरी-छिपे उपलब्ध करवाते हैं। यह काम काफी सुनियोजित ढग से चल रहा है।

सरकार भी इनके द्वारा की गई मजदूरी का देरी से भुगतान करके इनके शोषण के लिए अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी है। देरी से भुगतान के फलस्वरूप आदिवासी परिवार को खाने के लिए भोजन चाहिए और वह महाजन से कर्जा लेता है, परिणामत: वह कभी न छूटने वाले कर्ज के जाल में फँस जाता है। इसका उदाहरण है - ''डूंगरपुर जिले की जसोला पंचायत के तंबूलिया ग्राम की मुख्य विशेषता कुछ भूमिपतियों, साहूकारों के शोषण की है, जिन्होंने अधिकतर भूमि और लगभग सारी सिंचित भूमि पर कब्जा कर लिया। गाँव के लगभग 3,000 अन्य परिवार जितना खाद्यान्न पैदा करते हैं उतना ये छः परिवार ही अपनी भूमि पर पैदा कर लेते हैं या करवा लेते है।'' जब कर्जा नहीं चुकता तो आदिवासी परिवार का एक नवयुवक उस महाजन के घर पर नौकरी का काम करने लगता है। इस तरह आदिवासी बंधुआ मजदूर भी बन जाते हैं। आदिवासियों द्वारा अपना काम-काज करवाने के लिए या कोई ऋण अनुदान प्राप्त करने के लिए बैंक अधिकारियों, कर्मचारियों को वन उपज या पैसे या मुर्गा, बकरा भेंट करना आम बात है। सामान्यत: वे नकदी नहीं देते, क्योंकि उनके पास पैसे होते ही नहीं हैं।

(v) विकास कार्यक्रमों के अल्पकालीन प्रभाव - सरकार द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में बड़ी सिंचाई परियोजनाओं को छोड़कर जो विकास कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, वे सभी नि:सन्देह काफी लाभदायक हैं। इनमें सभी का उद्देश्य स्थायी अथवा अस्थायी परिसम्पदा के निर्माण के साथ क्षेत्र के आदिवासी पुरुष-महिलाओं को रोजगार उपलब्ध कराना भी है। विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत आदिवासियों के विकास के लिए चलाए जाने वाले विभिन्न कार्यक्रम आते हैं ताकि वे अपने जीवनयापन के लिए स्थायी रूप से कुटीर उद्योग या पशुपालन जैसे उद्यम शुरू कर सकें। विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत ही बड़ी व छोटी सिंचाई योजनाएँ, विद्युत उत्पादन योजनाएँ इत्यादि आती हैं। राहत कार्यक्रमों के तहत सूखे या अकाल की मार से पीडित आदिवासियों को; जिनके खेतों में फसलें उत्पादित नहीं हो सकी हैं ओर जिनके पास जीवनयापन के अन्य साधन नहीं हैं, उन्हें राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत रोजगार प्रदान करना है। ऐसे कार्यक्रमों के अन्तर्गत

वर्तमान में वृक्षारोपण हेतु गड्ढा खुदवाना, सुरक्षित वन क्षेत्रों के चारों ओर पत्थरों को चुन करके परकोटा बनाना, सड़क निर्माण, एनीकट निर्माण, मेड़बन्दी, शाला भवन, पटवार भवन, ग्राम सेवक या आंगनबाड़ी भवन निर्माण कार्यक्रम, मिट्टी खोद कर तालाब की पाल पर डालना, नए कुओं की खुदाई करना, नहर खोदना इत्यादि चलाए जा रहे हैं। इन राहत कार्यक्रमों में से कुछ के माध्यम से स्थायी परिसम्पत्तियों का निर्माण कार्य किया जा रहा है, ताकि एक ओर गाँव वालों को रोजगार मिले तो दूसरी ओर उनकी या उनके बच्चों की सुविधा के लिए भवन या सड़क भी बन जाए।

इनके अतिरिक्त राहत कार्यक्रमों के माध्यम से अस्थाई परिसम्पत्तियों, जैसे-मेड़बन्दी, मिट्टी खोद कर तालाब की पाल पर डालना इत्यादि भी चलाए जा रहे हैं, ताकि कृषकों के खेतों को सिंचाई सम्बन्धी सुविधा भी प्राप्त हो सके और साथ ही उनकी भूमि भूक्षरण से भी बची रहे। इन कार्यों का लाभ उन आदिवासियों को ही मिलता है, जिनके खेतों के आस-पास ये काम चलाए जाते हैं। हालाँकि बाद में ग्राम से सम्बद्ध सभी खेतों की मेड़बन्दी का कार्य किया जाता है। राहत कार्यक्रमों से लोगों को रोजगार मिल रहा है और स्थायी परिसम्पत्तियों का निर्माण भी हो रहा है।

जहाँ तक स्थायी परिसम्पत्तियों के निर्माण की बात है, सर्वेक्षित ग्रामों में विभिन्न स्थानों पर राहत कार्यक्रमों के तहत कुछ स्थायी सम्पत्तियाँ बनायी जा रही थीं, जैसे शाला भवन निर्माण या सड़क। कुछ पहले इन्हीं कार्यक्रमों के तहत बनी हुई स्थायी परिसम्पत्तियाँ भी हैं, जिनके बारे में लोगों का कहना है कि दीवारों का पलस्तर जल्दी उखड़ गया है। सड़कों की भी स्थिति ऐसी ही है, जल्दी वे आधे पक्के रोड़ का रूप ले लेती हैं, जिन पर कंकड़ निकलने लगते हैं। इस प्रकार स्थायी परिसम्पत्तियों में जितना टिकाऊपन होना चाहिए, उतना नहीं है।

राहत कार्यक्रमों का सबसे बड़ा फायदा यह है कि गाँव वालों की जरूरतें पूरी हो रही हैं, अर्थात् उनके ग्राम तक सड़क पहुँचनी चाहिए तो राहत कार्य सड़क निर्माण से ही सम्बन्धित होगा, विद्यालय भवन बनना चाहिए तो निर्माण कार्य विद्यालय भवन का ही होगा। इस सम्बन्ध में आदिवासियों के क्षेत्र के एक विधायक का झुँझलाहट भरा वक्तव्य बड़ा ही मजेदार है- "आज हम जिस तरह से इनके कल्याण कार्य करना चाहते है

उस तरह नहीं कर पा रहे हैं, बल्कि जिस तरह से गांव वाले मिल कर कहते है, हमें वोट की खातिर वैसा ही करना पड़ता है। जैसे- गाँव वाले कहें, सड़क आनी चाहिए तो आएगी.......... नहीं आनी चाहिए तो नहीं आएगी।'' कुछ भी हो वर्तमान पद्धति ही ठीक है। आदिवासियों का विकास उनकी मन-मर्जी और आवश्यकताओं के मुताबिक ही होना चाहिए। हमें उन पर कोई कार्यक्रम, विकास के नाम पर थोपना नहीं चाहिए। आदिवासियों द्वारा अब इनके स्वयं के प्रयोग हेतु कुएँ खुदवाने पर जोर दिया जा रहा है। इस प्रकार राहत कार्यों के माध्यम से उनके स्वयं के खेतों में सिंचाई के स्थायी साधन का निर्माण हो जाता है।

जहाँ तक विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत बड़ी परियोजनाओं की बात है। वर्तमान में अल्पकालीन प्रभावों के अन्तर्गत सैकड़ों आदिवासियों को रोजगार मिल रहा है पर साथ ही उन परियोजनाओं के निर्माण हेतु बेशकीमती घने जंगल भी काटे जा चुके है, जो पर्यावरण के क्षेत्र में महान क्षति है। हजारों आदिवासियों को विस्थापित होना पड़ा है। माही, जाखम, सोम-कमला परियोजना, कडाना बाँध परियोजना आदि के कारण विस्थापितों की संख्या बहुत बढ़ गई है।

दूसरी ओर आदिवासी विकास के तहत लोगों को विभिन्न कुटीर उद्योगों व अन्य कार्यों यथा- मुर्गीपालन, पशुपालन, रेशम के कीट पालने हेतु ऋण दिया जाता है पर क्रियान्वयन में देरी और लाभ प्राप्तकर्त्ता को इतने चक्कर लगवाए जाते हैं, कि उसका सारा उत्साह मर जाता है। फिर लक्ष्य पूरे करने के बाद में निरीक्षण बिल्कुल नहीं किया जाता। स्थायी परिसम्पत्तियों, जैसे- कोई मशीन दे देने के बाद उसे गरीबी की रेखा से ऊपर मान लिया जाता है, भले ही कच्चे माल की अनुपलब्धता के कारण मशीन का उपयोग ही नहीं हो पा रहा हो। कई बार इन उदासीनताओं का लाभ उठाकर आदिवासी इन मशीनों या अन्य चीजों को बेच भी देते हैं और इस प्रकार प्राप्त पैसे को अनुपयोगी कार्यों में खर्च कर देते हैं। फलस्वरूप उन पर कर्जा भी चढ़ जाता है और वे गरीबी से उबर भी नहीं पाते लेकिन कई लाभप्राप्तकर्त्ताओं ने इन ऋणों का सदुपयोग भी किया है और उनकी आर्थिक स्थिति भी सुधरी है।

(vi) विकास कार्यक्रमों के दीर्घकालीन प्रभाव- जनजाति उपयोजना क्षेत्र वास्तव में बहुत संवेदनशील क्षेत्र है. यहाँ की अपनी परम्पराएँ, वनों के

प्रकार और सघनता, पुरातत्त्व बेशकीमती हैं। विकास कार्यक्रम के दीर्घकालीन प्रभावों के अन्तर्गत बड़ी परियोजनाएँ, जैसे - सिंचाई व जल विद्युत परियोजनाएँ आती हैं, जिनमें 5-7 वर्ष तो बनने में ही लग जाते हैं। बाद में काफी बड़े क्षेत्र मे आदिवासी कृषकों को सिंचाई सुविधा प्राप्त होती है। विद्युत शक्ति का फायदा तो बहुत कम आदिवासी उठा पा रहे हैं। हाँ, निर्माण कार्य के दौरान उन्हें रोजगार जरूर मिल जाता है। सैकड़ों आदिवासी परियोजना के निर्माण कार्यकाल के दौरान पास ही झुग्गी-झोंपड़ियाँ डाल कर रहने लग जाते हैं। इसके आदिवासियों पर दुष्परिणाम भी होते हैं। वे शहरी जीवन की नकल करने लग जाते हैं। उनकी बहू-बेटियाँ सरकारी अधिकारियों, कर्मचारियो के घरों में नौकरानी का काम करने लग जाती हैं, इनमें से कई की कामवासना का भी शिकार हो जाती हैं। माही प्रोजेक्ट के पास के झुग्गी-झोंपड़ियों में आदिवासियों के ऐसे बच्चे खेलते हुए मिलते हैं, जो शक्ल सूरत में आदिवासी नहीं लगते। यह सब इन्हीं परिस्थितियों का परिणाम है। इनकी मूल नस्ल में इस प्रकार के गम्भीर परिवर्तन हो रहे हैं।

बड़ी परियोजना के दीर्घकालीन प्रभावों में सबसे बड़ा प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता है, वनों के कट जाने से भूक्षरण बढ़ जाता है, आदिवासियों की आजीविका के स्रोत मारे जाते हैं और वर्षा में भी कमी आती है। फलत: जहाँ पर नहरें नहीं पहुँचतीं, उन क्षेत्रों के आदिवासियों को भयंकर सूखे का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर-''60.35 करोड़ रुपये की लागत का जाखम बाँध (धरियावद तहसील) मूलत: सिंचाई के लिए बनाया गया है पर अब इससे विद्युत उत्पादन करने की योजना पर भी काम चल रहा है।'' थोड़ी विद्युत पैदा करने की यह योजना जंगलों व जीव-जन्तुओं के लिए हानि-कारक सिद्ध हुई हैं और बाँध बनने से पहले ही आस-पास के घने जंगल काटे जा चुके हैं। इस प्रकार की पर्यावरणीय क्षति अपूरणीय होती है।

5. लक्ष्य व उपलब्धियाँ

आदिवासी क्षेत्रों में उच्च जनसंख्या वृद्धि, अशिक्षा, गरीबी, ऋणग्रस्तता, कृषि पर निर्भरता, बेरोजगारी तथा अंधविश्वास सामान्य लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। प्रत्येक योजना का लक्ष्य इन्हीं समस्याओं से जूझना होता है। जो धनराशि जनजाति उपयोजना क्षेत्र में खर्च की गई है उससे वहाँ आधारभूत सुविधाएँ गैर-जनजाति क्षेत्र की तुलना में बढ़ी हैं, जैसे- विद्यालय, सड़कें, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र इत्यादि।

यह स्पष्ट रूप से स्वीकारा गया है कि ''विकास के अधिकतर चिह्नों के सन्दर्भ में जनजाति उपयोजना क्षेत्र अभी भी काफी पिछड़ा हुआ है। मानवीय संसाधनों के विकास की समस्या, सूखा, आधुनिक तकनीक का कम उपयोग, कृषि जोतों का लघु आकार, साक्षरता की निम्न दर, उच्च बेरोजगारी वृद्धि दर, अपर्याप्त सिंचाई सुविधाएँ, ऋणग्रस्तता की उच्च दर, कृषि पर निर्भरता, विपणन जाल की अपर्याप्तता तथा प्रशासन की आदिवासी क्षेत्रों में जाने व कार्य करने के प्रति अनिच्छा।'' ऐसे घटक हैं जो जनजाति उपयोजना क्षेत्र में सर्वेक्षण व अवलोकन करते समय स्पष्टत: ज्ञात हो जाते हैं।

किए गए सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि आदिवासियों के विकास के लिए बनाई गई कुछ योजनाएँ उनकी जरूरतों के मुताबिक नहीं हैं। सामान्यत: आदिवासी की आर्थिक सहायता स्वीकृत करने के बाद उसके द्वारा चलाई जा रही परियोजना अर्थात् कुटीर उद्योग या अन्य ज़ीविकोपार्जन सम्बन्धी कार्य का निरीक्षण व मूल्यांकन नहीं किया जाता। आदिवासी के समक्ष उस कार्य में आने वाली कठिनाइयों का निराकरण नहीं किया जाता। फलत: सहायता-प्राप्त आदिवासी की कार्य-प्रगति होती है-नौ दिन चले अढ़ाई कोस।

अधिकांश लक्ष्यों की वास्तव में प्राप्ति नहीं हो पाती है और सिर्फ वित्तीय वर्ष के अन्तिम महीनों- फरवरी, मार्च - में लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अंधाधुंध ऋण वितरण या एकीकृत ग्रामीण विकास योजना के अन्तर्गत नई परियोजनाओं के लिए धन वितरण किया जाता है, फलत: सक्षम और अक्षम दोनों तरह के आदिवासियों को ऋण मिल जाता है। वे उसका सही ढंग से उपयोग नहीं कर पाते और यह बैंक ऋण डूबत खाते जाता है। आदिवासी की स्थिति वही ढाक के तीन पात वाली रह जाती है। सरकारी राहत कार्यक्रमों में मजदूरी का भुगतान देरी से करना सामान्य विशेषता बन गई, फलस्वरूप राहत कार्य का मकसद ही असफल हो जाता है।

अधिकतर उपलब्धियाँ कागजी होती हैं। कहीं पर कार्यरूप में परिणित भी होती हैं, जैसे- सड़क निर्माण, तो वह इतनी घटिया होती है कि दूसरे-तीसरे साल ही इस तरह की गई वर्जिश की कलई खुल जाती है। निम्न स्तर पर कार्यक्रम अधिकारी इन विकास कार्यक्रमों में रुचि नहीं लेते

है। उनकी आदिवासी विकास में कोई रुचि नहीं है। उन्हें अपनी औपचारिकताऐं पूरी करनी होती हैं ताकि उनके वेतन उन्हें मिलते रहें। समर्पित अधिकारियों और कर्मचारियों की कमी है।

भ्रष्टाचार की स्थिति यह है कि आदिवासियों के लिए सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर भेजा गया गेहूँ कहाँ-का-कहाँ पहुँच जाता है और जरूरतमन्द बेबस आदिवासी ताकते रह जाते हैं। कर्मचारियों की मिली भगत (राजस्थान अनुसूचित जनजाति सहकारी विकास निगम) से बड़े व्यापारी सरकारी वितरण केन्द्र पर पहुँचने से पूर्व ज्यादातर अनाज खरीद कर अपने गोदामों में पहुँचा देते हैं। ऐसे कई मामले पुलिस ने व सरकार ने पकड़े जहाँ खाद्य निगम के गोदामों से चले ट्रक उदयपुर से सीधे अहमदाबाद या बम्बई भेजे जा रहे थे। सरकारी कर्मचारी जायज काम के लिए भी निरीह आदिवासी से रिश्वत लेने में नहीं चूकता। आदिवासी विकास कार्यक्रमों और राहत कार्यक्रमों के निरीक्षण के लिए जब कोई अधिकारी क्षेत्र में जाता है, तो उसकी आवभगत की जिम्मेदारी काम करवा रहे ओवरसियरों व अन्य कनिष्ठ अधिकारियो की होती है। ऐसे में मुर्गा या बकरा आदिवासी का ही बली चढ़ता है।

समग्र रूप से हम देखें तो ज्ञात होता है कि चलाए जा रहे आदिवासी विकास कार्यक्रम अपर्याप्त हैं और वे आदिवासियों की प्राथमिकताओं के अनुसार नहीं हैं। जरूरतमंद आदिवासियों को रोजगार नहीं मिल पाता। वह अपना धंधा भी नहीं खोल पाता, फलस्वरूप बेरोजगार पड़ा रहता है। अगर वह राजस्थान गुजरात सीमा पर बसे किसी गाँव का होता है, तो गुजरात में मजदूरी करने चला जाता है; क्योंकि राजस्थान की तुलना में वहाँ आर्थिक गतिविधियाँ अधिक हैं, काम मिलने की संभावना रहती है। सर्वेक्षण किए गए 160 परिवारों से यह पूछने पर कि अगर उन्हें रोजगार नहीं मिले तो वे क्या करेंगे, यही रहेंगे या रोजगार ढूंढ़ने बाहर आएँगे; ऐसे में 61 परिवार के मुखियाओं ने उत्तर दिया कि राजस्थान में काम नहीं मिलने पर वे गुजरात के गाँवों में काम करने चले जाते हैं और वर्तमान में इनके भाई या बेटे गुजरात के गाँवों में मजदूरी कर भी रहे हैं। शेष 99 परिवार के मुखियों ने बताया कि अगर उन्हें काम न भी मिले तो वे अपनी झोंपड़ी पर ही रहेंगे। आस-पास कोई काम होगा तो कर लेंगे या समीपवर्ती शहर में या कस्बे में जाकर मजदूरी तलाशेंगे। स्पष्ट है सरकारी राहत और विकास योजनाएँ लोगों की

जरूरतों को पूरा करने में असफल रही हैं तभी वे रोजगार की तलाश मे भटकते हैं। एक परिवार से एक सदस्य का अस्थायी रोजगार पा जाना कोई मायने नहीं रखता। अन्य सदस्यों को रोजगार की तलाश रहती है और रोजगार चाहने वालों में पुरुष ही नहीं महिलाएँ भी काफी होती हैं।

कृषि आजीविका का महत्त्वपूर्ण साधन हो गई है और अनेक आदिवासी परिवारों के लिए यह आमदनी का एक मात्र जरिया है। कृषि की स्थिति यह है कि अधिकतर आदिवासी अपने खेतों से 4 महीने खाने लायक ही अनाज प्राप्त कर पाता है और वह भी बारिश की मेहरबानी से। वर्षा पिछले तीन वर्षों (1999-2002) से जनजाति उपयोजना क्षेत्र में अपर्याप्त रही। फलस्वरूप आदिवासी को अपने और अपने परिवार को जीवित रखने के लिए अधिक कठिन कामों की ओर झाँकना पड़ा। जिनको सरकारी राहत कार्यक्रमों पर रोजगार मिल सका वे वहाँ काम करने लग गए। शेष आदिवासी जंगल से लकड़ी चुराने, बड़े किसानों या महाजनों के यहाँ बहुत कम मजदूरी पर काम करने लगे। कई आदिवासी शहरी असामाजिक तत्त्वों के लिए व्यापारिक तौर पर शराब खींचने का काम करने लगे या फिर रोजगार की तलाश में दूर-दूर तक जाने लगे। स्थिति यह है कि परिवार के सभी सदस्यों के पसीना बहाने पर भी अल्पपोषण या कुपोषण की स्थिति लम्बे समय तक बनी रहती है।

जनजाति उपयोजना क्षेत्र में चलायी जा रही विभिन्न विकास परियोजनाओं से आदिवासियों को अपेक्षित लाभ न मिलते देख कर और यह महसूस करके कि आदिवासी खैरात समझ कर स्वीकार कर लेते हैं और मन से उस काम को नहीं करते, उदयपुर संभाग के तत्कालीन आयुक्त व जनजाति विकास विभाग के सर्वोच्च अधिकारी श्री एम. एल. मेहता ने "सहभागी विकास योजना की शुरूआत की ताकि विकास कार्यों से लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों में सक्रियता लाई जा सके।" फिर भी जनजाति उपयोजना क्षेत्र में साधारण जनों और आदिवासियों के मध्य भयंकर आर्थिक विषमता है। इनका शोषण हो रहा है और प्रभावित होने वाले आदिवासियों की चिन्ता के बिना विकास कार्यक्रमों का संवेदनहीन क्रियान्वयन जारी है।

बाँध निर्माण और विभिन्न परियोजनाओं के कारण जंगल भी नष्ट हुए है और आदिवासी भी विस्थापित हुए हैं। विकास परियोजनाओं से आदिवासियो को चिढ नहीं है परन्तु जब उनकी आजीविका के स्रोत जंगल कटने लगते

हैं और उन्हें उनकी जमीन से हटाया जाता है तो उनका आक्रोश स्वाभाविक है। फिर उन्हें उनकी अधिगृहीत की गई भूमि का भी पूरा मुआवजा नहीं मिल पाता है। इस तरह से आदिवासी हर प्रकार से घाटे में ही रहता है।

6. आदिवासियों की विकास कार्यक्रमों पर प्रतिक्रिया

आदिवासी वास्तव में योगी हैं, आज उन्हें जो कुछ भी मिल गया, उसमें वे खुश हैं। कल की उन्हें चिन्ता नहीं है। उन्हें कोई आकांक्षा भी नहीं है। इसी वजह से कृशकाय शरीर के होते हुए भी उनकी आँखें, पूछने पर कि क्या तकलीफ है? संतोष से भरी हुई शायद यही कहती हैं "जो भी है ठीक है।" "ऊपर वाले का शाप है, भोग रहे हैं।" लेकिन अब धीरे-धीरे आदिवासियों की इस तस्वीर में भी परिवर्तन आ रहा है। उनमें असंतोष है। वे काम करना चाहते हैं, काम नहीं है। बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं पर पैसे नहीं हैं।

डूँगरपुर जिले के गाँव रास्तापाल के फला खरपडा के डामोर आदिवासी का कहना है- "स्कूल यहाँ से डेढ़-दो किलोमीटर दूर है। दूरी के कारण छोटे बच्चे वहाँ जाने में आना-कानी करते हैं।" बात सही भी है लेकिन इस समस्या का कोई इलाज भी नहीं है। हर मोहल्ले में तो स्कूल खोला नहीं जा सकता और आदिवासियों की टापरियाँ (झोंपड़ियाँ) दूर-दूर तक बिखरी हुई हैं। यह तो है सामान्य समस्या।

आदिवासियों की राहत कार्यक्रमों पर पहली प्रतिक्रिया है कि सभी चाहने वाले लोगों को काम नहीं मिलता, दूसरी शिकायत है कि मजदूरी पूरी नहीं दी जाती है। इस बारे में डूँगरपुर जिले कें माथूगामड़ा ग्राम में किए जा रहे राहत कार्य का सर्वेक्षण करने पर वहाँ देखा कि एनीकट निर्माण कार्य चल रहा है अर्थात् जानवरों के पीने योग्य व सिंचाई योग्य पानी को एकत्र करने के लिए विशाल पक्के होज का निर्माण कार्य। अधिकांश बूढ़े मजदूर बैठे हुए थे और 25-35 आयुवर्ग की महिलाएँ धीरे-धीरे कार्य कर रही थीं अर्थात् ईमानदारी दोनों तरफ ही नहीं है लेकिन सरकारी पैसे का दुरुपयोग हो रहा है, क्योंकि जो पूरा पैसा पंचायत समिति को मिलता है वह आदिवासियों में मजदूरी के रूप में बँटता नहीं है। ओवरसियर से कम भुगतान के बारे में पूछने पर उसने जवाब दिया कि इनके द्वारा किए काम के माप (मेजरमेंट) के अनुपात में भुगतान किया जाता है। जब मैंने मस्टररोल देखने की इच्छा

जाहिर की तो उसने अपनी विवशता बताई कि उसके पास नहीं है।

मुड़ासेल ग्राम जो जिला बाँसवाड़ा की घाटोल पंचायत समिति के अन्तर्गत है उसके फला (मुहल्ला) आँकरिया में आदिवासियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। उनकी एक स्वर में शिकायत थी- ''आप देख रहे है जमीन परती पड़ी है। घर में खाने को कुछ भी नहीं है और सरकारी कामो पर मजदूरी पर भी हमें नहीं लिया जा रहा है। हमारी आमदनी का कोई और जरिया नहीं है।'' वास्तव में, उनकी दयनीय स्थिति को देख कर मेरे साथी की आँखों में आँसू आ गए जो शोधकार्य के अन्तर्गत प्रश्नावली भरवाने में मेरी सहायता कर रहा था।

माही नदी के उस पार पीपल-खूँट पंचायत समिति के अन्तर्गत आदिवासियों में से एक काफी उत्तेजित हुआ बोला- ''यदि सरकार ने और राहत कार्य नहीं खोले तो आदिवासी अपनी झोंपड़ियों में आत्म-हत्या कर लेंगे या फिर भ्रष्ट नेताओं या कर्मचारियों पर संगठित होकर हमला कर देंगे।'' इस तरह से आदिवासियों में असन्तोष बहुत है। क्षेत्रीय नेताओं की उदासीनता के बारे में उनका कहना था- ''नेता तो चुनाव के समय ही आते हैं और उस समय पैसे बाँटे जाते हैं और शराब पिलाई जाती है। उसके बाद नेता आकर गाँव में झाँकता भी नहीं है।''

सूखे के कारण आदिवासी क्षेत्रों में पानी की बहुत समस्या है। सरकार उन्हें पेयजल उपलब्ध करवाने में असफल रही है। डूँगरपुर जिले के सीमलवाड़ा पंचायत समिति के ग्राम सरथूना के ऑजनीफला में एक भी हैण्डपम्प नहीं है, लगभग एक-दो कि.मी. दूर जाकर पानी लाना पड़ता है। तालाब है पर वह सूख गया है। कुएँ खोदे जा रहे हैं, परन्तु अभी पानी नहीं निकला है। स्पष्ट है कि आदिवासियों की समस्याएँ गंभीर हैं। जरूरत है विकास कार्यक्रमों में तेजी लाने के साथ ही संवेदनशील प्रशासन की जो इनकी समस्याओं के बारे में सोचे और उनके निदान हेतु कार्य करे।

□□□

षष्ठम अध्याय

विभिन्न आदिवासियों के सामाजिक जीवन की विशिष्टताएँ

1. भील

सर्वेक्षण की शुरूआत डूँगरपुर जिले के रास्तापाल ग्राम के फला (मोहल्ला) खरपड़ा से की गई। रास्तापाल वह ग्राम है जहाँ पर आजादी का बिगुल बजा था और गाँव के सेवा संघ के कार्यकर्त्ता नानाराम और भील कन्या काली बाई ने सामन्तशाही के अन्याय का सामना करते हुए वीरगति पायी थी।

इस मोहल्ले में खांट (भील), मनोत (भील) तथा डामोर आदिवासियों के ही घर हैं। भीलों और डामोरों में किसी तरह भी रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं है। भीलों की एक विशेषता यह है कि एक छोटी पहाड़ी अर्थात् डूँगरी पर एक ही घर है, उससे ये आपस में लड़ाई-झगड़े से भी बचे रहते हैं और दूसरा कारण यह है कि उसी घर के पास खेती के लिए इन्होंने जमीन भी साफ कर ली हैं। इससे घर से खेत तक आने-जाने का श्रम बच जाता है।

भील बहुत गरीब हैं, बच्चों के तन पर पूरे कपड़े नहीं हैं। महिलाएँ वही मैले कपड़े पहने हुए हैं। गरीबी ने इनका सब कुछ छीन लिया है, सिर्फ उनकी मुस्कान ही नहीं छीनी है। केल्हू की बनी झोपड़ी में वे रहते हैं, गारे (मिट्‌टी) की दीवार है। घर का दरवाजा नहीं है। रात को सोते समय बस खाट (पलंग) अड़ा देते हैं ताकि कोई जंगली जानवर नहीं घुसे। दीवार गोबर से लीपी गई है और दीवार पर माँडने भी माँडे गये हैं। झोंपड़ी अंदर से खाली-खाली है। उनके ओढ़ने-बिछाने के गोदड़े (बिस्तर), हल तथा चार-पाँच मुर्गियाँ हैं। लगातार सूखे के कारण भी खेती से कुछ नहीं मिला। यहाँ पर अधिकतर मक्का, बाजरा, तुअर (अरहर) व उड़द की खेती की जाती है, जहाँ पर सिंचाई की सुविधा है वहाँ गेहूँ, चावल भी पैदा कर लेते हैं।

अब बच्चों को शिक्षा दिलाने के प्रति इनकी रुचि बढ रही है पर पैसे

की समस्या आड़े आ जाती है। कहाँ से पोशाक सिलवाएँ, किताबें कापी लाएँ, जबकि घर में खाने के ही टोटे पड़ रहे हों। स्कूल 2-3 कि. मी. दूर होने से छोटे बच्चे वहाँ तक जाने में आनाकानी करते हैं।

ये लोग संयुक्त परिवार में नहीं रहते। लड़का ज्योंही बड़ा होता है, शादी हो जाती है। वह अलग हो जाता है और उसी पहाड़ी पर या अलग पहाड़ी पर अपनी झोंपड़ी डाल लेता है। भीलों में शादी सामान्यतः बड़े होने पर ही की जाती है। आदिवासियों में शादी के प्रति लड़की वाले चिन्तित नही होते बल्कि लड़के वाले होते हैं और वे ही प्रस्ताव लेकर लड़की के पिता के पास जाते हैं और एवज में दो हजार रुपये लड़की के बाप को देकर लड़की को ब्याह कर लाते हैं। यह लड़की के बाप को एक कार्यकर्त्ता (लड़की) की कमी की क्षतिपूर्ति के रूप में दिए जाते हैं। फलस्वरूप भील नवयुवक अपनी पत्नी की महत्ता समझता है तथा उसे सम्मान भी देता है। आदिवासियों के जीवन में मनोरंजन के तीन साधन हैं, शराब, नृत्य और सेक्स। भील आदिवासी भी इसके अपवाद नहीं हैं। हालाँकि इनके खाने की कड़की रहती है लेकिन त्यौहारों के मौके पर ये नहीं चूकते। "महुड़ी" (महुए के फूल के सत से बनाई गई शराब) जो अवैध रूप से आदिवासी क्षेत्रों में ही खींची जाती है, ये बड़े शौक से पीते हैं। यही कारण है कि जो पैसा इनको परिवार के भोजन पर खर्च करना चाहिये, अकसर कमाने वाला उसका एक बड़ा हिस्सा शराब पर खर्च कर देता है, फलस्वरूप परिवार के अधिकतर सदस्य कुपोषण के शिकार होते हैं। उनकी संतान भी कमजोर ही होती है। भील अपनी हैसियत से ज्यादा धन लड़के-लड़कियों की शादी व मृत्युभोज में खर्च करते हैं लेकिन इनकी आपसी सहयोग की रीति भी अनोखी है जो हम शहरियों के लिये प्रेरणास्पद है। जब किसी के लड़के की शादी होती है तो सगे-सम्बन्धी एवं पड़ौसी सब उसको रुपयों व अनाज से मदद करते हैं। बदले में जब कभी भी दूसरे की शादी या कोई समारोह हो तो अब उस लड़के के बाप को दूसरे की दुगनी मदद करनी पड़ती है। एक तो पहले का चढ़ा हुआ दायित्व उतारना और दूसरा अपनी ओर से योगदान देना। इस प्रकार यदि "क" आदिवासी ने "ख" आदिवासी भील के लड़के की शादी में पचास रुपये का सहयोग दिया तो जब "क" आदिवासी का कोई काम पडेगा तो "ख" आदिवासी उसे सौ रुपये का सहयोग देगा

भीलों में बहुविवाह प्रथा तो है पर अब किसी के पास इतने पैसे नहीं हैं कि एक औरत के रहते हुए दूसरी औरत ला सके। अतः हर घर में एक-पत्नी प्रथा ही होती है। भीलों में विवाह पूर्व और विवाह-पश्चात् अवैध सम्बन्ध चोरी-छिपे चलते हैं। यहाँ तक कि नजदीकी रिश्ते भी शारीरिक सम्बन्धों से नहीं बचे हैं। ये लोग सेक्स का उन्मुक्त भोग करते हैं। कुपोषण से पीड़ित होने पर भी ये संयम से काम नहीं लेते और शरीर की प्रतिरोध शक्ति कम होने से कई बीमारियाँ भी इनको जल्द घेर लेती हैं। बहुस्त्री-गमन के कारण इनको यौन-रोग भी होते हैं जिन्हें ये अक्सर किसी को नहीं बताते और ये रोग जानलेवा सिद्ध होते हैं।

भीलों में विधवा औरत की दुबारा शादी तो नहीं होती पर ''लूगड़ा औढ़ाने'' की प्रथा है अर्थात् यदि विधवा औरत को किसी दूसरे परिवार का लड़का या पुरुष पसंद कर लेता है तो वह अपने कुछ सगे-सम्बन्धियों के साथ आता है और औरत को अपने द्वारा लाए हुए कपड़े पहनाकर ले जाता है। एक ही गोत्र में शादी नहीं होती।

आदिवासियों को आज जो कुछ भी उन्हें मिल गया वे उसी में खुश हैं। कल की उन्हें कोई चिन्ता नहीं है। उन्हें कोई आकांक्षा भी नहीं है। इसी वजह से कृशकाय होने पर भी उनकी आँखें, यह प्रश्न पूछने पर कि किस बात की दिक्कत है? .... संतोष से भरी हुई शायद यही कहती हैं- 'जो भी है ठीक है। कोई दिक्कत नहीं है। कोई दिक्कत नहीं है। बेहतर यही है कि हमें हमारे हाल पर छोड़ दो और हमारे जंगल वापस लौटा दो, बस'।

भीलों में लड़कों के अलग होने के साथ ही जमीन का बँटवारा भी हो जाता है। अतः जमीन धीरे-धीरे कम होती जाती है। अब यह लड़के की इच्छा पर है कि वह खेती के लिये नई जमीन निकाले अर्थात् ऊबड़-खाबड पथरीली भूमि से कंकड़-पत्थर बीनकर समतल करके भूमि को कृषि योग्य बनाए, जो बहुत मेहनत का काम होता है, जिसे वे करते भी हैं क्योंकि अब खेती और मजदूरी के अलावा आमदनी का कोई जरिया भी नहीं है। पशुओ में कुछ घरों के पास ही हड्डियों का ढाँचा-से बन गए बैल और गाय मिलते हैं। किसी-किसी के पास ये भी नहीं हैं। हाँ, प्रत्येक भील आदिवासी के घर पर मुर्गियाँ हैं।

भीलों में एक बात दृष्टिगोचर हुई, वे समझाने पर और कारण बताने

पर सही बात या सुझाव को मानते तो हैं पर अर्थाभाव के कारण उस इच्छा को कार्य रूप में परिवर्तित नहीं कर पाते। उदाहरण के लिए, बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में वे जागरूक हैं पर अर्थाभाव से विवश भी हैं। लेकिन ये ही स्त्री-शिक्षा के प्रति उदासीन भी हैं, कहते हैं "उस पर इतना खर्च क्यो किया जाए। उसे आखिर तो जाना पराए घर ही है।

भीलों में अंधविश्वास काफी कम हो गया है। बीमार व्यक्तियों की चिकित्सा, चिकित्सालय में करवाते हैं। मूल समस्या गरीबी है। बाँसवाड़ा जिले के ग्रामों में किए गए सर्वेक्षणों से भी ये बातें स्पष्ट व सत्य सिद्ध हुई। भीलों में मृत्युभोज की परम्परा है। भीलों का इष्ट देव "शिव" है। "गवरी" भीलों के भरोसे और धार्मिक आस्था का रास है। इसे भीलों का भैरूनाट्य कहा जाता है। गवरी भीलों का बहुत तकनीकी और भावनापूर्ण ताण्डव नृत्य है। नृत्य के तीन दिन पूर्व से लेकर नृत्य-समाप्ति तक (43 दिन) इसमें भाग लेने वाले कलाकार मांस,, मदिरा का सेवन तथा स्त्रीगमन नहीं करते हैं। बीस-पच्चीस गाँवों के क्षेत्र में एक-एक दिन गवरी नृत्य का आयोजन किया जाता है। मक्का की फसल के माजरे निकलने से लेकर भुट्टे पकने तक यह नृत्य चलता है। यह नृत्य शिवजी और पार्वती को समर्पित है।

होली से कई दिन पहले भील युवक-युवतियाँ गैर अर्थात् डाँडिया रास खेलते हैं जो गुजराती लोक-नृत्य है। एकादशी का व्रत भी रखा जाता है। होली के दिन हर घर से एक सदस्य हैसियत के अनुसार होली दहन स्थल पर लकड़ियाँ रखता है। मुर्गे की पहली बाँग के साथ ही पाँच कुँवारे होली दहन करते हैं, फिर नृत्य करते हैं। आराम करने के बाद फिर साँझ को नृत्य शुरू हो जाता है।

भीलों का प्रसिद्ध मेला बेणेश्वर है। यह फरवरी माह में पूर्णिमा के दिन शुरू होता है। यह स्थान तीन नदियों-सोम, माही और जाखम के संगम पर स्थित है इसीलिये इसे दक्षिण राजस्थान की त्रिवेणी भी कहा जाता है। यहाँ मन्दिर में खण्डित शिवलिंग है। शिलालेख के अनुसार मन्दिर का निर्माण महारावल आसकरण ने संवत् 1510 में करवाया था। यहाँ पर आदिवासी परिवार वर्ष भर में मृत्यु को प्राप्त अपने परिजनों की अस्थियों का विसर्जन व श्राद्ध करते हैं। अब आदिवासियों के उन्मुक्त नृत्य और स्वर लहरियों का स्थान सट्टा जुआ चीख पर मनोरजन के अश्लील

कार्यक्रमों के हुल्लड़ ने ले लिया है। आदिवासियों के साथ धोखाधड़ी भी खूब होती है। फिर शहर के लोगों (डूँगरपुर, बाँसवाड़ा) व आसपास के कस्बे के तथाकथित सभ्य समाज के लोगों ने इनके मेले को प्रदूषित कर दिया है। वे यहाँ पर आदिवासियों की मजबूरी का फायदा उठाते हैं। आदिवासी युवतियों को छेड़ने की घटनाएँ भी बढ़ती जा रही हैं।

"घोटियाँ आम्बा" भीलों का दूसरा महत्त्वपूर्ण मेला है। मेले के दिनों में राजस्थान परिवहन निगम इस स्थान तक पहुँचने के लिये विशेष बसें चलाता है। यहाँ भी शिवलिंग है। यह 28 से 30 मार्च तक तीन दिन चलता है। इसमें भी बाँसवाड़ा क्षेत्र के भील आते हैं। यहाँ एक पहाड़ी पर स्थित मन्दिर है।

इस प्रकार भीलों का सामाजिक जीवन अभाव का है लेकिन फिर भी अभावों के बीच रहकर भी ये अपने त्यौहारों और मेलों को यथासामर्थ्य निभाते हैं। अनेक भील नवयुवक, वृद्ध, मीलों पैदल चलकर इन मेलों के दिनों में शिवजी के दर्शनों के लिए पहुँचते हैं। इससे इनकी आस्था प्रकट होती है और यही इनकी गरीबी का सम्बल होती है।

2. मीणा

मीणा ही एकमात्र ऐसी जनजाति है जिसने जंगल से नाता तोड़ लिया है और अब पूर्णतः खेती पर आश्रित हो गए हैं। इन लोगों के मुख्यतः दो प्रकार रहे हैं– जमींदार मीणा और चौकीदार मीणा। इस कारण से इन लोगों के पास साधारण कृषकों की तुलना में अधिक जमीन है और अन्य आदिवासियों की तुलना में वे समृद्ध भी हैं।

मीणों में भी बहु--विवाह की प्रथा प्रचलित रही है, साथ ही नाता प्रथा का भी प्रचलन रहा है, जैसे कोई विधवा औरत दूसरे आदमी से शादी करके जिंदगी बसर कर सकती है भले ही वह पहले से शादीशुदा क्यों नहीं हो। ऐसी स्थिति में शादी की रस्मों जैसी कोई क्रियाएँ नहीं होगीं बस सादे ढंग से दूसरी औरत को घर में ले लिया जाता है। कई बार पत्नी अपने पति से मनमुटाव के कारण भी घर छोड़कर दूसरे के साथ रहना शुरू कर देती है ऐसी स्थिति में दूसरे वाले पति द्वारा पहले पति को हर्जाने के रूप में कुछ मुद्रा दी जाती है। पर अब इस जनजाति के लोगों के शिक्षित होने और सरकारी नौकरियों में स्थान प्राप्त करने पर ये प्रथाएँ धीरे धीरे खत्म हो रही हैं।

मीणा महिलाओं को पुरुषों की तुलना में अधिक कार्य करना पड़ता है। घर पर भी पशुओं, जिनमें भैंसें प्रमुख होती हैं, का दूध दुहने से लेकर चारा-पानी देना और फिर खाना पकाकर पति के लिये खेत पर ले जाना और खेत पर भी काम करना होता है। फिर भी मीणा समाज में उनकी स्थिति पुरुषों की तुलना में निम्नतर ही मानी जाती है। मीणा महिलाओं के आभूषणों मे कणकती (कमर बंद), कड़े (चूड़े), पैरों में मोटी-मोटी पायल, माथे पर बोर प्रमुख हैं। ये सभी गहने चाँदी के बने होते हैं। आदमी भी एक हाथ में सोने या चाँदी का कड़ा पहनते हैं और कानों में मुरकियाँ (छोटे-छोटे छल्ले जो सोने के बने होते हैं) पहनते हैं। पैरों में चमड़े की जूतियाँ पहनते हैं, जो गॉव के ही चमार द्वारा बनायी जाती हैं। मीणा लोग अब अपने बच्चों की पढाई पर भी ध्यान देने लगे हैं, अर्थाभाव जैसी उनके समक्ष कोई समस्या शुरू से ही नहीं रही है, यही कारण है कि आज राजस्थान के समस्त आदिवासियों में मीणा जनजाति के लोग ही सरकारी नौकरियाँ करने लगे हैं और काफी युवक भारतीय प्रशासनिक, पुलिस व सहायक सेवाओं मे, राजस्थान प्रशासनिक सेवा और बैंकों में परिवीक्षाधीन अधिकारी या कर्मचारी के पद पर कार्य कर रहे हैं। आज पूरे भारतवर्ष में मीणा ही एकमात्र जनजाति है जिसके सर्वाधिक युवक-युवतियाँ सरकारी नौकरियों में अधिकारी अथवा कर्मचारी हैं।

अक्सर मीणा लोग अपने बच्चों की बचपन में शादी कर देते हैं। ये लोग लड़कों की तुलना में लड़कियों की पढ़ाई पर कम ध्यान देते हैं। एक ओर तो बाल-विवाह और दूसरी ओर लड़कियों की पढ़ाई पर कम ध्यान देने का परिणाम यह होता है कि मीणा नवयुवक नौकरी लगने के बाद पहले वाली पत्नी को छोड़ देते हैं और मनपसंद शादी कर लेते हैं। शादियों में भी काफी खर्च करते हैं। चूँकि अधिकतर शादियाँ बचपन में कर दी जाती हैं, अतः लड़के-लड़की को एक दूसरे को चुनने का अवसर नहीं मिलता है। कई बार तो माँ-बाप अपने दुधमुँहे बच्चों को अपनी गोद में उठाकर ही फेरे ले लेते हैं।

ये लोग होली, दीवाली, रक्षाबन्धन बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। अमावस्या के दिन अपने-अपने घर से भैंसों का निकला हुआ दूध बेचते नहीं हैं और पहले देव जी को भोग लगाते हैं और शेष दूध की खीर बनाकर खाते है

इनके देवी-देवताओं में देव जी, तेजा जी, माता जी (दुर्गा) प्रमुख हैं।

ये दूसरे आदिवासियों की तुलना में अन्ध-विश्वासी नहीं हैं। सामान्यत: चिकित्सालय में इलाज करवाते हैं। कुछ लोग पहले झाड़फूँक भी करवाते हैं अर्थात् अन्धविश्वास पूरी तरह खत्म नहीं हुए हैं। पर यह ही ऐसी जनजाति है जो जनजातियों के लिए वर्णित परिभाषा के चौखटे में फिट नहीं बैठती है। इसने सभ्य समाजों की तरह ही अपने को धीरे-धीरे बदल दिया है।

ये लोग भी मृत्युभोज पर काफी पैसे खर्च करते हैं। बिरादरी के सारे लोगों को खाने पर बुलायेंगे। अगर कोई व्यक्ति मृत्युभोज नहीं देता है तो इनके पंच उस पर दण्ड (जुर्माना) लगाते हैं। इस प्रकार यह कुप्रथा बाध्यता के नाम पर जारी है।

ये लोग अपनी जीविका के लिए वन पर आश्रित नहीं हैं और अब इनमें नृत्य, संगीत जैसी विशेषताएँ भी नहीं रह गई हैं। हाँ, हर अमावस्या को देव जी या तेजा जी के समक्ष भजन-कीर्तन किया जाता है और ढोल-मजीरो की मधुर झंकार सुनाई पड़ती है। इनमें जो गायक होता है वह बहुत ही अच्छे स्वर में मधुर भक्ति गीत जो लोकगीत होते हैं, गाता है, लोग तन्मय होकर सुनते हैं तथा भावविभोर हो जाते हैं।

हथियार के नाम पर सामान्य मीणा आदिवासी घर से बाहर निंकलने पर तेल पिलाई हुई लाठी को साथ में रखता है और एक अँगोछा (तौलिया) भी। लाठी को मजबूत बनाने के लिए उसे खूब तेल पिलाया जाता है ताकि किसी जानवर या प्रतिद्वंद्वी से भिड़ने में सुविधा रहे।

मीणा महिलायें घाघरा (पेटीकोट), छींटदार लूगड़ा (धोती) और कब्जा (ब्लाऊज) पहनती हैं। हाथों में कई महिलायें हाथी-दाँत के चूड़े भी पहनती हैं, जो प्रत्येक हाथ में 5 से लेकर 10 तक होते हैं। कई औरतों के तो दोनों हाथ ही ऐसी चूड़ियों से भरे होते हैं। पुरुष धोती पहनते हैं, बगतरी (कमीज की तरह) पहनते हैं जो सफेद मोटे वस्त्र की बनी होती है और सफेद या रंगीन साफा (पगड़ी) बाँधते हैं। इस प्रकार अन्य आदिवासियों की तुलना में इनका जीवन कष्टमय नहीं है क्योंकि ये जंगल के जीवन से पूर्णत: हट गये हैं और इन्होंने कृषि को मुख्य व्यवसाय बना लिया है।

3. गरासिया

गरासिया राजस्थान के सिरोही जिले में आबू रोड, पिण्डवाडा तहसीलों

मे बसे हुये हैं। आबू रोड़ तहसील के दो ग्रामों-गिरवर और सियावा-का सर्वेक्षण करते समय कुछ मुख्य बातें देखने में आई। गरासियों के घर बडे साफ-सुथरे हैं, घरों को गोबर से लीपते हैं पर घर की दीवारों पर माण्डणे नहीं बनाते हैं। घर में यथासम्भव बकरी, गाय और मुर्गियाँ पालते हैं।

ये बहुत पिछड़े हुये हैं और इसका कारण यह है कि इनके पास जमीन बहुत कम है। जमीन टुकड़ों में है- एक, डेढ़, दो बीघा के टुकड़े हैं और वे भी समतल नहीं हैं। चकबन्दी के माध्यम से सुधार आ सकता है परन्तु जमीन से मोह होने के कारण वे उसे छोड़ने को तैयार नहीं हैं। इसी कारण अलग-अलग टुकड़ों पर देखभाल में समय और श्रम ज्यादा लगता है।

गिरवर ग्राम के सरपंच के अनुसार गरासिया शिक्षा में रुचि नहीं लेते। ऑगनबाड़ी में और छात्रावास में भी लड़कों को सिर्फ इसलिये भेजते हैं कि वहाँ उनको खाना और कपड़ा मिल ज़ाता है अगर खाना-कपड़ा नहीं मिले तो इनका कहना है कि स्कूल जाकर क्या करेगा, बच्चा बकरियाँ ही चरायेगा।

इनमें शराब पीने की प्रवृत्ति काफी बढ़ी है, महुए के फूलों से खीची हुई "महुड़ी" ही पीते हैं। वे इसके पीछे दो कारण बताते हैं एक तो काम करते-करते थक जाते हैं तो इसे पी लेने से इन्हें राहत पहुँचती है। दूसरा ये लोग इतने कर्जदार हो गए हैं कि जब भी इन्हें मालूम पड़ता है कि बैंक या सहकारी समिति के "हाकिम" कर्ज वसूल के लिये आने वाले हैं तो "पीकर" पड़ जाते हैं। नशे में धुत्त होने के कारण बैंक और सहकारी समिति वाले इन्हें छेड़ते नहीं हैं क्योंकि उस समय इन्हें बात करने का भी होश नहीं होता। इस प्रकार बचने का इन्होंने अच्छा बहाना ढूँढ़ निकाला है। यही कारण है कि ये अजनबी आदमी से कतराते हैं, बचने की कोशिश करते हैं।

ये लोग सरकारी सहयोग पर ही जीवित हैं। इनका यह सोच बन गया है कि सरकार कुछ तो करेगी ही। अकाल में हमें मरने नहीं देगी। यही बात है कि ये आलसी बन गए हैं। किसी गरासिया को ठेकेदार के यहाँ काम और सरकारी राहत कार्य में से एक चुनना पड़े तो वह सरकारी काम पर मजदूरी करना पसंद करेगा, भले ही उसे भुगतान देर से मिले। वहाँ काम कम करना पडेगा

इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में गरासिया जंगलों में बचे-खुचे पेड़ों को भी काटने में लगे हैं। कई बार इनकी लड़कियाँ इन लकड़ियों को आबूरोड़ ले जाकर बेच देती हैं। जमीन सिंचित नहीं है अत: साल में एक ही फसल होती है और वह भी वर्षा की कृपा पर। ऐसे में कई आदिवासी ऊंझा व पालनपुर (गुजरात) में मजदूरी करने जाते हैं। कई आदिवासी आबू रोड व माउन्ट आबू में नई कालोनियाँ में भवन निर्माण कार्य में तगारी ढोते हैं, शेष घरों पर ही पशुओं की देखभाल करते हैं या लकड़ी लाते हैं।

गरासियों में लड़के लड़की अपना जीवनसाथी खुद ही चुनते हैं। इस तरह के चयन में वे दो सावधानियाँ बरतते हैं। एक तो स्वयं के गोत्र का न हो, दूसरा अपने ही गाँव का नहीं होना चाहिए। आबू रोड़ तहसील के गाँव सियावा में आदिवासियों का सबसे बड़ा गणगौर मेला प्रतिवर्ष बैसाख कृष्ण पचमी को सम्पन्न होता है। इसी दिन भगोरिया उत्सव होता है। अविवाहित युवक-युवतियाँ अपने अनुकूल पति-पत्नी पाने के लिए शिव-पार्वती के मेले में चयन के लिए आते हैं। गरासियों की मान्यतानुसार इस मेले के दिन से अपने पारिवारिक जीवन का शुभारंभ करना पवित्र माना जाता है। रात से लेकर ब्रह्म मुहूर्त तक अविवाहित जोड़े मौका लगते ही अलग-अलग दिशाओं में हाथ-में-हाथ डाले भागने लगते हैं। इसी प्रकार का मेला पाली जिले के आदिवासी क्षेत्र में गोरिया गाँव में भी इसी तिथि को शुरू होता है। लड़की के पिता को जब यह पता लगता है कि अमुक लड़का उसकी लड़की भगाकर ले गया है तो वह पंचायत में इसकी शिकायत करता है। पंचायत लड़के के बाप पर सौ रुपये से पाँच सौ रुपये के बीच जुर्माना करती है। जुर्माना अदा करने के बाद गरासिया समाज इन भगोड़े दम्पत्तियों को विधिवत् दम्पत्ति करार देता है। प्रत्येक विवाह का इच्छुक लड़का नये कपड़े पहनकर आता है और लड़की नये कपड़ों में परम्परागत चाँदी के आभूषणों में सजी होती है। इसी प्रकार ये अपनी मान-मर्यादा को कायम रखने के लिए भारी तकलीफें सहते हैं। 2-3 महीने पहले ही थोड़े-थोड़े पैसे बचाकर मेले हेतु तैयारी शुरू की जाती है।

विवाह के बाद लड़का-लड़की अलग से नया घर बनाकर रहते हैं। गरासियों में शादी पूर्व शारीरिक सम्बन्ध भी होते हैं। कामुकता काफी है।

हेतु होते थे। अब ये इज्जत का प्रतीक माने जाते हैं। अब भी कुछ गरासिया पुरुष महिलाएँ जंगलों में तीर-कमान से शिकार करते हैं।

गरासियों के वैवाहिक देवता तो शिव-पार्वती हैं। इनके अतिरिक्त वे देवरा बावसी तथा अम्बाजी को भी मानते हैं। होली पूर्व माघ के महीने में ये देवरा बावसी के चबूतरे पर बीमारी मिटने या बच्चा होने या कोई मनोकामना पूरी होने पर मिट्टी के घोड़े की कलात्मक मूर्ति चढ़ाते हैं। ऐसे समय में पूरे चबूतरे पर और आसपास में मूर्तियाँ-ही-मूर्तियाँ नजर आती हैं। खंड़ित मूर्ति हटा ली जाती है।

गरासिया रक्षाबंधन, होली, दिवाली उत्साह से मनाते हैं। अकसर ये उत्सव वे अपने परम्परागत ढंग से नाच-गाकर मनाते हैं। इसके अतिरिक्त ये शीतला सप्तमी के दिन पूजा करते हैं। ये रात्रि जागरण अलग-अलग जगह पर अलग-अलग दिन किए जाते हैं।

गरासियों में भी मृत्यु भोज की परम्परा है। इस पर ये लगभग 1500 रु से 3000 रु. तक खर्च कर देते हैं। हालाँकि दूसरे जाति भाई भी सहयोग देते है फिर भी वह परिवार कर्ज के बोझ में दब जाता है। मृत्यु-भोज की तिथि निश्चित नहीं है, मृत्यु के दिन ही कर देवें या 13वें दिन करें या एक वर्ष बाद करें। जैसी भी सहूलियत हो उस परिवार को वैसा करने की छूट है लेकिन भोज देना जरूर पड़ता है।

परिवार नियोजन के बारे में अभी भी भ्राँतियाँ फैली हुई हैं। ये सोचते हैं कि नसबंदी कराने से शक्ति चली जाती है और वजन उठाने में दिक्कत आती है। स्पष्टतः ये सब गलत धारणायें हैं। ये अभी भी बहुत अंधविश्वासी है। बहुत परेशान हो लेने के बाद ही अस्पताल जाते हैं।

ये अब काफी चतुर भी हो गए हैं। अगर एक परिवार में 5 आदमी हैं तो पाँचों के अलग-अलग खाते होते हैं ताकि उनमें से प्रत्येक को ऋण और रोजगार मिल सके। कुछ आदिवासी अवैध शराब बनाने और बेचने का काम भी करते हैं इनकी अपनी कूट भाषा होती है, उन्हीं को दारू बेची जाती है जिन पर शक नहीं होता। गरासिया अब मुर्गी कम पालते हैं; क्योंकि जो भी वसूली करने आता है वह उनके मुर्गे-मुर्गी को हड़पने की पूरी कोशिश करता है

4. डामोर

डामोर राजस्थान में डूँगरपुर जिले की सीमलवाड़ा पंचायत समिति में सकेन्द्रित हैं। इस पंचायत समिति में ये डूका, रासोर, पीठ, ढूण्ढरिया, पुनावाड़ा, सरथूना, मडांरा, भसी, बख्तापुरा, जम्बूड़ा, सीयल, टक्कारी, बच्चवड़िया, सादड़िया, केसरपुरा, रास्तापाल गाँवों में सघनता से बसे हुए हैं।

डामोर पुरुष की विशिष्ट पहचान गुजरात में बनी हुई छोटी-छोटी बुन्दकियों वाली पगड़ी है। सफेद रंग पर गुलाबी या काली बुन्दकियाँ होती हैं। इनकी छपाई गुजरात में ही होती है। दूर से पहचाना जा सकता है कि डामोर आदिवासी आ रहा है। इसके अतिरिक्त वे घुटनों तक खाकी कमीज पहनते हैं और धोती पहनते हैं। कमीज पर लटकती हुई चैन होती है जो बटन का कार्य करती है। पुरुष जूतियाँ पहनते हैं। महिलाएँ लूगड़ा और घाघरा पहनती हैं और प्राय: इनके पाँवों में जूतियाँ नहीं होती।

ये लोग मूलत: शराबी और माँसाहारी हैं। माँस तो अब शिकार न मिलने से उपलब्ध नहीं हो पाता। जंगली जानवर कहाँ होंगे, जब जंगल ही नहीं हैं। हाँ, बार-त्यौहार पर ये लोग बकरा काटते हैं और खूब छककर महुड़ी पीते हैं। इनकी गरीबी का यह प्रमुख कारण है। शराब जरूर ही चाहिए। शराब के ही कारण झगड़े-फसाद होते हैं और नौबत पुलिस तक आ जाती है। कई बार औरतों के कारण भी झगड़े हो जाते हैं। हुक्का रस्म में भी खर्च होता है और फिर ये लोग "प्रतिष्ठा" बनाए रखने के लिए खर्च भी अधिक ही करते हैं। स्पष्ट तौर पर यह फिजूलखर्ची है। इनकी हुक्का रस्म का एक उदाहरण ही देखिए-

हुक्का रस्म बड़ी शान से मनायी जाती है। डामोर दूसरे आदिवासियों से अपने को काफी ऊँचा समझते हैं और उनसे रोटी-बेटी का कोई सम्बन्ध नहीं रखते। इनकी बिरादरी में कोई भी नया आदमी हुक्का रस्म को निभाए बगैर पंचों के साथ हुक्का नहीं पी सकता। इसके तहत उस व्यक्ति के ससुराल वाले अपनी बेटी-दामाद हेतु कपड़े और चाँदी का हुक्का लाते हैं। बाकायदा मंडप की तरह बनाकर और उसमें बेटी-दामाद को बिठाकर नए कपड़े ओढ़ाए (भेंट किए) जाते हैं। बाद में चाँदी के हुक्के में तम्बाकू भरकर पिलायी जाती है और इस तरह से जाति में वह व्यक्ति सर्वमान्य रूप से हुक्का पीने के योग्य मान लिया जाता है।

इसके बाद शराब पीना और खाना खाने का कार्यक्रम होता है। खाने मे मॉस प्रमुख होता है। सारे गाँव को निमंत्रित किया जाता है। इसके बाद होती है नृत्य और गीतों की मनोहारी शुरूआत। यह रात भर चलती रहती है। अलग-अलग नृत्य और अलग-अलग गीत - कभी लड़कियों-लड़कियो और कभी लड़के-लड़कियों दोनों के सम्मिलित नृत्य। रात भर पाँव थिरकते हैं। ढोलक भी ताल बदल-बदल कर बजता रहता है।

डामोर औरतें कृषि कार्यों में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। यह लोग अधिकतर खेती करते हैं। कुछ लकड़ी का धंधा करते हैं और कुछ लोग राजस्थान गुजरात सीमा पर इधर का माल उधर करके चुंगी व वाणिज्य कर बचाने का काम करते हैं। घर पर पति पर पत्नी का प्रभुत्व होता है हालाँकि कुल मिलाकर डामोर महिलाओं की स्थिति अन्य आदिवासी महिलाओं की तुलना में गिरी हुई ही होती है क्योंकि शराबी पति द्वारा पिटाई करने के बाद भी वह उसे छोड़ कर नहीं जाती है। डामोर अन्य आदिवासियों की तुलना में सम्पन्न हैं लेकिन लगातार सूखे की स्थिति ने इनकी कमर तोड़ दी है।

डामोर बच्चों को पढ़ाने में कम ही रुचि रखते हैं। बच्चे भी 25 में से 15 दिन ही स्कूल आते हैं। फिर इनके द्वारा बच्चों को स्कूल न भेजने के कारण भी देखिए, बड़े अजीब - से लगते हैं-

एक बच्चा भेड़-बकरी चराने हेतु चाहिए, एक बच्चा जब माँ-बाप और सभी घर से बाहर चले जावें तो घर की रखवाली हेतु चाहिए। फिर जो लोग बच्चे पढ़ने के लिए भेजते हैं वे भी दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण बच्चों पर ध्यान नहीं दे पाते। लड़की को ये घर पर ही रखते हैं, घर के काम काज करने हेतु। सामान्यत: लड़के आठवीं के बाद आगे नहीं पढ़ते लेकिन अब कुछ डामोर लड़के और लड़कियाँ कॉलेज में भी पढ़ रहे हैं। यह इनके शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन का सूचक है पर इनकी संख्या बहुत कम है। ये लोग एक ही गाँव में आपस में शादी नहीं करते हैं। गाँव की लड़कियों को सामान्यत: अपनी बहन मानते हैं। साथ ही अपने सगे-सम्बन्धियो के गोत्र भी टालते हैं। बाल-विवाह की प्रवृत्ति पहले इनमें भी थी पर अ ब कम होती जा रही है। शादी में काफी खर्च कर देते हैं। बहुविवाह प्रथा इस जनजाति में प्रत्यक्ष रूप में देखने को आयी। धनी डामोर दो-दो पत्नियाँ रखते हैं।

लड़के की शादी में लगभग 5000 रु. तक और लड़की की शादी में 2000 रु. तक खर्च हो जाता है। लड़के की शादी में ज्यादा खर्च होने के कारणों में लड़की हेतु आभूषण व वस्त्र बनाना और क्षतिपूर्ति के रूप में लडकी वालों को कुछ धनराशि देना शामिल है। आदिवासियों में लड़की एक कमाऊ सदस्य है। लड़की वाले का खर्च मुख्यतः भोज में होता है। लड़कियों की बहुलता है इसलिए लड़कों को अपने उपयुक्त जीवन साथी के चयन में कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है। शादियाँ होली के बाद शुरू होती हैं। बारात में सिर्फ आदमी ही जाते हैं, जेवर चढ़ाये जाते हैं। इसीलिए उनकी शादी हो जाने के बाद परिवार वालों को उनकी कमी खलती रहती है। विवाह-पूर्व यौन सम्बन्ध सहज माने जाते हैं पर इस क्षेत्र में यौन जनित रोग नहीं है।

डामोर आदिवासियों के पूर्वजों का इतिहास बताने वाले भाटी वडनगर (गुजरात) में रहते हैं। भाटी लोग होली के बाद इस इलाके में आते हैं और प्रत्येक डामोर परिवार में जाकर अपने पास के चिट्ठी-पत्रों से इनको इनके पूर्वजों का इतिहास बताते हैं। वे एक वर्ष के दौरान परिवार में बढ़े हुए (अर्थात् जन्मे हुए) सदस्य का नाम भी अपनी बही में लिखते हैं। बदले में डामोर उनको यथेष्ठ दान-दक्षिणा देते हैं।

डामोर वागड़ी मिश्रित गुजराती बोलते हैं। इस तरह भाषा में गुजराती शब्दों की प्रधानता रहती है। इसका कारण इनका गुजरात से बिल्कुल सटे हुए क्षेत्र में बसना है। डामोर महिलायें बड़ले (कड़ा), कर्णफूल तथा नाक छिदवा कर लोंग पहनती हैं। आदमियों को चाँदी की अँगुठियाँ और गठौड़ (कानों में सोने की बालियाँ) पहनने का खूब शौक है। औरतें सामान्यतः चाँदी के आभूषण पहनती हैं।

इनके त्यौहारों में होली व दिवाली प्रमुख है। इसके अलावा आखातीज (अक्षय तृतीया) भी धूमधाम से मनायी जाती है। इनके प्रमुख देवता चोरा बावसी है जो सरथुना में हैं अर्थात् चौराहे को देवता माना हुआ है। इसके अतिरिक्त इनके मुख्य देवता जो इस क्षेत्र से हट कर भाटी खत्री जी (कल्ला राठौड़) हैं जिनका पीठ रामदेवरा (जोधपुर) में हैं और जिन्हें ये यदा-कदा ढोकने (पूजा करने) जाते हैं।

डामोर आदिवासियों में कुछ लोग बंदूक रखते हैं कुछ लोग धारिया

तलवार इत्यादि रखते हैं किन्तु इन सबके पास एक लोहा-जड़ी लाठी जरूर मिल जाएगी जिस पर लोहा इस तरह से लपेटा जाता है कि लाठी मारने पर दुश्मन को घातक चोट पहुँचती है। यह लाठी हर डामोर के घर पर मिलती है। डामोर भेड़, बकरियाँ, भैंस पालते हैं और मुर्गियाँ तो सभी घरों में मिल जाएँगी। सभी घरों में रखवाली हेतु कुत्ते भी पाले जाते हैं।

इन लोगों में अंधविश्वास है। बीमारियों का कारण भूतप्रेत और आत्माएँ मानते हैं। भोपा से झाड़-फूँक करवाते हैं। मुर्गे और बकरे की बली भी देते हैं। नजर बाँधना, टोना-टोटका भी करते हैं। कई मौसमी बीमारियों में जड़ी-बूटी का काढ़ा भी मरीज को पिलाते हैं। जब बीमारी ठीक नहीं होती तो आखिरी हथियार के रूप में आयुर्वेदिक चिकित्सालय या मुख्य अस्पताल ले जाते हैं, फलतः बीमारी की गंभीरता के कारण कई आदिवासी मर जाते हैं।

इनके द्वारा ढोल के माध्यम से भी दूर-दूर बसे डामोरों को विभिन्न संदेश दिये ज़ाते हैं, जैसे-जैसे दो डंडे (कोंड) बज़ने का अर्थ है किसी परिवार में मृत्यु हो गई है और ढोल बजने की जगह पर पहुँचो। इस प्रकार ये इनके विशिष्ट रीति-रिवाज हैं।

5. कथोड़ी

इनको लगभग 150 वर्ष पूर्व मावजी बोहरा नामक एक दाऊदी बोहरा महाराष्ट्र से ठेके पर काम करने की बात कहकर कत्था बनवाने का काम करवाने के लिए उदयपुर के जंगलों में लाया था। ये कत्थे के पेड़ों को काटकर कत्था बनाने का कार्य व वन-उपज इकट्ठी करने का कार्य किया करते थे। कालान्तर में कत्थे के पेड़ धीरे-धीरे खत्म हो गए; क्योंकि उनकी बहुत तीव्रता से कटाई की गई थी। इन लोगों की स्थिति भी दयनीय हो चली। बाद में ढेबर आयोग के सर्वेक्षण के उपरान्त इनको दाऊदी बोहरों के वंशजों से मुक्ति दिलाकर स्वतन्त्र रूप से बसाने की कोशिश की गई।

अब ये उदयपुर जिले की झाडोल और कोटड़ा पंचायत समितियों मे संकेन्द्रित हैं। मूलतः ये घुमन्तू आदिवासी हैं, फलस्वरूप जहाँ इनकी झोंपड़ियाँ हैं उनमें तो ये वर्षा काल के 4 महीनों में ही रहते हैं, शेष आठ महीने ये या तो जंगलों में रहते हैं या समीपवर्ती गुजरात के ग्रामों में मजदूरी के लिए चले जाया करते हैं। वनों में ये लकड़ी और वन-उपजें इकट्ठी करते हैं।

खेती करना इन्हें रास नहीं आया। खेती की सुविधाएँ भी नहीं हैं। हाँ

जंगलों से वन-उपज एकत्रण में ये लोग सिद्धहस्त हैं। कई बार अपने ऋण चुकाने के लिये इन्हें वन-उपजें महाजन के हाथों औने-पौने दामों में बेचनी पडती हैं। इनकी वन-उपजों के क्रय हेतु डैया अम्बासा सहकारी समिति कार्य कर रही है।

राजस्थान के उदयपुर जिले के तीन ग्रामों अम्बावी; डैया, अम्बासा को काले पानी की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि इन सभी गाँवों तक पहुँचने के लिए सडक से हटकर 6 से 14 किलोमीटर का रास्ता पैदल तय करना पड़ता है। सर्वेक्षण के दौरान यह बात शतप्रतिशत सही सिद्ध हुई है।

कथोड़ी की झोंपड़ी घासफूस और पेड़ों की हरी टहनियों की बनी होती है। कथोड़ी को सिर्फ एक कुल्हाड़ा चाहिए। वह उससे अपनी झोंपड़ी एक दिन में ही बना लेता है। झोंपड़ी भी छोटी होती है और दरवाजा तो बहुत ही छोटा होता है। ये उसके अन्दर मचान बनाकर उस पर सोते हैं। नीचे इस वजह से नहीं सोते कि कोई जानवर न आ जाए। उस पर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ये लोग जहरीले जानवरों साँप, बिच्छू से नहीं डरते, क्योंकि इनके काटे का इलाज करने के लिए इनके पास जड़ी-बूटी होती है। जड़ी-बूटियों के माध्यम से इलाज में ये माहिर होते हैं। जब परिवार का कोई सदस्य मर जाता है तो ये झोंपड़ी को खाली कर देते हैं और नयी झोंपड़ी बनाते हैं। उनका यह मानना होता है कि अगर वे उसी झोंपड़ी में रहे तो मृत आत्मा आकर उन्हें परेशान करेगी। कभी-कभी खाली झोंपड़ी को जला भी देते हैं। ये लोग पक्के मकानों में नहीं रहते। उन्हें हमेशा यह डर रहता है कि छत गिर जाएगी और हम सब मर जायेंगे। इस तरह ये लोग बहुत अंधविश्वासी होते हैं।

कथोड़ी महिलाएँ सिर्फ एक लूगड़ा ही पहनती हैं और उसे इस ढंग से लपेटती हैं कि वह सिर से लेकर उरोजों और कमर पर होता हुआ दोनों पाँवों पर लिपट जाता है। पुरुष अधिकतर लंगोट ही पहनते हैं। मुखिया साफा (पगड़ी) भी पहनता है। अब बदलते हुए परिवेश में ये कमीज भी पहनने लगे हैं। ये लोग नंगे पैर घूमते हैं। इनके परम्परागत आभूषण कुछ विशेष नहीं हैं। औरतें कन्दोरा (कमरबंद) पहनती हैं और कानों में लम्बी-लम्बी बालियाँ पहनती हैं। इनकी विशिष्ट शक्ल-सूरत से इनको अन्य आदिवासियों में से स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है।

कथोड़ी आदिवासियों में भी लड़के के जन्म की अपेक्षा लड़की के जन्म को से स्वीकार किया जाता है ये अपनी सम्पत्ति भी लडकी को ही

देते हैं। आदमी अपेक्षाकृत अधिक मेहनती होता है पर औरत भी कम मेहनती नहीं होती। दोनों ही साथ में जंगल में जाकर महुए, फल, गोंद, टेमरू व धोली मूसली इकट्ठी करते हैं।

इस समय सरकार की प्रवृत्ति इन्हें स्थायी रूप से एक जगह बसाने की है। इसके तहत इन्हें जमीन दी गई। प्रत्येक आदिवासी परिवार को 10-10 बीघा जमीन दी गई। सरकार अब राहत कार्यक्रम के अन्तर्गत इनकी जमीनों पर इनसे ही कुए खुदवा रही है। धीरे-धीरे इनमें बसने की रुचि तो बढ़ रही है; परन्तु सुविधाएँ पूरी न होने से ये फिर मजबूरी में घुमन्तू बनते हैं।

वैसे ये पानी के किनारे रहने के बहुत शौकीन हैं और वहीं पर मछली पकड़ते, खाते और बेच कर जीवनयापन करते हैं। ये लोग अच्छे शिकारी भी होते हैं। ये तार के फंदे से जानवरों को फँसाते हैं। इन्हें माँस मिलता रहे तो फिर कुछ भी नहीं चाहिए। औरत की प्रसवावस्था में ये उसको गोंद वगैरह के अतिरिक्त बंदर का माँस और उसकी कलेजी खिलाते हैं ताकि वह खूब हस्ट-पुष्ट होकर काम करना शुरू कर दे। इसलिए बच्चे के जन्म के बाद ये एक बंदर जरूर मारते हैं या फिर पहले से ही एक बंदर मारकर उसका माँस सुखा लेते हैं।

कथोड़ी काफी मेहनती हैं फिर भी गरीब हैं; क्योंकि ये लोग खूब शराब पीते हैं। आदमी और औरत दोनों ही कोई कसर बाकी नहीं छोड़ते। भूखा रहना मंजूर है; परन्तु शराब जरूर पिएँगे। ये लोग सामान्यत: दूसरे आदमियों से शराब खरीदकर पीते हैं। कुछ लोग खुद भी महुए के फूलों के सत से शराब बनाते हैं। महुआ बीनने का काम अप्रैल में शुरू हो जाता है। रात में 12 बजे से सुबह तक महुए के फूल झरते रहते हैं। इन आदिवासियों के पास महुए के फूलों को रखने के लिए हवा रहित कोठार नहीं होता, अत: ये दूकानदार को 1.50 रु. प्रति किलो के हिसाब से महुए के फूल बेच देते हैं और बाद में ये दूकानदार जरूरतमंद विशेषकर शराब बनाने वाले आदिवासियों या अन्य लोगों को 4/- रु. किलो के हिसाब से बेचकर मुनाफा कमाते हैं। एक दूकानदार जो यहाँ पर एक गठरी लेकर आया था, 3 वर्षों में उसने अपना एक बड़ा-सा मकान बना लिया है और मोटर साइकिल खरीद ली है।

आश्रम स्कूल अम्बासा के अध्यापक बताते हैं कि अब कथोड़ी अपने बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान देने लगे हैं। जब बच्चों को आश्रम स्कूल में भेजने की बात आयी तो तैयार हो गए क्योंकि वहाँ खाना, कपड़ा सब मुफ्त मिलता है। बच्चे जब शुरू में आए तो आधा सेन्टीमीटर मोटी मैल की परत जमी थी। धीरे धीरे

उनमें नहाने की आदत डाली। अब ये बच्चे स्वयं ही नहा लेते हैं। अब ये चाहते हैं कि लड़कियों के लिए भी सरकार कोई आश्रम स्कूल खोल दे तो ये उनको भी वहाँ रखने के लिए तैयार हैं। अभी इनकी लड़कियाँ प्राथमिक विद्यालय में भी पढने नहीं आती हैं। इनके बच्चों में सीखने की क्षमता भी काफी तीव्र है। बच्चे सुशील और आज्ञाकारी भी हैं। माँ, बाप और गुरुजी की आवाज सुनते ही दौड़े आते हैं। माँ-बाप भी उनको इतना चाहते हैं कि घर पर जब भी कोई चीज बने और थोड़ा-सा टुकड़ा भी हो तो उसे बच्चे को देने आश्रम स्कूल आते हैं।

कथोड़ी बेहतरीन दस्तकार होते हैं। बांस काटने में ये लोग माहिर होते हैं और बहुत सफाई से काटते हैं। ये बाँस की खपच्चियों से बहुत सुन्दर-सुन्दर खिलौने और सजावटी सामान, जैसे-जहाज, नौका, मयूर इत्यादि बनाते हैं। इसके अतिरिक्त टोकरियाँ, चटाइयाँ भी बुनते हैं। इनकी चटाइयाँ, झोंपड़ी की छत और चारपाई का दावण (रस्सी) भी बाँस की बनी होती है।

कथोड़ी पुरुष और महिला कड़ी मेहनत करके कमाते हैं और फिर खूब खा-पीकर शाम को नृत्य करते हैं। इस तरह खाया-पिया पच भी जाता है और आपस में हँसी-खुशी के क्षण भी मिल जाते हैं। होली से पहले तो इनमें नृत्य की उमंग देखने योग्य होती है। यही एक मात्र ऐसी जनजाति है जिसमें अभी तक शहर की बुराइयाँ नहीं आई हैं। इनका शहरों से अभी सम्पर्क नहीं हुआ है और इस कारण इनमें निश्छलता और भोलापन अनूठा है। नृत्य के समय पुरुष ढोलक बजाते हैं और लड़कियाँ नृत्य करती हैं। लड़कियों के नृत्य भी तरह-तरह के होते हैं। आपस में एक-दूसरे की बाँहों में बाँहें डाले एक लम्बी कतार बन जाती है। सबके मुँह एक तरफ होते हैं। फिर एक लय में गाना और पैरों का संचालन, आगे-पीछे, पीछे-आगे। दूसरे नृत्य में तीन-तीन लड़कियों का समूह गोल घेरे में नाचता है। इसके अतिरिक्त पिरामिड की तरह का नृत्य भी लड़कियों द्वारा किया जाता है। जिसमें 8 लड़कियों के कंधों पर 4 लड़कियाँ चढ़ी होती हैं और बाद में वे घूमती भी हैं। अंग-संचालन दर्शनीय और संतुलन सराहनीय होता है। ये इन नृत्यों के साथ गीत भी गाती जाती हैं।

कथोड़ी आदिवासियों में जानवरों को पालने की प्रवृत्ति है परन्तु सिर्फ मुर्गा और कुत्ता ही पालते हैं। ये लोग पूर्णतः ईमानदार होते हैं। भूखों मर जाएँगे पर चोरी नहीं करेंगे। यही कारण है कि समीपवर्ती गुजराती लोग इनके काम चाहने पर तुरन्त इनको मजदूरी पर रख लेते हैं।

कथोड़ी आदिवासियों में निकट के रिश्तों में शादी होती है; क्योंकि इस जनजाति की जनसंख्या ज्यादा नहीं है। फिर भी चाचा और भाई-बन्दों के रिश्ते टाले जाते हैं। शादी के लिए लड़के-लड़कियों को भागने की जहमत उठाने की जरूरत नहीं पड़ती। लड़की वालों को भी लड़का जँच गया तो सम्बन्ध तय कर लेते हैं। इस जनजाति में भी विवाह-पूर्व शारीरिक सम्बन्ध सहज माने जाते हैं। साथ-साथ जंगल में जाना, कई दिनों तक वहीं रहना। जंगल के किसी सूने कोने में दो युवा मन एक होने को मचल उठते हैं। प्रकृति ही उनकी एकमात्र गवाह होती है। ये लोग अक्सर जिससे शारीरिक सम्बन्ध बन गए, उसी से शादी करने में विश्वास रखते हैं।

एक परिवार में 5 से 10 बच्चे होते हैं। अम्बासा गाँव में ऐसे सभी कथोड़ी आदिवासियों ने परिवार नियोजन करवा लिया, यह सरकारी प्रोत्साहन और इनकी सूझबूझ का उदाहरण है। हथियार में ये लोग कुल्हाड़ा रखते हैं। यह इनके वृक्ष काटने के भी काम आता है और शत्रु से रक्षा में भी काम आता है। यहाँ के बच्चे खुद का बनाया हुआ एक वाद्य यंत्र बजाने में प्रवीण हैं। इसका नाम इन्होंने ''गिरुडी'' रखा है। इसमें तीन घुंघरु और बाँस का त्रिफलक यंत्र होता है। बजाने पर इसमें टियूं-टियूं की मधुर ध्वनि निकलती है। इसे मुँह की सहायता से बजाया जाता है।

इनके देवी-देवताओं में अंगावी माता (धरती माता) तथा भैरव हैं। ये दोनों मंदिर इनके प्रत्येक ग्राम में इनकी झोंपड़ियों से थोड़ी दूर जंगल में स्थित होते हैं। ये आत्मा और पुनर्जन्म को मानने वाले होते हैं और इनके धर्मगुरु (भोपा) इस बात का दावा करते हैं कि वे अपनी तंत्रमंत्र शक्ति के बल पर नवरात्राओं में [विजयदशमी से पहले की नौ रात्रियों जिनमें शक्ति की (दुर्गा) आराधना की परम्परा है] गुमी हुई चीजों के बारे में पूरी जानकारी ले सकते हैं। ये लोग भोपे की बात पर यकीन करते हैं और उसकी कही बात को पत्थर की लकीर मानते हैं। जड़ी-बूटियों को पहचानने और उनके उपयोग में दक्ष होने के कारण ये लोग जहरीले साँप, बिच्छू, गोह (नर) के काटे का इलाज स्वयं कर लेते हैं। सिर्फ बुखार की स्थिति में इन्हें परेशान होकर अस्पताल जाना पड़ता है; क्योंकि शायद अपने प्राकृतिक दवाखाने में ये लोग अभी इसके लिए उपयुक्त दवा नहीं खोज पाए हैं।

कथोडी आदिवासियों की एक विशिष्ट बोली है जिसमें मराठी के काफी

शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं। वैसे कथोड़ी बच्चे हिन्दी सरलता से सीख लेते हैं और बोलते भी हैं। लेकिन अपने घरवालों से ये अपनी बोली में ही बात करते हैं। एकनाम नामक एक विद्यार्थी जो अम्बासा गाँव का रहने वाला है मुझे अपनी बोली के कुछ शब्द बताए इनकी। जानकारी रोचक है-

रोटी = झाकड़,	माँ = आसनी,	शर्ट = डगली,
पत्नी = बाइको,	भाई = बाबा,	लड़का = पोषा
बहन = बुयू,	जंगल = मगरा,	लड़की = पोषी।

ये हर वाक्य के अंत में 'ला' बोलते हैं उदाहरणार्थ यह पूछना है कि कौन लडके लड़की हैं? तो कथोड़ी की बोली में इसे ऐसे पूछा जाएगा - कोड़ पोषा-पोषी ला?

6. सहरिया

सहरियों की उत्पत्ति के बारे में दृढ़ता से कुछ कहना संभव नहीं है। "लगता है कि मुगलकाल में इन्हें सहरिया कहा जाने लगा था; क्योंकि ये 'सहरा' अर्थात् जंगल में रहते थे। सहरिया जाति की बस्ती को भी आज सहराना नाम से ही पुकारा जाता है।" सहरिया राजस्थान में कोटा जिले से बने नये जिले बारां की शाहबाद व किशनगंज तहसीलों में बसे हुए हैं। यह राजस्थान की आदिम जाति कहलाती है; क्योंकि जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग के अनुसार ये आदिवासी दूसरी जनजातियों-भील, मीणा, डामोर, गरासिया से भी पिछड़े हैं।

सिर पर लम्बे बाल और बालों की गुँथी हुई चोटी, घुटनों तक की धोती, सिर पर छोटा साफा (पगड़ी) लपेटे हुए नंगे बदन नंगे पैर, कानों में बाली, हाथ में कड़ा, गले में धागे की कंठी, कंधे पर कुल्हाड़ी-बस यही था आम सहरिया का रूप। आज भी इसमें अगर कहीं अंतर आया है तो नंगा बदन सस्ते पोलिस्टर धागे से बने कपड़ों से ढंक गया है, पाँवों में चप्पलें या जूतियाँ आ गई हैं।

इस क्षेत्र को हाड़ौती कहते हैं। ये लोग हाड़ौती बोली ही बोलते व समझते हैं। इनके क्षेत्र में सर्वाधिक जंगल थे, जो अब बहुत थोड़े रह गए हैं। सहरिया आदिवासी पूरी तरह वनउपजों के एकत्रीकरण पर आश्रित थे। इस क्षेत्र की वन-उपजें भी काफी महत्त्वपूर्ण हैं। चिरौंजी, लाख, गोंद, आँवला, महुआ, शहद, धोली मूसली इनमें प्रमुख हैं। आज भी सहरिया जंगल से ये सब इकट्ठी करता है; परन्तु यह सब उससे औने-पौने दामों पर झटक लिया जाता है। अब अधिकतर सहरिया आदिवासी मजदूरी करते हैं और कुछ खेती करते हैं।

सहरिया गाँव से बिल्कुल अलग बस्ती बसाकर अपनी ही दुनियाँ में मस्त रहने की कोशिश करते हैं। इनकी बस्ती को सहराना कहते हैं। सहराने के मध्य मे मेड़ी डली होती है जिसे ये 'बंगला' कहते हैं। यह काफी बड़ा होता है और एक तरह से सहरिया लोगों की पंचायत है। आमतौर पर रात को भी ये लोग यहाँ बैठते हैं। इसे इनका सामुदायिक विकास केन्द्र कहा जा सकता है। बंगले में जूते लेकर घुसना और गाँव की बहू का घुसना वर्जित है। प्रत्येक सहरिया स्त्री-पुरुष को इसी नियम का पूर्ण पालन करना होता है।

शादी ये लोग बड़ी सादगी से करते हैं। ज्यादा खर्च भी नहीं होता। यहाँ पर स्वयं द्वारा चयन की प्रथा है पर लड़की लेकर भाग जाने जैसा नहीं है। लड़के का पिता लड़की के पिता से बात करने के बाद में पंचों की सलाह मानकर उनके अनुसार दी हुई तिथि को ही शुभ मुहूर्त मानकर शादी करने की तैयारी करता है। लड़के वाला बारात लेकर लड़की के घर आता है। बाटी खाटा (कढ़ी) या रोटी खाटा (कढ़ी) बारातियों को भोजन के रूप में पेश की जाती है। कहीं-कहीं पर लापसी (गुड़ का दलिया) भी मिष्ठान्न के रूप में रखी जाती है। वर-वधू के बहनोई इन दोनों को मंडप के चारों ओर चक्कर लगवाते हैं और शादी पूरी हुई मान ली जाती है। इस अवसर पर खूब बाजा बजाया जाता है। इन लोगों में बाल-विवाह की प्रथा भी प्रचलित है। अशिक्षा ही इसके लिए पूर्णतः जिम्मेदार है।

इनके देवी-देवताओं में राम, हनुमान जी, माता जी, भैंरू जी, तेजाजी हैं। इसके अतिरिक्त ये लोग भूत-प्रेत और ऊपर की आत्मा (बाह्य सूक्ष्म जीव) के अस्तित्व को भी मानते हैं। ये बहुत अंधविश्वासी लोग हैं। यदि व्यक्ति किसी शारीरिक व्याधि से भी पीड़ित हो तो ये लोग उस पर भूत-प्रेत का प्रकोप मानकर पहले झाड़-फूँक ही करेंगे और जब इनके बस का नहीं रहेगा तब अस्पताल ले जाएँगे। फिर भी ये संतुष्ट नहीं होंगे। इन्हें लगेगा पूजा में कोई कमी रह गई तभी यह ठीक नहीं हुआ। इन देवी-देवताओं के अतिरिक्त इनके धार्मिक जीवन मे सीताबाड़ी के वाल्मीकि मंदिर, लक्ष्मण मंदिर, सूर्यकुण्ड और सीताजी की कुटिया का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। हर अमावस को सहरिया वाल्मीकि मंदिर के दर्शन व पूजा करने आते हैं। ये वाल्मीकि को अपना ''इष्टगुरु'' मानते हैं। सीताबाड़ी मे सहरियों का वार्षिक मेला लगता है।

राजस्थान के आदिवासियों में सिर्फ कथोड़ी और सहरिया ही ऐसे हैं, जो भूख से पीड़ित हो जाने की सीमा तक भी ईमानदार रहते हैं। इन्हें भूखे रहना मजूर

है पर चोरी करके पेट भरना नहीं। ये मेहनत से कमाकर ही पेट भरते हैं। भूखे रहने पर ये जंगल जाकर फल या दूसरी चीजें खाकर पेट भर लेंगे पर किसी की चीज उठायेंगे नहीं।

सहरिया स्त्रियों का पहनावा हाड़ौती की ग्रामीण महिलाओं के जैसा ही है। लूगड़ा (ओढ़नी) और घाघरा, कब्जा (ब्लाउज) पहनती हैं। गहनों का इन्हे विशेष शौक है। माथे का बोर, हार, कड़े, करधनी (कमरबंद), खुंगाली (गले की हँसली) इनके प्रमुख आभूषण हैं। हाथों में लाख का मोटा चूड़ा भी पहनती है। राजस्थानी आदिवासियों में इनका अलग ही एक शौक है, और वह है – हाथों पर, बदन पर गोदना गुदवाना। खुद का नाम, फूल, तरह–तरह की आकृतियाँ ये लोग बड़े शौक से गुदवाते हैं।

अवैध यौन सम्बन्ध इनमें होते हैं पर अब ढके–दबे। हाँ, अगर विवाहित औरत का दूसरे से शारीरिक सम्बन्ध है और पता लग जाता है तो पंचायत उस व्यक्ति को कठोर दंड देती है जिसके साथ उस औरत के अवैध सम्बन्ध हैं। यही दंड दूसरे की औरत को भगा ले जाने पर मिलता है। विधवा होने पर नाते की प्रथा भी है अर्थात् वह किसी दूसरे व्यक्ति के घर पर बैठ सकती है। मुखिया की बात को सभी सहरिया लोग मानते हैं और उसे बहुत आदर देते हैं।

सहरियों में भी अब धीरे–धीरे शराब की आदत बढ़ गई है। पहले थकान को दूर करने के लिए और अब अपने शौक को पूरा करने के लिए। इस धंधे का फायदा इलाके के कुछ प्रभावशाली लोग उठा रहे हैं।

ये लोग अपने बच्चों की शिक्षा पर भी ध्यान नहीं देते हैं। फिर इनके पास इतना पैसा भी नहीं है कि ये अपने बच्चों को पढ़ा सकें। सरकारी प्रयत्न के रूप में स्कूल खोले गए हैं, पर इसके साथ इन्हें पोशाक, दिन का खाना, किताबें कॉपियाँ दी जाएँ तो इनके बच्चों को पढ़ने के लिए आकर्षित किया जा सकता है। इनकी लड़कियों में तो शिक्षा नहीं के बराबर है। ये लोग अपनी लड़कियों को पढ़ने नहीं भेजते हैं। ये सोचते हैं कि उनके लिए (लड़कियों के लिए) घर का काम करना ही काफी है। पर अब यह सोच बदल रही है, केलवाड़ा, शाहबाद व घट्टी के कन्याआश्रम छात्रावासों में सहरिया लड़कियाँ पढ़ रही हैं।

□□□

सप्तम अध्याय

अर्थचक्र में आदिवासी महिलाओं की भूमिका

वैसे तो एक साधारण आदमी के जीवन में भी अपनी जीवन संगिनी का महत्त्व होता ही है, लेकिन एक आदिवासी के लिए तो उसकी पत्नी-पत्नी से बढकर काम करने वाली साथी कार्यकर्त्ता, उसके साथ कदम-से-कदम मिलाकर जंगलों में दिनभर घूम-घूमकर विभिन्न वन-उपजें संग्रह करने वाली, खेतों में भरी दुपहर में हल के साथ बीज डालती और रात को उसी के साथ दिन भर के दु:ख-दर्द को भुलाकर नृत्य में साथ देने वाली सहचरी होती है। वह साधारण महिला से कई गुना ज्यादा काम करती है, क्योंकि वर्तमान में इसको अपने अस्तित्व को बनाए रखने में क़ाफी संघर्ष करना पड़ रहा है। भील महिला घर में काम् करने के साथ-साथ खेतों में भी अपने पति के साथ काम करती है। जंगल से लकड़ियाँ बीन कर लाती है, और पशु चराती है। वह आदमी से अधिक मेहनती होती है।

एक आदिवासी महिला आदिवासी समाज के आर्थिक ढाँचे में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जैसा कि महिलाओं के बारे में अक्सर यह कहा जाता है, सामान्यत: मेहनत में कम रुचि लेती हैं, और किसी भारी काम को नापसंद करती हैं। लेकिन ये सब धारणाएँ आदिवासी महिलाओं के समक्ष झूठी साबित हो जाती हैं। आदिवासियों में न तो आदमी की औरत पर उच्चता जैसी कोई बात है, और न ही नारी के बारे में कवियों जैसी सुकोमल भावनाएँ हैं। आदिवासी महिला जी-तोड़ कर काम करने वाली नारी है, और यही कारण है कि आदिवासी परिवार में भले ही वह बेटी हो, बहन हो, पत्नी हो, माँ हो, कई महत्त्वपूर्ण निर्णयों में उसकी बात मानी जाती है और उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है। श्री श्याम सिंह 'शशि' लिखते हैं-''राजस्थान की भील महिलाएँ महिला श्रमिकों के रूप में काम करती हैं। वे वास्तव में कठोर श्रम और श्रद्धा की प्रतीक हैं।

आदिवासी अर्थव्यवस्था में शिकार करके भोजन जुटाना, पशु चराना, कृषि करना, वन-उपजें एकत्र करना तथा मजदूरी करना महत्त्वपूर्ण गतिविधियाँ हैं, जो वर्तमान में आदिवासियों के जीवनयापन का माध्यम हैं। जंगल काट डालने पर अब शिकार की आदत धीरे-धीरे छूटती जा रही है। जब जंगल ही नहीं हैं, तो

जगली जानवर भी कहाँ होंगे। सरकार की गलत नीतियों और अंधाधुंध अनियोजित विकास-प्रक्रिया ने आदिवासियों को जंगलों से निकाल कर नंगी डूँगरियों (छोटी पहाड़ियों) पर ला खड़ा किया है।

आदिवासी अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्रों, जैसे-कृषि, श्रमिक, खनन, पशुपालन आदि में लगे हुए हैं। विशिष्ट बात यह है कि आदिवासी परिवार में सिर्फ पत्नी की भूमिका को महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता। बेटी या बहिन भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है। यही कारण है कि जब उनकी शादी की जाती है, तो लडकी वाला आदिवासी लड़के वालों से रुपये वसूल करता है, क्योंकि शादी के बाद वह बहन या बेटी अपने पति के घर पर चली जायेगी और वहाँ उनके लिए काम करेगी। इस प्रकार उसके स्वयं के घर पर काम की क्षतिपूर्ति का मुआवजा वह रुपये के रूप में वसूलता है। इस प्रकार सभ्य समाज के रिवाजों के विपरीत एक तरह से लड़की वाले को ''दहेज'' या शुल्क देना पड़ता है।

श्री बी. आर. रिजवी के अनुसार, ''आदिवासी महिला छः प्रकार के कार्य करके आदिवासी अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है-

(1) शिकार करके।

(2) खाद्य और अखाद्य वन-उपजों का संग्रह करके।

(3) पशुपालन और पशुओं को चराना, मुर्गे-मुर्गियाँ रखना और उन्हें संभालना।

(4) शाक-सब्जियाँ बोना और उन्हें बाजार में ले जाकर बेचना।

(5) कृषि कार्यों में, जैसे-बीज बोना, खरपतवार उखाड़ना, फसल काटना, अन्न को ढोकर खलिहान से घर तक लाने इत्यादि में पुरुष की सहायता करती हैं।

(6) भूमिहीन परिवारों की आदिवासी महिलाएँ अपने पड़ोसियों तथा सभ्य समाजों के खेतों में कृषि मजदूर के रूप में काम करती हैं, उन्हें अक्सर पुरुष की तुलना में आधी मजदूरी दी जाती है पर वे पुरुष से किसी भी मायने में कम काम नहीं करतीं।''

इस प्रकार से आदिवासी महिला अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए पूरी तरह से अपने पति की आमदनी पर ही निर्भर नहीं रहती है। वह खुद भी जी-तोड़ कर कार्य करती है, और अपनी बेटियों से भी करवाती है, ताकि बाद में उन्हें ससुराल में सास या पति के ताने नहीं सुनने पड़ें। पति की आमदनी न होने

पर भी वह असहाय-सी घर में बैठी नहीं रहती है। वह तुरन्त निर्णय लेती है कि उसे कौन-सा काम आसानी से मिल सकता है, और उसमें उसे कितनी मजदूरी मिलेगी। इस प्रकार वह काम करके अपने परिवार को भूखों मरने से बचाती है। भील और गरासिया आदिवासी अपने समाज में महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त करने के लिए महिलाओं को बहुत महत्त्वपूर्ण समझते हैं, मीणा और डामोर आदिवासियों के बारे में ये दृढ़ राय है कि महिला का स्तर पुरुष की तुलना में निम्न होता है।

इस प्रकार से आदिवासियों में भी जनजातियों के भेद के अनुसार महिला के स्तर में अन्तर है, परन्तु जहाँ तक कार्य की बात है सभी जनजातियों की महिलायें परिश्रमी होती हैं। अभी भी सभ्य पुरुषों के समाज में पुरुषों का नजरिया नारी के बारे में 'पैर की जूती' के बराबर होता है। पर आदिवासी समाज अभी इस स्तर पर नहीं उतरा है, हालाँकि लड़ाई-झगड़ा हो जाने पर या नहीं पटने पर पुरुष महिला को छोड़ देते हैं, पर महिला भी इन्हीं कारणों की वजह से पुरुष का घर त्याग कर उसके लिए आफत खड़ी कर सकती है, क्योंकि फिर नई पत्नी लाने के लिए उसे तीन-चार हजार रुपये खर्च करने पड़ेंगे, जो उसके बलबूते के बाहर की बात होती है। वह महिला ही होती है, जिसके बलबूते पर खेतों को छोड़कर पुरुष बाहर शहरों में मजदूरी करने या कारखानों में काम करने चला जाता है और दो-दो महीनों तक वापस नहीं लौटता। ऐसे समय में वह ही घर भी संभालती है, खेतों में हल भी हाँकती है, बोती भी है, खरपतवार भी निकालती है, कटाई भी करती है। यही कारण है कि आदिवासियों में परिवार नियोजन कार्यक्रम के प्रति बहुत रुचि नहीं है, क्योंकि उनका मानना होता है कि जितने बच्चे होंगे, उनके काम में वे उतनी ही सहायता करेंगे। वे भूल जाते हैं कि इन बच्चों को भरपेट खिलाने के लिए उन्हें कितनी अतिरिक्त मेहनत करनी पड़ेगी और फिर भी वे उसी गरीबी और कर्ज में डूबे रहेंगे।

औद्योगिक गतिविधियों में आदिवासियों के शामिल होने का महत्त्वपूर्ण नतीजा यह हुआ कि प्राथमिक क्षेत्र से पुरुष श्रम बल का काफी बड़ा हिस्सा हट गया तथा महिलाओं पर कृषि को बनाये रखने की निर्भरता भी बढ़ गयी। औद्योगिक कार्यों में आदिवासी अकुशल श्रमिक के रूप में काम करता है, धीरे-धीरे वह अनुभवी हो जाता है, पर सामान्यत: वह अपना परिवार शहर में नहीं ले जाता है, अगर ले जाता है तो घर पर खेती-बाड़ी कौन संभालेगा ? बहुत-से निजी उद्योगों में महिलाओं की श्रमिकों के रूप में भरती सामान्यत: नहीं की जाती है, पर

कई जगहों पर शिक्षित आदिवासी महिलाएँ नर्स, अध्यापिका, टाईपिस्ट, क्लर्क के रूप में सरकारी और निजी विभागों में काम करने लगी हैं, वहाँ पर वे विभिन्न समुदायों के लोगों के सम्पर्क में आती हैं। कई उदाहरण ऐसे देखे गये हैं जिनमें ये आदिवासी महिलाएँ अन्य जातियों के लोगों से शादी कर लेती हैं, कई जगहों पर ये नैतिक रूप से भी पतित हो जाती हैं, ऐसी घटनाओं को आदिवासियों में नापसद किया जाता है, और वे इन घटनाओं से क्रोधित भी होते हैं।

अब चूँकि धीरे-धीरे आदिवासी महिलाओं की नई पीढ़ी शिक्षा ग्रहण कर रही है, उन्हें समाज कल्याण के द्वारा विशेष रूप से आदिवासी कन्या आश्रम छात्रावासों में पढ़ने के लिए रहने की व खाने की मुफ्त सुविधा दी जाती है। अतः आदिवासी युवतियाँ धीरे-धीरे शिक्षित होती जा रही हैं, पर कुल महिलाओं की जनसंख्या की तुलना में शिक्षित लड़कियों और महिलाओं की संख्या बहुत कम हैं। संस्कृति कभी स्थिर नहीं रही है, अत: जब संस्कृति ही गतिशील है तो आदमी और औरत की जिन्दगी भी स्थिर नहीं रह सकती। अत: आदिवासियों में भी परसंस्कृतिग्रहण (Acculturation) तथा सहमिलन (Assimilation) हो रहा है। जनजाति महिला अधिक-से-अधिक बाह्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आ रही हैं। वे स्वैच्छिक या सरकारी संस्थाओं में भी काम करने लगी हैं। अन्तःक्रियाएँ अन्त:-परिवर्तनों को प्रभावित करती हैं। इस तरह से आदिवासी परिवार के ढाँचे, जाति, उपजाति व सामाजिक संस्थाओं में भी बदलाव आ रहा है।

अब आदिवासी युवतियों की वर्षों पुरानी पोशाक भी बदल रही है, वे साड़ी पहनने लगी हैं, आधुनिक नकली गहने तथा चपलें, और जूते भी पहनने लगी हैं, वे इन बातों में अपने पड़ोसी समाज या शहरी औरतों की नकल करती हैं। यह शुरूआत तब से अधिक तीव्र हुई है जब से शहरों में लड़कियों के होस्टल खुले हैं, जहाँ आदिवासी लड़कियाँ रहती हैं, और शहर के स्कूल-कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करती हैं, वहीं वे शहरी लड़कियों के सम्पर्क में आती हैं, और उन्हीं की तरह रहना चाहती हैं। उनकी यह चाहत बढ़ती जाती है और कई बार प्रदर्शन की यह चाहत उन्हें गलत रास्ते पर भी भटका ले जाती है।

चूँकि एक महिला के समक्ष सबसे बड़ी बाधा उसका सांस्कृतिक वातावरण ही बनती है, अतः सांस्कृतिक वातावरण बदल दिया जाये तो फिर भौगोलिक वातावरण पर भी विजय पाई जा सकती है, और यह परिवर्तन लगातार हो रहा है। ज्यों-ज्यों आदिवासी महिलाएँ शिक्षित होती जा रही हैं, वे सामान्य जन-जीवन में

महत्त्वपूर्ण भूमिका बनाती जाती रही हैं। अब आदिवासी महिलाएँ अध्यापिका, नर्स, डॉक्टर हैं तथा कुछ अखिल भारतीय सेवाओं में भी कार्य कर रही हैं।

दूसरी ओर लगातार सूखे के कारण दक्षिणी राजस्थान की कुछ आदिवासी युवतियाँ और महिलाएँ काम न मिलने और भूखों मरने की नौबत आने पर अपनी देह का सौदा करने पर मजबूर हैं। नारी जीवन की यह विडम्बना है। उदयपुर के गोगुंदा, कोटड़ा, झाडोल, फलासिया ब्लाकों में देह-व्यापार इन दिनों तेजी से फैल रहा है, दस-पन्द्रह रुपये के लिए 10-12 साल की मासूम आदिवासी लड़कियों से लेकर 40-45 वर्ष की अधेड़ स्त्रियाँ तक अस्मत का सौदा करने को मजबूर हैं। गुजरात की सीमा पर लगे गाँव मड़वाल चरिया, खिती, बूढिया, भूरीटेवख, कोटड़ा कस्बे से डूँगरपुर के रतनपुर तक की सड़क पर गाँव टोडी, इसरियाजी, जेरेवार देह-व्यापार की मंडियाँ बन गयी हैं। कोटड़ा रतनपुर मार्ग पर रात भर सैकड़ों ट्रक, कारें, मोटर साइकिलें सड़क के किनारे खड़ी मिल जायेंगी। एक स्वयंसेवी संस्था द्वारा किये गये सर्वेक्षण में 90 प्रतिशत से ज्यादा आदिवासी युवक-युवतियाँ यौन रोगों से ग्रस्त पाये गये। स्पष्ट है कि ये यौन रोग इन आदिवासी महिलाओं को उन ट्रक ड्राइवरों और अय्याश पुरुषों से लगे होंगे जो कि पहले से ही वेश्याओं के सम्पर्क में रहे हैं। इस प्रकार से आदिवासियों की सम्पूर्ण पीढ़ी को ही खतरा उत्पन्न हो गया है। जब ये आदिवासी महिलाएँ खाने के लिए दो जून की रोटी का जुगाड़ नहीं कर पातीं तो इन बीमारियों में इलाज के लिए उनके पास कहाँ पैसे होते हैं। इनके कुप्रभाव बाद में उनकी सन्तानों पर भी पड़ते हैं।

पिछले दशक और इस दशक में उन महिलाओं को, जो किसी औद्योगिक क्षेत्र में मजदूरी करती हैं, या देह-व्यापार करती हैं, या माही डैम क्षेत्र में काम करती हैं, उनके बच्चों का रंग-रूप सभ्य समाज से मिलता है। स्पष्ट है कि आदिवासी महिलाओं की गरीबी का फायदा सभ्य समाज के लम्पट और कामुक पुरुष उठा रहे हैं। ये आदिवासी महिलाएँ अपने और अपने परिवार की दो जून की रोटी की प्राप्ति के लिए इस प्रकार से देह का सौदा करने पर मजबूर हो रही हैं।

ये स्थितियाँ तो उन आदिवासी परिवारों की हैं जो उन ग्रामों में रहते हैं जो शहरों के निकट हैं या राष्ट्रीय राज मार्ग नं. 8 पर अवस्थित हैं। दूरस्थ ग्रामों में रहने वाली अशिक्षित आदिवासी महिला तो अभी भी अपने परम्परागत कार्यों के माध्यम से ही अपनी आजीविका में योगदान कर रही है। प्रस्तुत है विभिन्न आदिवासी समुदायों में महिलाओं की आर्थिक गतिविधियाँ-

(1) भील महिलाएँ–राजस्थान की आदिवासी महिलाओं में भील महिलाओं का आधिक्य है। भील अक्सर डूँगरियों में झोंपड़ियाँ बनाकर रहते हैं और वहीं पर जमीन साफ करके खेती करते हैं, इनकी खेती पूर्णतः वर्षा पर ही आधारित होती है। इन विषम परिस्थितियों में एक भील महिला पूरे धैर्य और विश्वास के साथ गृहस्थी की गाड़ी खींचने में पति का सहयोग देती है। वह घर की स्वामिनी होती हैं और इस नाते उसे बराबर का हक मिला होता है। घर के सारे काम, जैसे–रोटी बनाना, पानी भरना, पशु चराना, दूध निकालना, जंगल से लकड़ी लाना, ये कार्य तो उसकी जिन्दगी के अभिन्न अंग हैं ही; इनके अतिरिक्त भी 1999 से दक्षिणी राजस्थान में पड़ रहे सूखे ने इनको अपने गाँव से भी बाहर निकलने को मजबूर कर दिया है, फिर भी इनका धैर्य और विपरीत परिस्थितियों में जिन्दगी चलाने की क्षमता सराहनीय है। किये गये सर्वेक्षण में मैंने देखा कि आदिवासी महिलाओं के तन पर पूरे कपड़े भी नहीं हैं, वही मैले कपड़े पहने हुए हैं, बच्चे नंग–धड़ंग ही बाहर खेल रहे हैं। हाँ, अजनबियों को देखकर वे एकदम सकुचा जाती हैं और चेहरे पर अपनी विपन्नता छुपाने के भाव दृष्टिगोचर हो जाते हैं। बहुत विवश है आदिवासी महिला, फिर भी उसके चेहरे पर स्वागत की मुस्कान आ जाती है, "पधारो" कहकर खाट बिछाती है। उसका पति राहत कार्यो पर गया हुआ है, इसलिए वह घर पर ही है। बच्चे छोटे हैं, सार–संभाल जरूरी है। मेरे साथी सुरेश घोटालकर बागड़ी में बात शुरू करते हैं। वह बोलती है कि बहुत परेशानियाँ हैं, लेकिन सबसे बड़ी परेशानी पानी की है। दो किलोमीटर दूर जाकर लाना पड़ता है कुएँ से। कैसे चलता है घर का खर्चा? जवाब देती है–वो काम पर जाते हैं। कुछ उधार भी चढ़ रहा है। आगे भगवान् की मर्जी। बच्चे छोटे हैं नहीं तो मैं भी मजदूरी कर लेती।

मिट्टी के केल्हू की बनी झोपड़ियाँ हैं, जिनमें आगे और पीछे ढ़लान हैं, घर के दरवाजे नहीं हैं, झोंपड़ी साफ–सुथरी और जमीन गोबर से लीपी हुई है। दीवारों पर माण्डणे भी माँडे हुए हैं, पर अन्दर से बिल्कुल खाली–सी। उनके गोदड़े (पहनने–बिछाने के कपड़े लत्ते) हैं, हल हैं, और 4 मुर्गियाँ हैं। कहती है, इस साल तो क्या पिछले साल भी खेती से कुछ नहीं आया। मजदूरी के सहारे काम चल रहा है। किसी घर से मर्द, तो किसी घर से औरत, सरकारी मजदूरी में जाते हैं। पास ही खेत बिल्कुल खाली पड़ा है। हल चला रखा है। मिट्टी के बड़े–बड़े सूखे ढेले जैसे पानी की आस लगाए पड़े हैं।

ऐसे सूखे में कहीं सिंचाई की सुविधा है तो खेती का काम भील महिलाएँ ही संभालती हैं। आदमी शहर मजदूरी करने जाता है, या नजदीक के राहत कार्यों में। वह खेत में खास काम ही करता है जैसे कि हल चलाने का या फसल काटने का। शेष सारा काम वह महिला ही संभालती है, पर सभी जगहों पर खेती नहीं हो रही। मजबूरन भील महिलाओं को राहत कार्यों पर भी जाना पड़ता है, जिनमें जवान लड़कियाँ और अधेड़ महिलाएँ–दोनों ही होती हैं। राहत कार्यों में एनीकट हेतु गढ़ा खुदवाना, वृक्षारोपण, मेड़बन्दी का काम वे पुरुषों के साथ कन्धे–से–कन्धा मिलाकर करती हैं। भवन निर्माण, सड़क निर्माण, कुआँ खोदने में भी तगारी ढोने का काम करती हैं। अस्थायी परिश्रम के रूप में वे खाली समय मे निर्माण कार्यों में मजदूरी करती हैं, वे पास के बाजारों में लकड़ियाँ बेचती भी दिख जाती हैं।

राहत कार्यों में काम करते समय उन्हें मेट अथवा सुपरवाईजर की झिड़कियाँ सहनी पड़ती हैं, कई बार वे लोग इनसे अश्लील मजाक कर बैठते हैं, काम पर आने वाली जवान लड़कियों का यौन–शोषण भी होता है। महिलाओं को 'समान कार्य हेतु समान वेतन' के सिद्धान्त का भी यहाँ पर खुला उल्लंघन होता है। फिर भी ये आदिवासी महिलाएँ किसी के यहाँ पर निजी मजदूरी करने की अपेक्षा सरकारी मजदूरी ज्यादा पसंद करती हैं, क्योंकि यहाँ पर उन्हें तुलनात्मक रूप से कम काम करना पड़ता है, फिर भी पैसे अच्छे मिल जाते हैं।

यदि सरकारी राहत कार्यों में काम न मिले तो फिर उन्हें दूसरे के खेतों में निराई–गुड़ाई का काम अथवा अन्य काम करने पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त भील औरतें अक्सर शहर में विभिन्न भवन निर्माण कार्यों में तगारी ढोती नजर आ जाती है। चिनाई के काम में वे सहयोग देती हैं और इस कार्य को खुशी–खुशी करती भी है। भील महिलाओं में से कई अपने खेत में पैदा की गयी सब्जी या गाँव में दूसरों से शाक–भाजी खरीदकर निकटवर्ती शहर अथवा कस्बे के मुख्य बाजार के पास जाकर अपनी टोकरी खोलकर बैठ जाती है। अक्सर ठेले वाले लोगों से इनकी सब्जियाँ ताजी होती हैं और शाम होते–होते बिक जाती हैं। यदि नहीं बिक पातीं तो शाम को वे दाम घटाकर भी बेचने को तैयार रहती हैं, क्योंकि उन्हें वापस उनके गाँव लौटना होता है।

प्रात: 5 बजे से ही आदिवासी महिलाएँ दूध बेचने के लिए छोटे चरे (पीतल की गगरी) सिर पर लादे आस–पास के गाँवों से शहर की ओर आती

दिखाई देती हैं। उनके साथ अक्सर उनका बेटा या भाई अथवा एक पुरुष अवश्य होता है। ये औरतें घर पर जाकर भी दूध देती हैं और किसी एक निश्चित स्थान पर भी दूध बेचती हैं। यह दूध वे गाँव में भैंस वालों या गाय वालों से खरीदती हैं या खुद की बकरियों का दूहकर लाती हैं। वे अक्सर डेयरी वाले की अपेक्षा सस्ता देती हैं। लेकिन वे कई बार दूध में पानी मिलाने से भी नहीं चूकतीं।

जिन भील आदिवासियों के खेतों में आम, महुआ, बेर व टैमरू (तेंदू) के पेड होते हैं। उनकी औरतें इन पेड़ों द्वारा फल देने पर; जैसे–गर्मियों में कच्चे आम व पके आम बेचती हैं, गर्मियों में ही वे तेंदू फल टोकरियों में भर कर बेचती हैं। मार्च, अप्रैल तक महुए के फूल रात भर झड़ते रहते हैं। इकट्ठे करके ये उनको या तो साहूकार को बेच देती हैं, या शराब बनाने वालों को बेच देती हैं।

ज्योंही पति अलग से हल जोतना शुरू करता है, भील पत्नी-पति के घर आ जाती हैं। कुँवारी कन्याओं को पवित्र माना जाता है; तथा अच्छी फसल की प्राप्ति के लिए फसल का पहला कच्चा खाद्यान्न उन्हें दिया जाता है। किसी महत्त्वपूर्ण कार्य हेतु गुजरते व्यक्ति के आगे से उनका निकलना शुभ माना जाता है, दो बीबियाँ होने पर जो पति की ज्यादा प्यारी होती है उसी का घर में प्रभुत्व चलता है। विधवा होने पर शोक के दिन गुजरने पर वह पुनः शादी कर लेती है। वह किसी भी मायने में आदमी से कम मेहनत नहीं करती है। यही कारण है कि वह मर्द से दबती भी नहीं है। वह अपने पति की बराबर की साझेदार होती है। जगल से दिन-दिनभर लकड़ियाँ काटकर इकट्ठा करती है और शाम को उन्हें बेचने भी जाती है। उसकी दिनचर्या बहुत कठोर होती है, यही कारण है कि उनकी देह मेहनत से निखरकर कंचन होती जाती है।

(2) **मीणा महिलाएँ**–मीणा जनजाति अन्य जनजातियों की अपेक्षा अधिक उन्नत अवस्था में है। यही कारण है कि इस जनजाति की महिलाओं में शिक्षित महिलाएँ भी अन्य जनजातियों की अपेक्षा अधिक हैं। इस जनजाति के अधिकांश व्यक्ति अब गाँवों, कस्बों और शहरों में बसे हैं। जंगल के आवास इन्होंने त्याग दिये हैं। इन्हीं लोगों के पास जमीन भी अधिक है। राजस्थान में सर्वाधिक मीणा आदिवासी सवाई-माधोपुर व करौली जिलों में हैं। वहाँ पर इन लोगों के पास काफी जमीन है। मीणा महिलाएँ कृषि कार्य में सहयोग देती हैं। अक्सर वे खेत में हल चलाने से लेकर बीज बोने, निराई-गुड़ाई करने और सिंचाई कार्य में अपने पति का साथ दती हैं यही जनजाति ऐसी है जिसके सर्वाधिक सदस्य

राज्य और केन्द्र सरकार की सेवाओं में हैं। सवाई-माधोपुर जिले का बामणवास ग्राम तो जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा में एक गाँव से चयनित सर्वाधिक अधिकारियों का पर्याय हो गया है। इस जनजाति के अन्तर्गत परिवार का एक सदस्य भी भारतीय प्रशासनिक सेवा या राज्य प्रशासनिक सेवा या किसी अन्य सेवा में चला जाता है, तो फिर वह अपने परिवार के अन्य सदस्यों को भी बेहतर मार्गदर्शन देकर उन्हें भी प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से नौकरी दिलवा ही देता है। यही कारण है कि मीणा महिलाएँ अब शिक्षा से लेकर प्रशासनिक क्षेत्र में भी काम कर रही हैं। देखा जाये तो नौकरियों में आरक्षण सुविधा का सर्वाधिक लाभ इस जनजाति के युवक-युवतियों ने उठाया है। एक बार आरक्षण की सुविधा प्राप्त कर अधिकारियों एवं कर्मचारियों के परिवार गाँव छोड़कर अब शहर में बसते हैं और ये व्यक्ति अपने लड़के-लड़कियों को अच्छी शिक्षा दिला रहे हैं। यही कारण है कि मीणा युवतियाँ और महिलाएँ विभिन्न क्षेत्रों में तीव्र गति से आगे बढ़ रही हैं।

लेकिन दूसरी ओर सामान्य ग्रामीण मीणा महिलाएँ आज भी पशुपालन और पशु चराने का काम करती हैं। खेतों के पश्चात् पशुपालन उनका मुख्य धन्धा है। पशुओं में ये लोग सामान्यत: भैंस व बकरियाँ रखते हैं। दूध निकालना, उसे सीधे बाजार में बेच देना अथवा दूध निकालकर पहले उनमें से मलाई निकालकर और बाद में मलाई निकले दूध को बाजार में बेचने का कार्य सामान्यत: पुरुष करते हैं। लेकिन दूध दुहना और मलाई निकालने का काम घर पर महिलाएँ करती हैं। वे ही पशुओं को चराने का काम करती हैं। मीणा और डामोर महिलाओं को दिन में आराम का समय शायद ही मिल पाता हो।

मीणा महिलाएँ मजदूरी कम ही करती हैं; क्योंकि उनके घर में ही जमीन काफी होती है और करने को खूब काम होता है। घर संभालना, खेत जाना, पशुओ का ध्यान रखना-दिन कब बीत जाता है इसका उन्हें अहसास ही नहीं हो पाता। वे काफी मेहनती होती हैं और खेत में पुरुषों के बराबर ही काम करती हैं। "मीणा महिलाएँ वन सम्बन्धी गतिविधियों जैसे कि वन उपज एकत्र करने का काम नहीं करती हैं। यह पारिस्थितिक घटकों के कारण हैं, क्योंकि इनके क्षेत्रों में अब वन बिलकुल नहीं रहे हैं।

(3) गरासिया महिलाएँ ऊँचा घाघरा झूलनी (लम्बा ब्लाउज) और

छोटी लूगड़ी पहने गरासिया महिलाएँ और युवतियाँ आदिवासियों में भी अलग से ही नजर आती हैं। यह उनकी विशिष्ट पोशाक होती है और युवती से लेकर वृद्ध महिलाएँ भी यही पोशाक पहनती हैं। गरासिया महिलाएँ अक्सर नंगे पाँव ही नजर आती हैं। औरत का दर्जा मर्द के बराबर समझा जाता है। दम्पत्ति में आपसी स्नेह खूब रहता है।

अन्य आदिवासी महिलाओं की भाँति गरासिया महिला भी पानी लाना, घर का सारा काम करना और बच्चों को संभालती है। इसके अतिरिक्त जिनके घरो मे पशु होते हैं वहाँ युवतियाँ पशु चराने का भी काम करती हैं। गरासिया आदिवासी जंगल में जाकर लकड़ियाँ काटते हैं, हालाँकि अब आबूरोड़ क्षेत्र में जंगल नहीं के बराबर हैं, फिर भी डूँगरपुर जिले की तुलना में भी वहाँ पर अच्छे हैं। गरासियों के द्वारा लकड़ी काट देने पर महिलाएँ लकड़ियाँ इकट्ठी करती हैं और उन्हें समीपवर्ती कस्बे में या आबूरोड़ जाकर बेच देती हैं। कई बार महिलाएँ खुद भी लकड़ी काटने जाती हैं। वे खुद ही बाँधती हैं और उसे बेचने शहर में जाती हैं। ऐसी स्थिति में घर में अविवाहित ननद या पति बच्चों का ध्यान रखते हैं।

गरासिया महिला बड़ी स्वाभिमानी होती है। अगर मर्द औरत को पीट दे, थोड़ा-सा डाँट दे तो औरत घर छोड़कर चली जाती है। महिला की स्वयं की सहमति होने पर ही वह घर में रहती है। पति उसे जबरदस्ती नहीं रख सकता। यही कारण है कि गरासिया पुरुष औरतों पर ध्यान भी देते हैं, क्योंकि वे उनकी आजीविका में महत्त्वपूर्ण सहायक होती हैं। हाँ, बहुविवाह होने के कारण जरूर कई बार महिलाएँ अपने को उपेक्षित महसूस करने लगती हैं और जहाँ पर उनका मन थोड़ा-सा भी उचटता है, वे पति को छोड़ देती हैं।

औरतें और लड़कियाँ तपती धूप में सड़क बनाने के काम पर मजदूरी करने भी जाती हैं। वहाँ वे मर्दों के बराबर ही काम करती हैं, फिर भी कई बार उन्हें उन के द्वारा किया गया काम कम बताकर कम मजदूरी देकर टरका दिया जाता है। "अन्य जनजातियों की अपेक्षा गरासिया जनजाति में महिलाएँ घास और चारा खेतों और जंगलों से इकट्ठा करके लाती हैं, ताकि पशुओं के चारे की व्यवस्था हो सके। वे घरेलू उपयोग के लिए लकड़ियाँ भी बीनती हैं और अधिक होने पर पास के गैर आदिवासियों को बेचती हैं।"

गरासिया महिलाओं को सजने संवरने का शौक ज्यादा ही है। आबू रोड में किसी काम के लिए आने वाली हर युवती या घूमने फिरने आने वाली युवतिया

अपनी परम्परागत पोशाक में खूब सजी-सँवरी रहती हैं और अपने इस शौक को पूरा करने के लिए वे मजदूरी कर या लकड़ी बेचकर पैसा इकट्ठा करती हैं।

इन महिलाओं को सबसे बड़ा दुःख इस बात का है कि इनकी मेहनत की कमाई को घर के आदमी शराब में उड़ा देते हैं और शराब पीकर उनसे ही झगड़ते हैं या फिर घर में उनकी ही सौत (दूसरी पत्नी) लाने की तैयारी करते हैं। सरकारी राहत कार्यों पर काम करने वाली औरतों ने 2-2 महीनों तक मजदूरी का पैसा नहीं मिलने की भी शिकायत की। कहीं-कहीं पर अवैध शराब (महुड़ी) बनाने में महिलाएँ भी सहयोगी होती हैं। महिलाएँ अब मुर्गे-मुर्गियाँ कम पालने लगी हैं, क्योंकि सरकारी आदमी के आने पर अक्सर उनसे मुर्गा-मुर्गी माँग ली जाती है और वे मना नहीं कर सकतीं।

आबू रोड़ और माउन्ट आबू में नवीन भवनों का निर्माण कार्य चलता ही रहता है। गरासिया महिलाएँ वहाँ पर भी तगारी ढोती हैं, पत्थर लाती और रेत छानती हुयी दिखायी देती हैं। खेत के काम में भी जी-तोड़कर मेहनत करती हैं। आबू रोड़ पंचायत समिति के गाँव गिरवर में कुछ जमीन सिंचित है अर्थात् उन गरासियों की जमीन में कुएँ हैं, जो सरकार द्वारा कुएँ खोदने के कार्यक्रम के अन्तर्गत खोदे गये हैं। यहाँ जाने पर औरतें खेतों में सब्जियों में सिंचाई करती हुयी नजर आयीं। शेष कई खेत पानी के अभाव में बिलकुल खाली पड़े हुये थे।

गरासिया महिलाएँ गुजरात में अपने परिवार वालों के साथ ईंट-भट्टों पर काम करती हैं। वह तम्बाकू साफ करने भी जाती हैं। इस कार्य के दौरान लगभग 2-3 महीने वहीं रहती हैं। परिवार में गरासिया महिला का महत्त्वपूर्ण आर्थिक योगदान होने के कारण गरासिया नवयुवक हर काम में उसकी सलाह लेता है। यही कारण है कि घर के लिए जब भी वह सामान खरीदने जाता है, अपनी पत्नी को भी साथ ले जाता है। पत्नी ही परिवार की ''मुख्य रोकड़िया'' होती है, अर्थात् पैसे पत्नी के पास ही रखे जायेंगे। चीज की खरीद में भी पत्नी की पसंद का ध्यान रखा जाता है।

(4) डामोर महिलाएँ—डामोर आदिवासी डूँगरपुर में सीमलवाड़ा पंचायत समिति में हैं। इस क्षेत्र की जमीन काफी उपजाऊ है। दोमट और काली मिट्टी है जिसमें पानी की अधिक आवश्यकता होती है; परन्तु अन्य जिलों की भाँति यह क्षेत्र भी सूखे की चपेट में रहा है फलस्वरूप खेत खाली नजर आते हैं। डामोर महिलाएँ खेती के काम में निपुण होती हैं पर वर्षा न होने के कारण वे विवश हैं

फलत: मजदूरी करने पर मजबूर हैं। मजदूरी कार्य के अन्तर्गत ये सड़क निर्माण कार्य में तगारी ढोने का, ऐनीकट निर्माण में मिट्टी निकालने का कार्य करती है।

घरों में भेड़-बकरियाँ और भैंसें पाली जाती हैं। डामोर महिलाएँ ही इनकी देखभाल करती हैं। अब चारे की समस्या के कारण धीरे-धीरे पशुओं की संख्या कम होती जा रही है। लेकिन महिलाएँ सामान्यत: पशु चराने का काम नहीं करती है, वे घर के एक बच्चे को इस काम पर नियुक्त कर देती हैं। परिणाम यह होता है कि वह बच्चा अपनी पढ़ाई शुरू भी नहीं कर पाता और अनपढ़ ही रह जाता है। उनसे यह बात कहने पर उनका जवाब था कि अगर इसे भी पढ़ने के लिए स्कूल भेज देंगे तो बकरियाँ कौन चरायेगा ? घर में पति पर पत्नी का प्रभुत्व रहता है। उसकी बात ही मानी जाती है। डामोर महिलाएँ अपने गाँव से बाहर या राहत कार्यों के अलावा अन्य स्थानों पर मजदूरी करती हुई नहीं पायी गयी हैं। वे वर्षभर में वर्षा पर आधारित जो एक फसल होती है, उसी के अनाज से घर-खर्च चलाती हैं। हाँ, गुजरात पास होने के कारण इनके आदमी जरूर मजदूरी करने वहाँ चले जाते हैं।

चूँकि डामोर लड़कियों को उनके परिवार वाले काम करने की मशीन समझते हैं, अत: उनकी शादी हो जाने के बाद उन्हें उस लड़की की कमी खलती रहती है। यही कारण है कि वे लड़की को शादी के बदले में लड़के वालों से मुआवजे के रूप में धन माँगते हैं; क्योंकि वे एक तरह से लड़के वालों को अपने घर का एक महत्त्वपूर्ण कार्यकारी सदस्य देते हैं।

''भीलों और गरासियों की तुलना में डामोर महिलाएँ कृषि कार्यों पर ज्यादा ध्यान देती हैं। पारिस्थितिक कारणों अर्थात् जंगल न रहने के कारण वे वन-उपज संग्रह करने का काम नहीं करती हैं। इस प्रकार से वे खेतों में एक तरह से अपनी जान झोंकती हैं।'' डामोर आदिवासियों में यह बात भी देखने में आयी है कि वे महिला की कार्यों में सहायता भी नहीं करते। वे उसके कार्यों में हस्तक्षेप भी नहीं करते। वे अक्सर महिलाओं द्वारा किये गये कार्यों के प्रति उदासीन रहते हैं।

(5) कथोड़ी महिलाएँ-कथोड़ी महिलाओं की पोशाक विशिष्ट होती है। वे सिर्फ एक लूगड़ा (साड़ी) ही पहनती हैं। उसे वे इस ढंग से लपेटती हैं कि वह सिर से लेकर उरोजों और कमर पर होता हुआ दोनों पाँवों पर लिपट जाता है। औरतें पोलका (घाघरा) इसलिये नहीं पहनतीं; क्योंकि उनकी मान्यता है कि इससे धरती माता को लाज आयेगी परन्तु अब लडकियाँ (घाघरा)

पहनने लगी हैं। यह उन पर अब जनसाधारण का प्रभाव है। कथोड़ी आदिवासियो में लड़के के जन्म की अपेक्षा लड़की के जन्म को प्रसन्नता से स्वीकार किया जाता है। वे अपनी सम्पत्ति भी लड़की को ही देते हैं।

कथोड़ी महिलाएँ अपने पति के साथ जंगल में जाकर गोंद, महुआ, फल, टेमरू (तेंदू), तेन्दू पता और धोली मूसली का एकत्रीकरण करती हैं। ये धोली मूसली के एकत्रीकरण में बहुत विशेषज्ञ होती हैं। यह एक जड़ी है जो प्रसवावस्था के उपरान्त अच्छे स्वास्थ्य की पुन:प्राप्ति के लिए औरतों द्वारा तथा यौन-क्षमता बढ़ाने के लिए पुरुषों द्वारा प्रयुक्त की जाती है।

अक्सर महुआ बीनने का काम मार्च के अन्त में शुरू हो जाता है, और अप्रैल के मध्य तक चलता रहता है। रात में 12 बजे से लेकर सुबह तक महुए के पेड़ से फूल गिरते रहते हैं। जमीन पर सफेद चादर-सी बिछ जाती है, और वातावरण में महुए की नशीली गन्ध फैली रहती है। ये महुए के फूलों को इकट्ठा करके सुखाती हैं। बाद में गाँव के महाजन इनसे 1.50 या 2 रुपये किलो के हिसाब से ले लेते हैं। इन महिलाओं के घर झोंपड़ियों के रूप में हैं, जो पूर्णत: लकड़ी, पत्तों और घास-फूस की बनी होती हैं जिनमें कोई कोठार या गोदाम नहीं होता है। इसी कारण ये जंगल से जो वन-उपजें एकत्र करके लाते हैं, तुरन्त महाजनों को बेच देते हैं। अम्बासा में तीन-चार महाजनों की आजीविका ही इनकी वन-उपजों के एकत्रीकरण के आधार पर चल रही है। विडम्बना यह देखिए कि कभी कथोड़ी आदिवासी ही शराब खींचने (बनाने) का काम करते है, तो ये महाजन उन्हें 4-5 रुपये किलो के हिसाब से महुए के फूलों को बेचते हैं। ये इस प्रकार गरीब आदिवासियों द्वारा इकट्ठी की गयी उपज पर उनसे ही लाभ कमाते हैं।

इनके जानवरों में मुर्गा और कुत्ता ही प्रमुख होता है। यह एक घुमक्कड़ जनजाति है, अत: इस जनजाति की महिलाएँ पशुपालन का कार्य नहीं करती है। वे इसे आफत का काम समझती हैं। आश्चर्य की बात यह है कि आदमी के साथ-साथ औरत को भी शराब का शौक होता है। इस शौक को पूरा करने के लिए कई बार तो वे वन-उपजों को इकट्ठा करने के लिए 6-7 दिनों तक जंगल में ही पड़े रहते हैं।

कथोड़ी आदिवासियों के पास जमीन तो है, जो उन्हें सरकार द्वारा आवंटित की गयी है ताकि वे अपनी घुमक्कड़ जीवन रीति को खत्म करके एक स्थान पर

स्थायी तौर पर बस जायें। परन्तु इनके पास हल-बैल नहीं हैं; और बीज-खाद भी नहीं है। ऐसी स्थिति में ये खेती करें तो कैसे करें। यही कारण है कि कथोड़ी महिलाएँ अभी तक न तो खेती की बारीकियाँ समझ पायी हैं, और न वे खेती के काम में पूरा सहयोग दे पाती हैं। हाँ, राज्य सरकार के सहयोग से अब दो-दो आदिवासियों की जमीन पर उनकी सिंचाई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुआँ खोदने का काम चालू है। कथोड़ी महिलाएँ भी इस काम में लगी हुई हैं। एक व्यक्ति खींचकर मिट्टी बाहर निकाल रहा है। महिला तुरन्त मिट्टी भरी डोलची को निकाल कर उसके स्थान पर खाली डोलची रख देती है, और फिर उस मिट्टी की डोलची को सिर पर ले जाकर खेत में खाली कर आती है।

ये आदिवासी उदयपुर के गुजरात से सटे हुए अम्बासा, डैया, अम्बावी गाँवों में बसे हैं, अतः महिलाएँ वन उपजों का मौसम नहीं रहने पर पड़ोस के सम्पन्न गुजराती गाँवों में मजदूरी करने चली जाती हैं। पानी से कथोड़ी महिलाओं और पुरुषों को अथाह लगाव है। इनकी एक ही इच्छा रहती है कि उन्हें पानी के पास बसा दिया जाये और फिर उन्हें कुछ भी नहीं दिया जाये। कथोड़ी महिलाएँ भी पुरुषों की भाँति मछली मारने में सिद्धहस्त होती हैं, परन्तु अम्बासा गाँव में बिखरे हुए मोहल्लों में सिर्फ एक ही हैण्ड पम्प है। कुओं की खुदाई ये कर ही रहे हैं।

वास्तव में, कथोड़ी महिलाओं के प्राण जंगल में बसते हैं। जंगल ही इनका देवता है, और वही इनकी आजीविका का साधन है। अब धीरे-धीरे जंगल कम होते जा रहे हैं। दूसरी ओर सरकार ने इनके क्षेत्र में जंगलों को फुलवारी की नाल सेंक्चुरी के नाम से संरक्षित क्षेत्र घोषित कर दिया है। अतः वहाँ वन-रक्षक इनको जगलों में घुसने और वन-उपजें इकट्ठी करने से रोकते हैं। फलस्वरूप इनके अस्तित्व को भयंकर संकट उपस्थित हो गया है। सरकार वनों के वासी को जबरदस्ती खेतिहर बनाने पर तुली हुई है, जबकि अन्य आदिवासियों की भाँति ये लकड़ी नहीं काटते वरन् सिर्फ वन-उपज ही एकत्र करते हैं।

(6) सहरिया महिलाएँ—दक्षिण पूर्वी राजस्थान के बारां जिले की शाहबाद तथा किशनगंज तहसीलों और मध्यप्रदेश के सीमावर्ती शिवपुरी जिले का कुछ हिस्सा, कुल मिलाकर 2600 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में यह आदिवासी सहरिया जाति बसती है। इस क्षेत्र में कुल भू-क्षेत्र के 43% भाग में सघन वन थे, जो काटे जाने से अब थोडे से रह गये हैं।

सहरिया गाँव से एकदम बाहर अलग से अपनी बस्ती बसाकर रहते हैं, जिसे सहराना कहते हैं। सहरिया स्त्रियाँ रंग-बिरंगे घाघरे तथा ओढ़नी पहनती है। जेवर पहनने व श्रृंगार करने का शौक है। जेवर चाँदी, पीतल और गिलट के होते है। बदन पर गोदना भी गुदवाती हैं। सहरिया आदिम जनजाति है अर्थात् अन्य प्रकार के आदिवासी धीरें-धीरे साधारण जनता के सम्पर्क में आते गये। नयी बाते सीखते गये और उन्होंने अपने रंग-ढंग काफी हद तक बदल लिये, पर सहरिया आदिम जाति में अभी तक कोई बदलाव नहीं आया है-न तो वेशभूषा में और न ही शिक्षा के मामले में। क्षेत्र के दो-तिहाई ग्रामों में प्राथमिक विद्यालय भी नहीं है। इस आदिम जाति में महिला साक्षरता नगण्य है।

सहरिया आदिम जाति कभी पूरी तरह से जंगलों पर निर्भर थी। अब जंगल न तो क्षेत्रफल में उतने रहे न ही घने रहे, अतः सहरिया महिलाएँ खेती के कामो में योगदान करती हैं। सहरिया महिलाएँ अभी भी जंगल में वन-उपजें एकत्रित करने में अधिक रुचि लेती हैं। गोंद, शहद, चिरौंजी, लाख, कत्था, महुआ आदि वन-उपजों को ये एकत्र करती हैं, लेकिन इनका सरकारी कर्मचारियों द्वारा ही शोषण किया जाता है। ये कर्मचारी इनसे सस्ते भावों पर यह सामग्री खरीद लेते हैं, और बाद में बाजार में बेच देते हैं। कई बार सरकारी कर्मचारी रिश्वत के रूप मे इनकी वन-उपजों को ही झटक लेते हैं।

इसके अतिरिक्त सहरिया महिलाएँ मजदूरी करने भी जातीं हैं। वे या तो सरकारी राहत कार्यों के अन्तर्गत काम पर जाती हैं, अथवा किसी जगह पर सामूहिक रूप से अधिक मजदूरों की जरूरत होती है तो वहाँ पुरुषों के साथ ही काम पर जाती हैं। मजदूरी के मामले में इनका खूब शोषण होता है। निजी खेतो मे धान की रोपाई, गेहूँ की कटाई के समय इनसे खूब काम लिया जाता है। इतनी मेहनत करने के उपरान्त भी वे विपन्न बनी हुई हैं।

(7) **निष्कर्ष**–सर्वेक्षण के दौरान यह महसूस किया गया कि सभी जनजातियों की महिलाएँ परिश्रमी हैं, काम में पति का या परिवार वालों का बराबर का हाथ बँटाती हैं, फिर भी इनके परिश्रम का इन्हें पूरा भुगतान नहीं मिल पाता।

सामाजिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो तथाकथित सभ्य समाजों ने स्त्री के पैरों में जो बेडियाँ डाली हुई हैं पुरुष वर्ग द्वारा स्त्रियों पर दबाव डाला जाता है इन

सब बातों से आदिवासी महिलाएँ स्वतंत्र हैं, पति-पत्नी का बंधन उनके लिए एक दूसरे के "सहयोगी" का बंधन है और जब मन-मुटाव हो जाए तो फिर जबरन बंधे रहने से फायदा भी क्या।

इनके जीवन में सहजता है, स्वच्छंदता नहीं। कृत्रिमता वहाँ नजर आती है जहाँ ये शहरों के सम्पर्क में आती हैं। इनके जीवन में किसी महल में रहने की आकांक्षा नहीं है सिर्फ दो जून रोटी मिल जाए उसी में ये संतुष्ट हैं। इनसे हमारा अपने-आपको सभ्य समझने वाला समाज एक शिक्षा ले सकता है वह यह है कि यहाँ शादी एक का दूसरे के प्रति समर्पण है। दहेज के लेन-देन का दानव इन्हें छू तक नहीं गया है अपितु कई बार लड़के वालों को वधू पक्ष को "मुआवजा" देना पड़ता है; क्योंकि लड़की जो घर की एक कार्यकारी सदस्य है वह अपने पिता का घर छोड़कर पति के यहाँ आती है।

आदिवासी महिलाओं में हैरान कर देने वाली जिजीविषा है- दिन भर थकान से चूर, फिर भी चेहरे पर मुस्कुराहट, और दिन भर की थकान को रात में संगीत-नृत्य में भुला देना। यही जिंदगी का मूल-मंत्र है और इनकी जिंदगी का चक्र इसी तरह चलता रहता है। वन-विनाश के कारण और अकाल की स्थिति से इनके समक्ष जीवन-यापन का संकट उत्पन्न हो गया है। इसी वजह से आदिवासी महिलाएँ बहुत थोड़ी मजदूरी पर भी अपने अमूल्य श्रम को बेचने पर विवश हैं।

□□□

अष्ठम अध्याय

आदिवासियों की समस्याएँ और विकास कार्यक्रम

मानव जीवन में समस्याओं का आना स्वाभाविक है और उन समस्याओं को हल करने में ही व्यक्ति की गतिशीलता लक्षित होती है पर जब व्यक्ति उन समस्याओं को हल करने में असमर्थ होता है और उस पर एक के बाद एक समस्याओं के पहाड़ टूटने लगते हैं तो ऐसे में चिन्तित होना स्वाभाविक है। आदिवासियों के सम्बन्ध में यह बात पूर्णतः लागू होती है। जिन समस्याओं का वे वर्तमान में मुकाबला कर रहे हैं, वे सारी की सारी उनके द्वारा उत्पन्न समस्याएँ नहीं हैं, आदिवासियों की अधिकांश समस्याएँ सभ्य समाज की देन हैं।

आदिवासियों का जीवन-दर्शन अनूठा है। उन्हें जो कुछ मिल जाए वे उसी में सन्तुष्ट हैं, धन की भूख उनमें कतई नहीं है। अभावग्रस्तता और कठोर संघर्ष उनके जीवन का अभिन्न अंग है। आदिवासी सदियों से निम्नतम स्तर का जीवन व्यतीत करते आ रहे हैं और सामान्यतः उन्हें अपने इस जीवन से असंतुष्टि नहीं होती; परन्तु जब उनका परिचय एवं सम्पर्क ऐसी व्यवस्थाओं से होता है जहाँ जीवन अपेक्षाकृत अधिक सुविधापूर्ण हो, तब उनमें अपने जीवन के प्रति असंतोष जागने लगता है।

भारत में आदिवासियों के निवास क्षेत्रों, भौगोलिक पर्यावरण एव संस्कृतियों में भिन्नताओं के अनुरूप ही उनकी समस्याएँ भी अलग-अलग हैं। इस दृष्टिकोण से आदिवासियों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वर्ग में वे आदिवासी आते हैं, जो अभी तक भी सभ्य समाज के सम्पर्क मे बहुत कम आ पाए हैं और जो प्रकृति के वरदान सघन जंगलों में ही बसेरा करते हैं। इनमें हिमाचल प्रदेश और अण्डमान निकोबार द्वीप समूह के आदिवासी आते हैं।

द्वितीय वर्ग में वे आदिवासी आते हैं जिनका अन्य समुदायों से सम्पर्क

हुआ है और परिणामस्वरूप धीरे-धीरे उनका आर्थिक-सामाजिक जीवन अत्यधिक प्रभावित हुआ है, मगर सांस्कृतिक जीवन को उन्होंने सभ्य समाज के प्रभावों से बचाने की कोशिश की है। इस वर्ग में बिहार के आदिवासी, उत्तर प्रदेश, उत्तर-पूर्व भारत में बसने वाले आदिवासी आते हैं। राजस्थान के आदिवासी भी इस वर्ग में आते हैं।

तीसरे वर्ग में वे आदिवासी हैं, जिनके क्षेत्र में सरकार द्वारा वृहत् सिचाई परियोजनाएँ, ताप विद्युत परियोजनाएँ, खनन पर आधारित उद्योग स्थापित किये जाने से वे अपने मूल परिवेश से उखड़ गए हैं। उन्हें अन्य स्थानों पर बसने को मजबूर किया जा रहा है। उनकी संस्कृति भी इससे बुरी तरह प्रभावित हुई है। इस वर्ग में उड़ीसा व मध्य प्रदेश के आदिवासी आते हैं।

यह सोचना नितान्त गलत होगा कि आदिवासियों की सारी समस्याएँ बाह्य सम्पर्कों के कारण ही पैदा हुई हैं। कई समस्याएँ उनके खुद के अंधविश्वास, कुरीतियों और दीन अवस्था के कारण भी उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकार आदिवासी वर्तमान में अपने द्वारा उपजायी हुई और दूसरों के द्वारा खड़ी की गई, दोनों ही प्रकार की समस्याओं से घिरे हुए हैं। राजस्थान के आदिवासियों के सन्दर्भ में उनकी समस्याओं को तीन खण्डों में विभाजित किया जा सकता है-

1. आर्थिक समस्याएँ,
2. सामाजिक समस्याएँ, तथा
3. विकास कार्यक्रमों से उत्पन्न समस्याएँ।

1. आर्थिक समस्याएँ

आदिवासियों के जीविकोपार्जन सम्बन्धी कठिनाइयाँ इसके अन्तर्गत सम्मिलित की जा सकती हैं। आदिवासियों की जीविका का मूलाधार जंगल होते हैं। राजस्थान के आदिवासी भी जंगलों पर ही आश्रित थे, प्रकृति ने उन्हें भरपूर दिया था। भले ही वह राजस्थान का दक्षिण अंचल हो अथवा हाड़ौती का क्षेत्र हो, परन्तु विभिन्न विकास परियोजनाओं की मिलीभगत से जंगल काट डाले गए और आदिवासी खुले में आ गए। वर्तमान में हम जो भी आर्थिक समस्याएँ देखते हैं उनके मूल में आदिवासियों के जीविकोपार्जन के स्रोत वनों का काट दिया जाना ही है। वर्तमान में जनजाति क्षेत्र में प्रमुख

समस्या जनसंख्या के विस्तार और शिक्षा के निम्न स्तर की है। इनके अतिरिक्त छोटे-छोटे खेत, सिंचाई सुविधाओं की कमी, पुरानी कृषि तकनीक, वन सम्पदा का विनाश और बढ़ती बेरोजगारी की समस्या भी कम गंभीर नहीं है।

(i) गरीबी और बेरोजगारी

योजना आयोग द्वारा आहार सम्बन्धी आवश्यकताओं के आधार पर गरीबी की सीमा रेखा निर्धारित की गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में एक व्यक्ति के दैनिक भोजन में 2400 कैलोरी होनी चाहिये, परन्तु राजस्थान के दक्षिणांचल के आदिवासी क्षेत्रों में इस आधार पर गरीबी का अनुमान लगा पाना संभव नहीं है। इस क्षेत्र में किए गए सर्वेक्षण में आदिवासी परिवारों द्वारा कमायी गई आमदनी को ही आधार माना गया जिससे उनकी गरीबी का अनुमान लगाया जा सकता है।

सारणी संख्या-8.1

आदिवासी परिवारों की अनुमानित वार्षिक आय

आय वर्ग	आदिवासी परिवारों की संख्या	%
1000 रु. तक	29	18.12
1001 रु. से 2000 रु. तक	35	21.88
2001 रु. से 4000 रु. तक	16	10.00
4001 रु. से 6000 रु. तक	7	4.38
6001 रु. से 8000 रु. तक	1	0.63
8001 रु. से 10000 रु. तक	3	1.87
10,000 रु. से अधिक	1	0.62
आमदनी नहीं बता सके (अनिश्चित आय)	68	42.50
कुल परिवार	**160**	**100.00**

इस सारणी में प्रदर्शित समंकों से ज्ञात होता है कि सिर्फ 11 परिवार ही ऐसे हैं जिनकी आय रु. 4000/- से रु. 10,000/- के मध्य है तथा एक परिवार की वार्षिक आय 10,000 रु. से अधिक है। अनिश्चित आय होने के कारण अनुमानित आय बताने में असमर्थ आदिवासी परिवार भी निश्चय ही गरीबी की सीमा रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं इस प्रकार कुल 160

परिवारों में से 148 परिवारों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय है अर्थात् राजस्थान के दक्षिणांचल में 92.5 प्रतिशत आदिवासी परिवार गरीबी की अवस्था में जीवनयापन कर रहे हैं। यह स्थिति और भी गंभीर हो जाती है जब आदिवासी परिवार में सदस्यों की संख्या पर दृष्टिपात करते हैं।

सारणी संख्या–8.2

आदिवासी परिवारों की सदस्य संख्या

	आदिवासी परिवार	प्रतिशत
2 से 5 सदस्य प्रति परिवार	64	40.00
6 से 10 सदस्य प्रति परिवार	90	56.25
10 से अधिक सदस्य प्रति परिवार	6	3.75
कुल परिवार	**160**	**100.00**

इस सारणी से प्रदर्शित होता है कि आदिवासी परिवारों में बहुसंख्यक परिवार ऐसे हैं जिनके सदस्यों की संख्या 6 से 10 के मध्य है। ऐसे परिवारों के लिये प्रति परिवार 4,000 रु. वार्षिक आय जो हमने यहाँ पर गरीबी की सीमा रेखा के रूप में तय की है वह बहुत सही है। यदि न्यूनतम 6 व्यक्तियों का एक परिवार भी मानें तो ऐसे में एक व्यक्ति पर मात्र 55.55 रु. मासिक व्यय किया जा रहा है जो अपर्याप्त है। इस प्रकार परिवार के दृष्टिकोण से भी यह सिद्ध हो जाता है कि बहुसंख्यक आदिवासी परिवार निर्धनता मे जीवनयापन कर रहे हैं। निर्धनता का मूल कारण यह है कि इस क्षेत्र में जंगल तो नाममात्र को रह गये हैं और संरक्षित वनों में अब आदिवासियों को कोई घुसने नहीं देता है। पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण कृषि योग्य भूमि बहुत ही कम है और जो भूमि कृषि योग्य है वह भी सिंचाई के लिए प्रकृति पर ही निर्भर है। सिर्फ बाँसवाड़ा का क्षेत्र ही ऐसा है जिसमें माही परियोजना के माध्यम से निकाली गई नहरों से सिंचाई होती है। दो अन्य परियोजनाएँ जाखम तथा सोम-कमला-अम्बा परियोजनाओं से अभी तक भी यथेष्ट सिंचाई-लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकी है। इस क्षेत्र की अधिकतर जमीन, जो कि सिंचित है, उस पर बनियों, ब्राह्मणों का अथवा साहूकारों का कब्जा है। आदिवासी के पास अक्सर वह भूमि है जो पहाड़ी की तलहटी की है, जो कंकरीली भी है और ऊबड खाबड भी है। ऐसी स्थिति में यदि वर्षा होती है तो खेती हो

जाती है, नहीं तो आदिवासी के सामने भूखों मरने की स्थिति आ जाती है।

वनों से काटकर चोरी-छिपे वह लकड़ी बेचता है लेकिन कब तक। इससे पूरे परिवार का तो पेट पालन नहीं हो सकता। ऐसे में वह या तो शहर में अस्थायी मजदूरी करता है, जहाँ पर उसे न्यूनतम मजदूरी से बहुत कम मजदूरी मिलती है या फिर घर पर बैठा रहता है। फलस्वरूप परिवार की आर्थिक स्थिति दयनीय हो जाती है। सरकार द्वारा राहत कार्यों के शुरू किये जाने के बाद प्रत्येक परिवार से एक व्यक्ति को रोजगार मिल पाता है जिससे पूरे परिवार का पेट भरना संभव नहीं होता। महिलाएँ भी इधर-उधर मजदूरी करने जाती हैं। वे महाजनों व गाँव के धनी किसानों के यहाँ मजदूरी करने जाती हैं जहाँ पर उनसे कस कर काम करवाया जाता है जबकि उस अनुपात में मजदूरी नहीं दी जाती है। इस प्रकार एक आदिवासी परिवार की आमदनी के निश्चित स्रोत नहीं हैं और वह अभावों में ही जीवन-यापन करता है।

अनेक वनवासी अवैध कटाई, कोयला बनाने, महुए की कच्ची शराब बनाने में लगे हैं। इस प्रकार विवश होकर पेट भरने के लिये उन्हें ये काम भी करने पड़ते हैं।

(ii) श्रम का शोषण

इस क्षेत्र में आदिवासियों का शोषण बहुत आम बात है और यह तब अधिक होता है जब आदिवासी को काम की जरूरत होती है; क्योंकि उनके पास खाने के लिए अन्न नहीं होता। उसे साहूकार या जो भी उसको रोजगार देने वाला होता है, के द्वारा तय की गई मजदूरी पर ही काम करना पड़ता है जो सामान्यत: 25 से 30 रुपये के मध्य होती है। इस क्षेत्र में सम्पन्न घरों में कई आदिवासी नौकर कार्यरत हैं, जिन्हें 150 रु. से 200 रु. के मध्य मासिक धनराशि दी जाती है और उनसे दिन भर काम करवाया जाता है। यही स्थिति यहाँ पर होटलों, रेस्टोरेन्टों की है, जहाँ अधिकतर आदिवासी नवयुवक काम करते हैं।

निजी क्षेत्रों में तो आदिवासियों के शोषण की मनोवृत्ति है ही, लेकिन सरकारी राहत कार्यों की आड़ में भी अधिकारी और कर्मचारी इनका शोषण करने से नहीं चूकते हैं। जहाँ भी राहत कार्य चल रहे हैं वहाँ काम करने वाले आदिवासियों की आम शिकायत है कि उन्हें पूरी मजदूरी नहीं दी

जाती। पत्थर के बाँट रखे जाते हैं। कर्मचारियों का यह कहना है कि इन्हे इनके द्वारा किये गये काम के माप के अनुपात में ही दैनिक मजदूरी दी जाती है, मगर उनसे मस्टर-रोल दिखाने की बात कहने पर वे लोग बहानेबाजी करने लगते हैं। न्यूनतम घोषित मजदूरी कहीं पर नहीं दी जा रही है। सिंचाई, सार्वजनिक निर्माण विभाग में काम माँगने वालों को खुद के औजार लाने को कहा जाता है।

इस प्रकार से आदिवासी श्रमिकों का निजी और सरकारी क्षेत्र मे शोषण एक आम बात हो गई; किन्तु उसमें राहत कार्यो को स्वीकृति देने वालों का दोष इतना नहीं, जितना कि कार्यक्रमों को क्रियान्वयन करने वाले अधिकारियों और कर्मचारियों का। यहाँ तक कि कई आदिवासी तो इनके अभ्यस्त भी हो गए हैं। परम्परागत रूप से महाजनों के शोषण के प्रति यहाँ (सहरिया, आदिम जाति क्षेत्र शाहबाद) किसी प्रकार का असंतोष दिखाई नहीं देता। परिणाम यह होता है कि उनका आर्थिक स्तर नहीं सुधर रहा है।

सरकार ने सिंचाई बाँधों के निर्माण के लिए डूब की जमीन से जंगल काटने और कर्मचारियों की बस्तियाँ बनाने के लिए वन काटने और वन उपज एकत्रित करने का काम ठेकेदारों को सौंपा। इन ठेकेदारों ने सस्ती मजदूरी पर तथा आवश्यकता पड़ने पर जबरन इनके श्रम का प्रयोग किया और इनका आर्थिक शोषण किया है। ब्रिटिश प्रशासन द्वारा लादी गई प्रशासनिक व्यवस्था भी आदिवासियों की एक प्रमुख समस्या रही है। प्रशासन तन्त्र के आधार पर पुलिस, न्यायालय और अन्य विभागों से सम्बन्धित अधिकारी और कर्मचारी वर्ग ने उसके प्रति सदैव अमानवीय दृष्टिकोण ही अपनाया और अनेक प्रकार से उसका शोषण किया।

कई बार आदिवासियों को उनके क्षेत्र में हत्या होने पर सन्देह के आरोप में गिरफ्तार कर लिया जाता है अथवा कच्ची शराब बनाने के झूठे आरोप में भी उन्हें पकड़ लिया जाता है। कई बार मारपीट के अलावा उनसे धनराशि लेकर ही उन्हें छोड़ा जाता है। यह धनराशि वे गाँव के महाजन या धनी किसान से ऊंची ब्याजदर पर, इस प्रकार आयी बला को टालने के लिए, लेने पर विवश होते हैं।

(iii) ऋणग्रस्तता

आदिवासी ने भूले से भी एक बार यदि महाजन से कर्जा ले लिया तो वह ऋण के ऐसे जाल में फँस जाता है जो कभी भी नहीं टूटता है। आदिवासी क्षेत्रों में आवागमन के साधनों के विकास के साथ ही बाह्य समुदायों का प्रवेश होता है। आदिवासियों की अशिक्षा, उनका सरल स्वभाव और दरिद्रता व्यापारियों और साहूकारों के लाभ में सहायक सिद्ध होती है। जहाँ एक ओर वे आदिवासियों की भूमि हड़पने की चेष्टा में रहते हैं, वहाँ भूमिहीन हो जाने की स्थिति में उनकी आर्थिक शिथिलता से लाभ उठाने के लिए साहूकार और व्यवसायी ऊँची दरों पर उन्हें सरलता से कर्ज दे देते हैं। कर्ज में लिया गया धन अन्ततोगत्वा उनके लिए अभिशाप बन जाता है और निरन्तर कई पीढ़ियों तक बंधक श्रमिकों के रूप में कार्य करते रहने पर भी वे ऋणमुक्त नहीं हो पाते। लेकिन अब धीरे-धीरे आदिवासी इन शिकंजों से परिचित हो गए हैं, अतः ऋण लेने से बचते हैं। वैसे तो हर आदिवासी पर छोटी रकम का कर्ज है, लेकिन विवाह, मृत्युभोज के समय उन्हें बड़ी धनराशि कर्जे मे लेनी पड़ती है। किए गए सर्वेक्षण में आदिवासी परिवारों की ऋणग्रस्तता के सम्बन्ध में स्थिति इस प्रकार से है-

सारणी संख्या-8.3

आदिवासी परिवारों में ऋणग्रस्तता

ऋण धनराशि	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1000 रु. तक	38	23.75
1001 रु. से 2000 रु. तक	18	11.25
2001 रु. से 5000 रु. तक	9	5.63
5001 रु. से 8000 रु. तक	4	2.50
उधार नहीं लिया	91	56.87
कुल	**160**	**100.000**

यह उधार महाजनों, साहूकारों से लिया गया उधार है। सरकारी ऋण के रूप में मिलने वाली धनराशि अलग है जो सरकारी सहायता कार्यक्रमों के तहत भूमि खोदने, बैल क्रय करने, स्वयं का धंधा शुरू करने के लिए उन्हें प्रदान की जाती है। इस सारणी से प्रदर्शित होता है कि कुल 160 परिवारों मे

से 69 परिवार महाजनों और साहूकारों के जाल में फँसे हुए हैं जो उनसे न्यूनतम 2 रु. सैकड़ा प्रति माह अर्थात् 24 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर से ब्याज वसूल करते हैं। इस प्रकार 43.12 प्रतिशत आदिवासी ऋणग्रस्तता के शिकार है। अपनी विकट आर्थिक स्थिति से उबरने के लिए ये लोग प्रायः महाजनो के चंगुल में पड़ जाते हैं। एक बार कर्ज में पड़ जाने के बाद उससे उबरना इनके लिए अत्यन्त कठिन हो जाता है।

सरकार इनको महाजनों के शिकंजे से छुड़ाने के लिए सामूहिक बचत बैंक खोलने का कार्य कर रही है। योजनाएँ व कानून बने हुए हैं; किन्तु क्रियान्वयन प्रभावी नहीं है। सर्वेक्षित 160 परिवारों में से सिर्फ 45 परिवारों को ही सरकारी सहायता के रूप में ऋण व अनुदान प्राप्त हुआ है अर्थात् 28 12 प्रतिशत परिवार ही सरकारी सहायता से लाभान्वित हुए हैं। जब तक सरकार उन्हें उत्पादन कार्यों व उपभोग कार्यों (जिनमें छोटे-मोटे खर्च भी शामिल हैं) के लिए ऋण नहीं देतीं, इनका महाजनों से उऋण होना मुश्किल है।

(iv) अपर्याप्त व असिंचित भूमि

आदिवासियों की आर्थिक स्थिति इसलिये भी दयनीय है; क्योंकि उनके पास खेती करने के लिए जो जमीन है वह उनके परिवार के पालनपोषण के लिये पर्याप्त नहीं है। अधिकतर जमीन निकृष्ट श्रेणी की है, कम उपजाऊ है और सबसे बड़ी समस्या है उसमें सिंचाई की। अतः एक फसल होती है और वह भी भगवान् भरोसे अर्थात् वर्षा पर निर्भरता है। सर्वेक्षण के अनुसार सर्वाधिक आदिवासी परिवार कृषि कार्य करते हैं। इस सारणी से यह स्पष्ट प्रदर्शित है :

सारणी संख्या-8.4

आदिवासी परिवारों का प्रमुख व्यवसाय

व्यवसाय	आदिवासी परिवारों की संख्या	प्रतिश
कृषि कार्य	118	73.75
मजदूरी	30	18.75
नौकरी	9	5.63
अन्य कार्य-दुकानदारी आदि	3	1.87
कुल परिवार	**160**	**100 00**

यहाँ पर नौकरी व दुकानदारी का काम करने वाला उस परिवार का मुखिया है और परिवार की आजीविका सामान्यत: उसी से चलती है। इससे स्पष्ट है कि आदिवासी कृषि कार्य करते हैं। जब कृषि भूमि की कमी है और वह अनुपजाऊ है तो उनके जीवन की कठिनाइयों की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

आदिवासी परिवारों की भूमि की जोत के सम्बन्ध में स्थिति निम्न प्रकार है। चूँकि सर्वेक्षण के दौरान आदिवासियों ने भूमि के सम्बन्ध में जानकारी ''बीघा'' के रूप में दे दी थी उसे ही यहाँ पर प्रदर्शित किया जा रहा है–

सारणी संख्या–8.5

आदिवासी परिवारों में भूमि का वितरण

त का आकार	आदिवासी परिवारों की संख्या	प्रति
5 बीघा से कम	42	26.25
5 बीघा से 10 बी्घा तक	86	53.75
11 बीघा से 15 बीघा तक	12	7.50
16 बीघा से 20 बीघा तक	4	2.50
21 बीघा से 25 बीघा तक	3.	1.88
26 बीघा से 30 बीघा तक	2	1.25
भूमिहीन परिवार	11	6.87
कुल परिवार	**160**	**100.00**

सर्वेक्षित 160 आदिवासी परिवारों में से 11 भूमिहीन हैं और 42 परिवारों के पास 5 बीघा से कम भूमि है। 86 परिवारों के पास 5 बीघा से 10 बीघा भूमि है। इस प्रकार भूमि रखने वाले 149 परिवारों में से 21 परिवार ही ऐसे हैं, जिनके पास भूमि की जोत 11 बीघा से 30 बीघा के मध्य है जिसे पर्याप्त कहा जा सकता है। 6 से 10 व्यक्तियों के परिवार में 10 बीघा भूमि अपर्याप्त है और विशेषकर उस समय, जबकि वह भूमि असिंचित हो तो और भी कठिनाई है।

कहा जा सकता है कि भूमि रखने वाले आदिवासी परिवारों मे से 26.25 प्रतिशत परिवारों के पास 5 बीघा से कम भूमि है। 53.75 प्रतिशत

परिवारों के पास 5 बीघा से 10 बीघा भूमि है। इस प्रकार 80 प्रतिशत आदिवासी परिवारों की भूमि 1 बीघा से 10 बीघा तक है।

असिंचित व सिंचित भूमि का विवरण इस प्रकार है–

सारणी संख्या–8.6

आदिवासी परिवारों में भूमि का वितरण (सिंचित व असिंचित)

त का आकार	सिंचित भूमि रखने वाले परिवार	असिंचित भू रखने वाले परिवार
5 बीघा से कम	7 (4)	35 (4)
5 बीघा से 10 बीघा तक	9	77
11 बीघा से 15 बीघा तक	2	10
16 बीघा से 20 बीघा तक	1 (1)	3 (1)
21 बीघा से 25 बीघा तक	–	3
26 बीघा से 30 बीघा तक	–	2
कुल परिवार	**19**	**130**

टिप्पणी : सिर्फ 4 ही आदिवासी परिवार ऐसे हैं जिनके पास 5 बीघा से कम सिंचित भूमि भी है और असिंचित भूमि भी है। 16 से 20 बीघा जमीन वाले एक परिवार के पास असिंचित भूमि भी है तथा सिंचित भूमि भी है।

इस प्रकार कुल 149 भूमि वाले आदिवासी परिवारों में से 5 परिवार ऐसे हैं, जिनके पास सिंचित व असिंचित दोनों ही प्रकार की भूमि है। शेष 144 परिवारों में से 130 की भूमि असिंचित है तथा सिर्फ 14 परिवार ही ऐमे हैं, जिनकी भूमि सिंचाई सुविधाओं से युक्त है। इस प्रकार 92.2 प्रतिशत आदिवासी परिवारों की भूमि असिंचित है, जो एक गंभीर स्थिति है।

(v) सूखे की समस्या

राजस्थान के दक्षिणांचल में पिछले कई वर्षों से सूखे की स्थिति रही है। 1999 के पश्चात् यह गंभीर हो गई है। ऐसे में राजस्थान जैसे पिछड़े राज्य में जहाँ सिंचाई संसाधनों की कमी है, स्थिति विकट है। किये गये सर्वेक्षण मे सभी आदिवासी परिवारों ने पानी और चारे की समस्या के प्रति अपनी चिन्ता जाहिर की कई आदिवासी परिवार तो इसी कारण अपन पशुधन का वाजिब

से भी कम दामों पर बेच चुके हैं। आदिवासी परिवारों से पूछी गई समस्याओं के उत्तर में गरीबी और बेरोजगारी की समस्या के अतिरिक्त 160 परिवारों में से 64 परिवारों ने इस समस्या की ओर ध्यान दिलाया है।

सूखे के कारण पशु तो दम तोड़ ही रहे हैं; क्योंकि उनके लिए पानी और चारे का इंतजाम करने में आदिवासी और अन्य साधारण जन असमर्थ हैं। आदिवासी के समक्ष खुद के पेट-पालन की समस्या आ खड़ी है। वास्तविकता यह है कि आदिवासी भूखे पेट कृषकाय हो जाता है तो उसकी विभिन्न बीमारियों से प्रतिरोध की क्षमता चुक जाती है। फलस्वरूप बीमारी उस पर मौत के रूप में आती है। वह बीमारी से मरा और विडम्बना यह है कि बीमारी से मरने की घोषणा करने के बाद सरकार न केवल स्वयं को उत्तरदायित्व से मुक्त मान लेती है; बल्कि यह अहसास भी पाल लेती है कि उसने भूख से किसी को नहीं मरने दिया।

आदिवासियों को अवैध कार्य करने को बाध्य इसलिए भी होना पड़ता है कि एक परिवार से एक ही आदमी को रोजगार दिया जाता है और उसका भी चुकारा (भुगतान) समय पर नहीं होता है।

इस प्रकार सूखे की स्थिति और प्रशासन द्वारा उससे निपटने का प्रयास और अकाल को विकास में बदलने का प्रयास तो है पर इसमें और सक्रियता की जरूरत है। अवलोकन के दौरान आदिवासियों से सम्पर्क करने पर उनकी अकर्मण्यता का भी आभास हुआ। अब आदिवासी इस बात का इंतजार करते हैं कि सरकार कब इस क्षेत्र को अकालग्रस्त घोषित करे और कब उन्हें सरकारी राहत कार्यों में मजदूरी मिले; क्योंकि सरकारी कार्यों में मजदूरी भी निजी मजदूरी की तुलना में अच्छी होती है और काम भी कम करना पड़ता है। यह बात एक जगह और प्रमाणित हो गई। गिरवर ग्राम (आबू रोड़ पंचायत समिति, जिला सिरोही) का सर्वेक्षण करते देखा कि आदिवासी वन विभाग के द्वारा चलाए जाने वाले काम में मजदूरी करने को इच्छुक थे और पास ही ठेकेदार द्वारा सड़क निर्माण कार्य में मजदूरी करने मे अपेक्षा घर बैठना पसंद करते थे। इस प्रकार सड़क निर्माण में मजदूरी उसी परिवार के सदस्य कर रहे थे, जिसके किसी सदस्य को वन विभाग के कार्य में मजदूरी नहीं मिली थी।

(2) सामाजिक समस्याएँ

(i) अशिक्षा

अधेड़ उम्र के या वृद्ध आदिवासियों का यह कहना है कि उनके जमाने में तो गांव में या आसपास कोई विद्यालय नहीं था इसलिए नहीं पढ़ पाये लेकिन अब वे अपने बच्चों की शिक्षा जरूर चाहते हैं। उन्हें दुःख होता है, जब वे देखते हैं कि उनके बच्चे भी नहीं पढ़ पाए; क्योंकि सरकार ने धीरे-धीरे सभी गाँवों में विद्यालय खोल दिए। आश्रम विद्यालय भी खोले किन्तु पढ़ने हेतु प्रेरित नहीं कर पा रहे। आदिवासी बालक-बालिकाओं को विद्यालय में पढ़ने हेतु प्रेरित नहीं कर पा रहे। जिस आदिवासी के घर में खाने की ही समस्या हो वह अपने बच्चे की शिक्षा पर खर्च नहीं कर पाता वह मन मारकर चुप बैठ जाता है। फिर बच्चे को पढ़ने जाने से उसके घर में एक कमाने वाले सदस्य में कमी हो जाती है।

सरकार ने माध्यमिक स्तर व उसके बाद छात्रावासों तथा छात्रवृत्ति की शुरूआत की, पर प्राथमिक शिक्षा के लिए सक्रिय प्रयास नहीं किया। आश्रम विद्यालय छात्रावास के रूप में जरूर खोले गए हैं जहाँ रहने वाले आदिवासी छात्रों को कपड़ा, खाना, पुस्तकें मुफ्त मिलती हैं पर आदिवासी बच्चों की संख्या को देखते हुए वे अपर्याप्त सिद्ध हुए हैं। जहाँ तक जरूरी शिक्षा का प्रश्न है पहली बात तो आदिवासी बच्चे विद्यालय तक पहुँच ही नहीं पाते हैं और जितने बच्चे प्राथमिक कक्षाओं में होते हैं उनमें से कोई 1 प्रतिशत ही कॉलेज शिक्षा का सफर तय कर पाते हैं।

जब इस क्षेत्र के आदिवासी शिक्षा जैसी प्राथमिक जरूरत ही पूरी नही कर पाते तो फिर दक्षिणांचल के लड़कों का भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में पहुँचना कपोल-कल्पना है। दूसरी ओर सवाईमाधोपुर जिले में मीणा आदिवासियों में से अधिकतर युवा सरकारी नौकरियों में हैं और प्रशासनिक पदों पर हैं; क्योंकि उनमें शिक्षा के प्रति जागरूकता के साथ धन खर्च करने का सामर्थ्य है।

दक्षिणांचल के भील अलग-अलग पहाड़ियों पर "टपरी" बनाकर रहते हैं। यदि विद्यालय बना भी दिया गया है तो 6-7 वर्ष के बालक से यह उम्मीद करना बेकार है कि व डेढ़-दो किलोमीटर पैदल चल कर विद्यालय जायेगा। थकावट के कारण बच्चों की पढ़ाई के प्रति अरुचि हो जाती है।

फिर इस क्षेत्र के आदिवासी परिवारों में बचपन से ही बच्चे को काम में लगा दिया जाता है। कुछ-न-कुछ कमाने की इस बाध्यता से छोटी उम्र पढ़ाई को तिलांजलि दे बैठती है। जब तक सरकार आदिवासियों के लिए रोटी की समस्या का समाधान नहीं कर देती ''शिक्षा'' का अभाव बना रहेगा। फिर जब शिक्षा विधिवत् नहीं हो पाती है, तो रोजगार की समस्या पैदा होती है। अशिक्षित आदिवासी को कहीं पर भी स्थायी रोजगार नहीं मिल पाता।

(ii) अंधविश्वास, कुरीतियाँ व कुप्रवृतियाँ

आदिवासियों में अंधविश्वास भी बहुत है। बीमार होने का कारण भूत-प्रेत मानना, फिर देवी-देवताओं की आराधना करना और जब बीमारी असाध्य हो जाए तब ही रोगी को चिकित्सालय में दिखाया जाता है। यही कारण है कि 21वीं शताब्दी में भी आदिवासी ग्रामों में एक व्यक्ति झाड़-फूँक करके, मंत्र करके इलाज करने वाला होता है जिसे भोपा अथवा ओझा कहा जाता है। आदिवासी इस व्यक्ति से बहुत डरते हैं और उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। इसके अतिरिक्त मृत्युभोज की परम्परा भी सभी आदिवासियों में है। कई बार इसके लिए आदिवासी सामूहिक योगदान करते हैं। सामूहिक योगदान होने पर आदिवासी परिवार को कर्ज लेकर भी जाति के लोगों को मृत्युभोज देना पड़ता है। सामान्यत: ये लोग मृत्युभोज पर 1000 रु. से 3000 रु तक खर्च कर देते हैं।

गरीबी में भी ये विवाह पर भी काफी खर्च करते हैं और यह खर्च 2000 रु. से लेकर 5000 रु. तक हो जाता है। इनका काफी कुछ खर्च विवाह के दौरान शराब और लड़की के पिता को रुपए (क्षतिपूर्ति रूप में) देने पर होता है। सभी आदिवासी परिवार के लोगों में शराब का शौक देखा गया। जब भी इन्हें मजदूरी मिलती है ये देशी शराब या आदिवासी क्षेत्रों में महुए से खींची गई शराब पीते हैं। आदिवासी ग्रामों में अवैध शराब की भट्टियाँ बड़े गुप्त रूप से चलायी जाती हैं। अधिकतर ये बस्ती से दूर होती हैं। हाथ में पैसा आते ही आदिवासी के पैरों में पंख लग जाते हैं और वह दूसरे ही क्षण शराब के ठेके पर होता है। शराब पीकर आता है और फिर पत्नी से झगड़ा करता है। फलस्वरूप कई आदिवासी परिवारों में शराब गृह-कलह का प्रमुख कारण है।

जहाँ आदिवासी शराब का अभ्यस्त नहीं होता वहाँ उसे किस प्रकार

उसका आदी बना दिया जाता है, इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है। शाहबाद (जिला कोटा) की सहरिया आदिम जाति के बारे में भवानी शंकर कुसुम लिखते हैं–"आमतौर पर सहरिया शराब नहीं पीता। जिन जमींदारों के यहाँ ये काम करते हैं, वे अधिक काम लेने के लिए इनको शराब पिलाते रहते हैं। धान की रोपाई के दिनों में जी-तोड़ काम लेने की गरज से यह तरीका खूब इस्तेमाल होता है। सीताबाड़ी की नदी के किनारे-किनारे बीसियों जगह अवैध शराब निकलती है। निकालता है सहरिया और निकलवाते हैं जमींदार, व अन्य प्रभावशाली व्यक्ति।"

उदयपुर स्कूल ऑफ सोशल वर्क के द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार "जनजाति उपयोजना क्षेत्र में शराब पीने वाले पुरुषों का प्रतिशत 55.04 पाया गया। उपयोजना क्षेत्र में अवैध शराब का उपभोग वैध शराब से पाँच गुना अधिक है।" इस प्रकार ये तो वे लोग हैं जो रोजाना शराब पीते हैं। कोई भी आदिवासी परिवार इस समस्या से पूर्णतः अछूता नहीं है। जहाँ हाथ में पैसा आया और जी मचल ही जाता है। अब सट्टे का काला जादू आदिवासियों के सिर पर चढ़कर बोल रहा है। यह कुप्रवृत्ति चित्तौड़गढ़ जिले के प्रतापगढ़ कस्बे में ज्यादा ही फैल रही है। आदिवासी जंगल में इमारती या जलाऊ लकड़ी, कोयला लाकर बेचते हैं। उनका पैसा फिर शराब के ठेकेदार के पास जाता है या सट्टे के दलाल की जेब में। घर तक ये दलाल और ठेकेदार उसका पैसा नहीं पहुँचने देते। इस तरह आदिवासियों को बुरी आदतों का शिकार बना दिया जाता है। इस प्रकार इन कुप्रवृत्तियों के कारण भी आदिवासी गरीब ही रहता है। कई बार तो उसके परिवार को फाकाकशी करनी पड़ती है।

(iii) उत्सुकतावश अंधानुकरण

आदिवासियों में धीरे-धीरे शहरी लोगों के क्रियाकलापों की गतिविधियों की नकल की प्रवृत्ति बढ़ी है। अपनी परम्परागत पोशाक को पहनना छोड़कर औरतें साड़ी-ब्लाउज भी पहनने लगी हैं। आदमी सस्ते पोलियस्टर की बनी पेंट-कमीज पहनने लगा है। सफाई का इतना ध्यान न रख पाने के कारण वे इन कपड़ों को बिना धोए 15-15 दिन तक पहने रहते है, फलस्वरूप मैल के कारण चर्म रोग भी होता है। चमड़े की जूतियाँ पहनना छोडकर अब प्लास्टिक के जूते चप्पल पहनने लगे हैं जिनसे वे

अधिक दूरी तय नहीं कर पाते। यह प्रवृत्ति उन लोगों में अधिक होती है, जो रोजाना किसी मजदूरी या काम के सिलसिले में शहर या निकटवर्ती कस्बे मे आते-जाते हैं। फलस्वरूप इन चीजों पर उनका अपव्यय ही होता है। आदिवासी क्षेत्रों के बाजार उन तमाम वस्तुओं के क्रय-विक्रय के केन्द्र बने हुए हैं, जिनकी आज तक उनके जीवन में कोई आवश्यकता नहीं थी।

अब भी आदिवासी क्षेत्र में मेले लगते हैं, जैसे-बेणेश्वर मेला (आसपुर) तथा घोटिया आम्बा (बाँसवाड़ा)। ऐसे मेलों में से व्यापारी स्त्रियों के बनाव-सिंगार की आकर्षक चीजें बेचने के लिए लाते हैं, जो नकली होती हैं अथवा घटिया रसायनों से बनी होती हैं। वे आदिवासियों को ये चीजें महँगे दामों पर बेचते हैं। इस प्रकार नई चीजों के प्रति उत्सुकता जगाकर उनको ये चीजे भेड़ दी जाती हैं। इन सस्ते सौन्दर्य-प्रसाधनों से उनको त्वचा सम्बन्धी कई बीमारियाँ हो जाती हैं। इस प्रकार उनका नैसर्गिक सौन्दर्य नष्ट होने लगता है और वे शहरी लोगों की कार्बन प्रतिलिपि से लगते हैं।

(iv) भाषा की समस्या

अनेक शोधकर्त्ताओं का यह मानना रहा है कि आदिवासियों की एक पृथक् भाषा होती है और सामान्यत: वे शहरी लोगों की भाषा-हिन्दी-नहीं समझते हैं। इसी कारण उस क्षेत्र में आए नए अधिकारियों को इनसे सम्पर्क में कठिनाई होती है लेकिन राजस्थान के दक्षिणांचल में सम्पर्क भाषा की समस्या नहीं है। अत: यह कहना कि "सभी आदिवासियों की अपनी एक भाषा होती है जो कि सम्पर्क में आए सभ्य समुदायों की भाषाओं से भिन्न है।" इस क्षेत्र के बारे में उचित सिद्ध नहीं होता। इस क्षेत्र में आदिवासियों द्वारा बागड़ी बोली जाती है जो शहर और कस्बों में सभ्य समाज द्वारा भी बोली जाती है। नये आए हुए अधिकारी और कर्मचारी भी इस भाषा को थोड़ा प्रयत्न करने पर समझ लेते हैं। फिर दूसरी बात यह भी है कि आदिवासी भी टूटी-फूटी हिन्दी समझते हैं। इसलिए सम्पर्क की कोई समस्या नहीं है।

इस सन्दर्भ में **ईश्वर लाल पं. वैश्य** कहते हैं, "बागड़ी के इस क्षेत्र में भी पिछले पचास-साठ वर्षों से शिक्षा का माध्यम हिन्दी रहा है। आदिवासियों के लिए हिन्दी अन्य भाषा थी लेकिन शिक्षक वर्ग हिन्दी भाषी था। अत: आदिवासी बालकों को पढ़ाने के लिए वे भीली बोलने का प्रयत्न करते

लेकिन उनकी भाषा हिन्दी अथवा मूल मेवाड़ी या गुजराती से प्रभावित भीली अर्थात् बागड़ी ही होती। इस प्रकार नई पीढ़ी में क्रमशः बागड़ी भीली का स्थान लेती गई। सम्पर्कों के फलस्वरूप आदिवासी पंच, सरपंच आदि नेता बनने के इच्छुक व्यक्ति हिन्दी बोलने में गौरव अनुभव करते और वैसा ही प्रयत्न करते। लेकिन परिणाम में वे जो कुछ बोलते वह भीली मिश्रित हिन्दी अर्थात् बागड़ी ही होती है।'' इस प्रकार इस आदिवासी क्षेत्र में भाषा समझने की कोई समस्या नहीं है।

(v) सहज प्रवृत्तियों पर प्रतिबंध

आदिवासी सदियों से प्रकृति पुत्र रहे हैं और जीवन को उन्होंने सहज ढंग से, जैसा उचित समझा वैसा लिया है। साथ ही अपने द्वारा बनाए नैतिक मूल्यों का भी उन्होंने क्षय नहीं होने दिया है लेकिन शहरी सभ्यता से सतत् सम्पर्क के फलस्वरूप और विशेषकर हिन्दू संस्कृति से सम्पर्क के कारण उनके समुदाय में कई कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई हैं।

आदिवासी परिवारों में लड़की की शादी जवान होने के पश्चात् ही की जाती है लेकिन हिन्दुओं में बाल-विवाह की मनोवृत्ति को देखते हुए आदिवासियों में भी बाल विवाह होने लगे हैं। आदिवासियों में स्त्रियों का पुरुषों के साथ बराबरी के स्तर पर आर्थिक क्रियाओं में योगदान देना, उनके साथ सांस्कृतिक अवसरों पर स्वतंत्रतापूर्वक नृत्य व गायन आदि में भाग लेना एक सामान्य स्थिति समझा जाता है। परन्तु हिन्दू संस्कृति में स्त्रियों की यह स्वतंत्रता हेय दृष्टि से देखी जाती है। परिणामस्वरूप सम्पर्कों के पश्चात् आदिवासियों में स्त्रियों का जीवन अब नियंत्रित होने लगा और अब आदिवासी पुरुषों का अलग नृत्य होता है, स्त्रियों का अलग नृत्य होता है। बहुत कम अवसरों पर वे एक दूसरे के हाथों में हाथ डाले नाचते हैं। इन निषेधों ने आदिवासियों में स्त्रियों के जीवन को दुःखमय बना दिया और पुरुषों की तुलना में उनकी सामाजिक स्थिति में गिरावट आई है।

इसी तरह आदिवासियों में विवाह की अवधारणा यौन-सम्बन्धों की नैतिकता से मुक्त होती है। इसी कारण विवाह पूर्व व पश्चात् वैवाहिक सबंधों के अतिरिक्त यौन-सम्पर्कों में स्वतंत्रता होती है, परन्तु यौन-सम्पर्कों सबंधी स्वतंत्रता हिन्दू नैतिक आदर्शों का शिकार हो जाती है और विवाह की अवधारणा में ही मूल परिवर्तन होने लगता है यह उनकी अपनी संस्कृति के

प्रतिकूल होता है। इन्हीं कारणों से भी कई आदिवासी परिवारों में अब ''अवैध सम्बंध'' करार दिए जाने पर आपसी शत्रुता बढ़ी है।

आदिवासी स्त्रियाँ मजदूरी पर सामान्यत: कस्बों और शहरों में मकान निर्माण या अन्य धंधों पर काम करती हैं। ऐसे में उनकी विवशता का फायदा उठाकर शहरी लोग उनका देहिक शोषण करते हैं। इस प्रकार की बात प्रचारित होने पर उस स्त्री को आदिवासी समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार के सम्पर्कों के फलस्वरूप आदिवासी परिवारों के जीवन मे सहजता नहीं रह जाती। आदिवासियों का हिन्दुओं से सम्पर्क वास्तव में एक सभ्य व सौम्य जीवन व्यतीत करने की दिशा में एक कदम था पर उसके अपेक्षित परिणाम नहीं रहे। वर्तमान में स्थिति यह है कि तथाकथित सभ्य समाज के सम्पर्कों से रहित आदिवासियों में अपनी परम्पराओं व संस्कृति के प्रति हीनता की भावना नहीं आ पाती और वे अपने को अधिक स्वतंत्र महसूस करते हैं।''

3. विकास कार्यक्रमों से उत्पन्न समस्याएँ

जनजाति क्षेत्र में प्रमुख समस्या तीव्रगति से जनसंख्या के विस्तार और शिक्षा के निम्न स्तर की है। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे खेत, सिंचाई सुविधाओं की कमी, पुरानी कृषि तकनीक, वन सम्पदा का विनाश तथा बढ़ती हुई बेरोजगारी भी आदिवासी अर्थव्यवस्था की जड़ें हिला रही हैं।

देश के अन्य भागों की तरह राजस्थान के दक्षिणांचल में भी आदिवासी क्षेत्र में आदिवासियों को अकाल की स्थिति में राहत प्रदान करने और रोजगार देने के लिए सरकारी कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, जिनमें एनीकट निर्माण, कुआ खोदना, मेड़बंदी, मिट्टी खोदकर तालाब की पाल पर डालना, संरक्षित वनों हेतु पत्थर की दीवार (कौट) को चुनना प्रमुख है। इन कार्यक्रमों से लोगों को रोजगार तो मिल रहा है पर इनका भुगतान काम हो जाने के एक डेढ़ महीने बाद शुरू किया जाता है। ऐसे में यह समस्या है कि इतने दिन आदिवासी क्या खाकर काम करे ऐसे में उनकी सहायता के लिए आगे आता है—साहूकार। वह आदिवासी की रोजमर्रा की जरूरत के लिए गेहूँ व अन्य चीजें उधार देता रहता है, बाद में वह ब्याज सहित वसूलेगा। इस प्रकार सरकार का उद्देश्य जहाँ पर आदिवासी को महाजन के जाल से छुडाना होना चाहिए, वही उसे महाजन के पंजों में फंसा रही है।

सरकार के द्वारा ये राहत कार्य अस्थाई रूप से खोले जाते हैं अर्थात् ज्यो ही वर्षा होगी ये कार्य बंद कर दिए जायेंगे। ऐसे में आदिवासी भगवान् से यही प्रार्थना करता है कि उसके क्षेत्र में वर्षा न हो और सरकार उसके क्षेत्र को ''अकालग्रस्त'' घोषित कर दे ताकि उसे आसानी से सरकारी राहत कार्यों में रोजगार मिल जाए। स्थायी कृषि करना आदिवासियों की मूल प्रवृत्ति मे कभी शामिल नहीं रहा है। कृषि तो उन्हें मजबूरी में करनी पड़ती है, क्योंकि अब सब जंगल काट डाले गए हैं और उनका मुख्य काम धंधा वन उपजें इकट्ठी करना और बेचना बंद हो गया है। इस कार्य को जरूर वे रुचि से करते हैं। फिर सरकार द्वारा उनको जो जमीन आवंटित की गई व भी पथरीली और सिंचाई सुविधा से रहित है। हकीकत यह है कि इस पहाड़ी क्षेत्र में उपजाऊ भूमि बहुत ही कम है। इस प्रकार आदिवासी अथक् परिश्रम करके भी बहुत थोड़ी फसल उत्पादित कर पाते हैं। अब आदिवासी इस हाड़तोड़ मेहनत से बचना चाहते हैं और चूँकि सरकारी कार्यों पर उन्हें मजदूरी भी ज्यादा मिलती है और काम भी अपेक्षाकृत कम करना पड़ता है। अत: वे चाहते हैं कि उनके क्षेत्र में सरकार स्थायी रूप से राहत कार्य चलाती रहे। इस प्रकार राहत कार्यक्रम उन्हें धीरे-धीरे सरकार पर निर्भर कर रहे हैं, जो कि एक चिंताजनक स्थिति है।

राजस्थान के इस क्षेत्र में अब सघन वन बहुत कम रह गए हैं। सरकार उनमें आदिवासियों को घुसने नहीं देती। उदाहरणार्थ, कथोड़ी जनजाति उदयपुर जिले की झाड़ोल फलासिया तहसील के डैया, अम्बासा गांवों में रहती है। इसका अभी भी मूल धंधा जंगल से विभिन्न जड़ी-बूटियाँ एकत्र करता है। इस एकत्रण के काम में ये विशेषज्ञ होते हैं और 2-2 महीनों तक जंगल में ही डेरा डाले रहते हैं। इन लोगों को कभी स्थायी घर की जरूरत ही महसूस नहीं हुई। यहाँ तक की सरकार ने इनके लिए घर भी बनाए पर ये लोग उनमें भी नहीं रहे। ये लोग वनों से लकड़ी नहीं काटते, बस टेमरू, धोली मूसली, महुआ, लाख, गोंद इकट्ठा करते हैं। अब सरकार ने इनके क्षेत्र के वनों को पूर्ण संरक्षित वन घोषित कर दिया तो इन आदिवासियों के समक्ष जीवन-यापन की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई है। खेती का काम करने के ये अभ्यस्त कतई नहीं हैं और सरकार है कि इन्हें जबरदस्ती जमीन आवटित किए जा रही है।

सहरिया आदिमजाति कोटा जिले की शाहबाद तहसील में बसी हुई

है। इस क्षेत्र में भी थोड़े से सघन वन बचे हुए हैं। अब उनकी स्थिति यह है कि वनों की अवैध कटाई ठेकेदारों और अधिकारियों के माध्यम से होती है। बड़े पैमाने पर हो रहे अवैध व्यापार के लिए लकड़ी के ट्रक आसानी से चौकियों के पार हो जाते हैं मगर प्रत्येक आदिवासी को एक गट्ठर पार करने के लिए 5 रु. देना पड़ता है। दूसरी ओर यह देखिए कि सहरिया आदिवासी दिन भर जंगल की खाक छानकर गोंद, शहद, चिरोंजी इकट्ठी करते हैं। फिर उन्हें अपना काम-काज करवाने के लिए सरकारी अमले को वन उपज भेंट करनी पड़ती है। आदिवासी रिश्वत के रूप में या सरकारी कर्मचारियों को खुश करने के लिए गोंद, शहद, चिरोंजी दाना तथा कई बार मुर्गा या बकरा भी भेंट करते हैं। इस प्रकार के शोषण की समस्या से कहीं निजात नहीं है।

जीवन की दो भिन्न और विपरीत अर्थव्यवस्थाओं के बीच आदिवासी सहज ही में एक विशिष्ट तनावपूर्ण जीवन के शिकार हो जाते हैं। बांसवाडा क्षेत्र जो अपेक्षाकृत अधिक विकसित है, कारण, वहाँ पर माही परियोजना के तहत सिंचाई और विद्युत् उत्पादन का कार्य चल रहा है। जब माही परियोजना की शुरुआत हुई थी तो देश के विभिन्न भागों से लोग आकर यहाँ बसे। आदिवासी क्षेत्र में उन्हें घरेलू कार्य करने के लिए महिला पुरुष आसानी से उपलब्ध हुए। फलस्वरूप आदिवासी महिलायें और कुंआरी आदिवासी युवतियाँ भी उनकी कामवासना का शिकार बनकर गर्भवती हुई। दूसरी ओर सरकारी कार्यों में महिला आदिवासी मजदूरों को देह शोषण होता रहा है।

कई बार जंगलों में चोरी छिपे लकड़ियाँ एकत्र करने जाने वाली आदिवासी महिलाएँ वन रक्षकों के बलात्कार का शिकार हुई हैं। इन घटनाओ की पुलिस में बहुत कम रिपोर्ट की जाती है। घंटाली (बांसवाड़ा) की सामाजिक कार्यकर्ता श्री लता स्वामीनाथ कहती है "जब मैं यहाँ आई थी, आदिवासी स्त्रियों के साथ बलात्कार, भीलों की पिटाई, अधिकारियों द्वारा भीलों का मुर्गा, बकरा जबरन उठा ले जाना, यहाँ की जिन्दगी का एक हिस्सा था। आज उसमें कोलाहल है। इस प्रकार आदिवासी स्त्रियाँ इस क्षेत्र में कार्य कर रहे अधिकारियों कर्मचारियों की वासना का शिकार भी बन जाती हैं। कई बार रसूखदार आदमी भी इन कमजोर स्त्रियों को मजदूरी का लालच देकर जबरदस्ती करता है। वास्तव में, इनकी निर्धनता ही इनका सबसे बडा दुर्भाग्य है, जिसके कारण इनके साथ अक्सर ऐसी घटनाएँ घटती हैं।

□□□

नवम् अध्याय

आदिवासी विकास हेतु प्रारूप

1. आदिवासियों के सम्बन्ध में आदिम तटस्थता की नीति

आदिवासी समस्याओं का प्रारम्भ प्राय: तब होता है, जबकि आदिवासी बाह्य सम्पर्क में आते हैं और सभ्य समाज धीरे-धीरे उनका शोषण शुरू कर देता है और वे भी लम्बे सम्पर्क के कारण सभ्य समाज के दुर्गुणों को सीखने लगते हैं। इसका एक समाधान यह हो सकता है कि सरकार उन्हें ऐसा सरक्षण प्रदान करे ताकि वे सम्पर्क विहीन विलगित जीवन व्यतीत कर सकें। इस तर्क का समर्थन विद्वानों ने किया है। मोन्टेग्ने के अनुसार-"पहाड़ियों और जंगलों के 'स्वच्छ और हानि रहित विश्व' के आदिवासी सभ्य आदमी की तुलना में सहज रूप से नेक थे।" अपने निबंध "ऑफ केनीबाल्स" में वह घोषित करता है कि भारतीय इस अर्थ में जंगली हैं जैसे जंगली फूल जंगली होते हैं; परन्तु उनमें जिन्दादिली और कर्मठता सच्चे और सर्वाधिक लाभदायक गुण और प्राकृतिक सम्पत्ति हैं। सभ्यता ने इन गुणों को दूषित कर दिया है।" इस प्रकार वे उतने ही निर्दोष और सुन्दर होंगे जैसे कि धार्मिक कथाओं में वर्णित आदम और हव्वा जिन्हें दुनिया के प्रथम आदिवासी कह सकते हैं। इस प्रकार से वह अपने पुरातन मूल्यों को भी सहेज कर रख सकेंगे और नवीन प्रदूषित हवा से भी बच सकेंगे। उनकी अपनी दुनिया, छोटी सी, जिसमें उनकी मान्यताएँ, उनके रीति-रिवाज और बच्चों को प्रवीण बनाने के अपने तरीके और जीवन को जीने का सहज ढंग होगा तो वे उसमें उठने वाली विभिन्न समस्याओं को भी खुद ही हल करने योग्य हो सकेंगे।

बोएस. लव जाय तथा मार्गरेट फिट्जेराल्ड ने आदिमवाद का गहन अध्ययन किया और उनका कहना है कि आधुनिक 'असभ्य समाज' जो कि जीवन के आधारभूत मूल्यों से निहित होता है, हर तरह से सभ्य जनसंख्या से बेहतर है। इस प्रकार जीवन में शान्ति और प्रसन्नता तब ही प्राप्त हो सकती है जब व्यक्ति सतुष्ट हो और वह सतुष्ट तभी होता है जब वह विभिन्न

समस्याओं से मुक्त हो। यह मुक्त वातावरण अब प्रकृति की गोद में ही उपलब्ध है और आदिवासी वहाँ प्रकृति के सहेजे हुए फूल हैं।

आर. डब्ल्यू. फ्रेन्त्ज के अनुसार–"अच्छी और महान् जिन्दगी कस्बों और शहरों में रहना नहीं है; बल्कि अमरीकी जंगलों के एकान्त अथवा दक्षिणी समुद्री द्वीपों में निवास करना है।" इस प्रकार से फ्रेन्त्ज ने भी अप्रत्यक्ष रूप से उस आदिवासी जीवन को जो बाह्य हस्तक्षेप से रहित हो, श्रेष्ठ जीवन माना है।

कैप्टन कुक जो विश्व का महान् खोजी यात्री रहा है, अपने अनुभवों को व्यक्त करते हुए लिखता है कि–"आस्ट्रेलिया के जंगली सचमुच में पृथ्वी पर सबसे अभागे व्यक्ति नजर आते हैं पर वास्तविकता में वे हम यूरोपियनों से कहीं अधिक सुखी हैं। क्रिस्टोफर लॉयड ने डिंडेरोट के विचारों को सार रूप में कहा है जिनका 'जंगलियों' पर लेख इतना क्रांतिकारी था कि उसे फ्रेंच विश्वकोश के पेरिस वाले संस्करण से निकालना पड़ा। उसने अपने देशवासियों पर आरोप लगाया कि वे इस शांत अदनवाटिका (आदिवासियों की दुनियाँ) में एक 'नाग' का काम कर रहे हैं। एक द्वीपवासी ने उससे प्रार्थना की कि वह दूर चला जाए और इस द्वीप के वासियों को शांति में छोड़ दे अन्यथा उसके जैसे अन्य आदमी एक हाथ में क्रास (सलीब) चिह्न तथा दूसरे हाथ में बन्दूक लिए उनको गुलाम बनाने तथा उनके दिमागों में जहर भरने के लिए लौटेंगे।" कितनी भयंकर किन्तु सच्ची बात कही थी उस द्वीप के आदिवासी ने। हो सकता है उस समय इस बात की इतनी महत्ता नहीं हो परन्तु वर्तमान में तो इस प्रकार के हस्तक्षेप के दुष्प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से हमें देखने को मिल रहे हैं।

"वारियर ऐल्विन ने ब्रिटिश शासन काल में बाह्य संपर्कों के प्रभावों से पीड़ित बैगा आदिम जाति के कष्टों एवं उनकी समस्याओं की चर्चा करते हुए तत्कालीन प्रशासन से यह संस्तुति की थी कि कुछ समय तक उनके क्षेत्र को संपर्क विहीन बनाया जाये तथा उसे 'आरक्षित राष्ट्रीय पार्क' घोषित किया जाए।" उपर्युक्त तर्कों को ध्यान में रखकर भारतीय सन्दर्भ में भी ऐसी ही स्थिति बनायी जा सकती है: क्योंकि देश के आदिवासी सदियों से निर्जन

क्षेत्रों में निवास करते रहे हैं। अंग्रेज सरकार ने अहस्तक्षेप की नीति अपनायी थी कि सभी आदिवासियों को अलग रहने दिया जाए, आंशिक रूप से इस कारण कि प्रशासन सम्बन्धी समस्याओं से मुक्ति पायी जा सके– विशेषकर सीमा क्षेत्र के दुरूह वनों में प्रशासन का कार्य अत्यंत कठिन था। उन्होंने इस नीति को इसलिए भी अपनाया कि बाह्य सम्पर्क के कारण कहीं आदिवासियों में राजनैतिक चेतना जागृत न हो जाए।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि जब उन्हें अलग-थलग छोड़ दिया जाएगा तो वे अभाव और दरिद्रता में जीवनयापन करेंगे, नग्न रहेंगे पर ये स्थितियाँ उनके लिए असाध्य नहीं होतीं; बल्कि स्वाभाविक जीवन होता है और वे उसमें सन्तुष्ट रहना जानते हैं। भौतिक समृद्धि उनके लिए कभी आकर्षण का केन्द्र नहीं रही। अतः उन्हें भौतिक रूप से पिछड़ा नहीं कहा जा सकता और सांस्कृतिक रूप से तो वे कतई पिछड़े नहीं हैं; क्योंकि उनकी अपनी अलग निराली संस्कृति है। दुनियाँ में अलग-थलग रहने के कारण उन पर किसी महाजन का कोई कर्जा तो नहीं चढ़ा होगा। कोई उन्हें बेवजह परेशान तो नहीं करेगा। कोई उन्हें पचास रुपये की सहायता देकर पाँच सौ रुपये के कागज पर तो उनसे अँगूठा नहीं लगवाएगा।

उनके सांस्कृतिक जीवन को छिन्न-भिन्न करके और आधुनिकीकरण के नाम पर उन पर अपनी मान्यताओं को लादना पूर्णतः अनैतिक है। परिवर्तन के लिए उन्हें बाध्य करना अनुचित ही नहीं अमानवीय भी है। जिसमें नैसर्गिकता है वही सत्य है। उसे अपनी तरह से ही फलने-फूलने देना चाहिए। अगर हम उसमें पानी न डाल सकें तो उस पौधे की ओर हमें गर्म धुआँ भी नहीं छोड़ना चाहिए, जिससे वह मुरझा जाए। वर्तमान सभ्यता गर्म धुआँ ही है, जो उनको झुलसाए जा रहा है।

''बेहतर यही है कि आदिवासियों को उनका सहज जीवन उन्हें जीने दिया जाए। उनके दैनिक जीवन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाए, उनके क्षेत्र में प्रकृति के वरदान से उपलब्ध सुविधाओं को शहरियों या सभ्य लोगों के स्वार्थ के लिए नोचा-खसोटा नहीं जाए।'' यही इस मत के समर्थको के विचार हैं

हम कुक और हाकवर्थ से, बोसवेल, रूसो, डिंडेरोट से काफी आगे बढ़ चुके हैं। उनके अनुसार आदिम मानव गिरा नहीं था। वह आधुनिक मानव से कई गुना बेहतर था। हमें उससे कई बातें सीखनी थीं और सबसे अच्छी चीज जो उसके लिए हम कर सकते थे वह यह थी कि हम उसे 'अकेला' छोड़ देते।

2. आदिवासियों के सम्बन्ध में 'विलीनीकरण' की नीति

आदिवासियों के सम्बन्ध में विलीनीकरण की नीति स्वतंत्रता के पश्चात् अत्यधिक लोकप्रिय हुई। क्रिश्चियन मिशनरी और हिन्दू समाज सुधारक दोनों ही, अपने-अपने अलग-अलग तरीकों से इन आदिवासियों को सभ्य देखना चाहते थे, ताकि उनके 'निम्न' रीति-रिवाज और विचार समाप्त हो जावें तथा उनकी पहचान या तो चर्च में या हिन्दू समाज में घुल-मिल जाए। इन मिशनरियों को भारत के उत्तर-पूर्वी पर्वतीय राज्यों में इस कार्य में अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई। अरुणांचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैण्ड, मणीपुर, असम, त्रिपुरा में उनके पाँव जम चुके हैं और यही कारण है कि इन क्षेत्रों की जनजातियाँ उनके प्रभाव में हैं। राजस्थान के दक्षिणी अंचल में आदिवासी क्षेत्रों में भी ये धीरे-धीरे पाँव पसार रहे हैं। आदिवासियों से हमदर्दी जताना, उन्हें चिकित्सा सुविधा प्रदान करना और उनके बच्चों की शिक्षा के लिए विद्यालय खोलना। इस प्रकार धीरे-धीरे वे आदिवासियों को प्रभावित करते हैं और आदिवासी उनके धर्म-परिवर्तन के जाल में फँस जाते हैं। आदिवासियों को धर्म-परिवर्तन करने और जंगल की जिन्दगी छोड़ने पर कई तरह के प्रलोभन दिए जाते हैं। हालाँकि राजस्थान में यह प्रक्रिया अपेक्षाकृत धीमी है पर यदि इन मिशनरियों की गतिविधियों पर नियंत्रण नहीं लगाया गया तो स्थिति बाद में खतरनाक हो सकती है। ये मिशनरी सामान्य जनता से किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखते हैं। वे सिर्फ आदिवासियों से ही घनिष्ठ सम्पर्क रखना पसन्द करते हैं और सामान्यत: यह कहा जाता है कि इन्हें विभिन्न विदेशी संस्थाओं से भी मदद मिलती है।

आदिवासियों के सांस्कृतिक और आर्थिक पिछड़ेपन की बात करने वाले कई विद्वानों ने उनके आधुनिकीकरण तथा सभ्य समाजों में उनके

विलीनीकरण को बहुत महत्त्व दिया है। इन विद्वानों के अनुसार आदिवासियों की सभी तरह की समस्याओं का यह श्रेष्ठतम समाधान है। अतः उनके कल्याण सम्बन्धी सभी योजनाओं को इसी दृष्टिकोण को मद्देनजर रखते हुए लागू करना चाहिए। इसी विचारधारा को आत्मसातीकरण भी कहा गया है। आर्थिक पिछड़ापन एक समस्या हो सकती है, पर आधुनिकीकरण उसका एकमात्र समाधान नहीं है। वैसे भी हम अक्सर यह देखते हैं कि आदिवासी अब विभिन्न परिवर्तनों के प्रति उदासीन नहीं रह गया है। उसमें भी चेतना आ रही है। कई स्थानों पर अंधानुकरण या नकल की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। किन्तु उनकी अनुपम संस्कृति को छिन्न-भिन्न करके, उनकी विभिन्न ऐसी मान्यताओं को, जो हमारे सभ्य समाज से भी अच्छी हैं, जैसे- उनके प्राकृतिक इलाज के तरीके को मिटाकर, उनकी जंगलों पर सहज निर्भरता की आदत को खत्म कर के, हम कतई अच्छा नहीं करेंगे।

आधुनिकीकरण के नाम पर हम अपने विकास के औजारों को जबरदस्ती उन पर लादें यह कहाँ की मानवता है? क्या यह जरूरी है कि वर्तमान सभ्य समाज की मान्यताएँ हमेशा ही उचित हैं। आज भी सभ्य समाज में लड़की वालों के द्वारा लड़के वालों को भरपूर दहेज दिया जाता है। लड़कियाँ पैदा होने के डर से उनके भ्रूण को ही ऐमनियोसिंथेसिस परीक्षण करवाकर, पहचान कर नष्ट करवाया जा रहा है। ऐसी नृशंस आदतों से आदिवासियों के विचार बहुत अच्छे हैं, जो लड़के और लड़की के जन्म को समान महत्त्व देते है और कई मामलों में लड़की को लड़के से ज्यादा महत्त्व देते हैं।

विभिन्न राज्य सरकारों के द्वारा शिक्षा, सुधार और परिवर्तन सम्बन्धी विभिन्न महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, जो इन आदिवासियों के लिए आर्थिक और सामाजिक उपयोगिता प्रदान कर रहे हैं पर साथ ही आदिवासियों की-अच्छी और बुरी-दोनों ही तरह की पुरानी मान्यताओं को भी उखाड़ते जा रहे हैं।

जंगल नहीं रहने के कारण विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियों को पहचानने और उनके माध्यम से कई असाध्य रोगों का इलाज करने वाला आदिवासी आज या स्वास्थ्य केन्द्रों के चक्कर लगाने को

मजबूर है। ऊपर से उसे महँगी दवाएँ लिख दी जाती हैं, जिन्हें खरीदने के लिए उसके पास पैसे नहीं होते। हालाँकि आदिवासियों के कल्याण के लिए विभिन्न सुविधाएँ दी जा रही हैं, पर उनमें से कुछ को छोड़कर अन्य योजनाएँ आदिवासी संस्कृति से मेल नहीं खातीं।

'विलीनीकरण' की नीति को इस कारण भी प्रोत्साहन दिया जा रहा है कि जब आदिवासी सभ्य समाज में घुल-मिल जाएँगे तो न तो अलग से उनके विकास हेतु योजनाएँ बनाने की जरूरत पड़ेगी, न उनके लिए विशेष केन्द्रीय सहायता देनी पड़ेगी। ''पिछड़ापन'' नाम की कोई श्रेणी नहीं रहेगी, क्योंकि पिछड़े लोगों को आधुनिक बना दिया जाएगा। निम्न श्रेणी के लोग स्वतः ही उच्च स्तर पर पहुँच जाएँगे। समस्या का सीधा-सा हल और एक ही तीर से कई शिकार। जब आदिवासी जीवन ही समाप्त हो जाएगा तो इनकी समस्याएँ भी समाप्त हो जाएँगी। कितना सुन्दर हल है! परन्तु गहराई से देखा जाए तो यह आदिवासी संस्कृति और उसके जीवन-मूल्यों को नष्ट करने की कितनी भयंकर साजिश होगी। इससे तो अंग्रेजों की नीति ही बेहतर थी, जिसमें आदिवासियों को उनके हाल पर पूरी तरह छोड़ देने की बात कही गई थी, जिससे वे प्रकृति के समीप हमेशा ही रहते।

सामान्यतः सभ्यता से सम्पर्क ने आदिवासी कला और संस्कृति पर एक विपरीत प्रभाव डाला है। रंगों और बनावट के सम्बन्ध में आदिवासी की विशिष्ट रुचि और परख उस समय गायब हो जाती है, जब वह पास के कस्बे या शहर की दुकान में घुसता है। शानदार आदिवासी पोशाकों और गहनों को आदिवासी बालाओं द्वारा पहनना छोड़ा जा रहा है और वे पश्चिमी ढंग के कपड़ों की अंधी नकल कर रही हैं। आदिवासी जो पहले कमर पर सिर्फ अँगोछा बाँधते थे और नंगे बदन फिरते थे, उनका वह ताम्रवर्णी श्याम रंग अपनी विशिष्ट आभा रखता था, वही आदिवासी सस्ते टेरेलीन और पोलियस्टर के कपड़े खरीदते हैं और गरीब होने के कारण एक ही शर्ट-पेन्ट में महीना भर निकाल देते हैं और ये बिना धुले वस्त्र उनके शरीर में खुजली और विभिन्न तरह के चर्म रोग पैदा कर देते हैं।

वर्तमान में आदिवासी दस्तकार भी इस बाह्य प्रतियोगिता के कारण अपना विशिष्ट स्तर कायम नहीं रख पा रहे हैं। उन्होंने भी अपनी विशिष्ट चीजे नाना छोड कर वे चीजें बनानी शुरू कर दीं जो बाजार मे ज्यादा

बिकती हैं। आदिवासियों की अधिकांश समस्याएँ उनकी स्वजनित समस्याएँ न होकर सभ्य कहे जाने वाले उनके पड़ोसियों और प्रशासकों की देन है, जो समय-समय पर उनके सम्पर्क में आते रहे हैं और जिन्होंने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के आवेश में मनमाने ढंग से उनका शोषण किया है।

देश में आदिवासियों के अलग-अलग समुदाय हैं और उनके रीति-रिवाज अलग-अलग हैं। अत: उनके सम्बन्ध में एक ही प्रकार की नीति कभी भी लागू नहीं की जा सकती और फिर भारतीय संस्कृति का तो आदर्श ही विविधता में एकता रहा है, ऐसे में आदिवासियों पर जबरदस्ती 'विलीनीकरण' की नीति क्यों लादी जाये ? उनकी संस्कृति को भी अपने ढंग से पुष्पित-पल्लवित होने देना चाहिए।

3. मध्यमार्गी नीति

आदिम तटस्थता की नीति और विलीनीकरण की नीति जैसे दो छोरों के मध्य में एक नीति और भी है जो **पंडित जवाहर लाल नेहरू** के विचारों पर आधारित है। हालाँकि पंडित नेहरू आदिवासियों की समस्याओं के विशेषज्ञ नहीं रहे और न ही वे समाजशास्त्री रहे; परन्तु उन्होंने आदिवासियों के जीवन को बहुत नजदीक से देखा था, उनकी भावनाओं को महसूस किया था। वे भावनात्मक रूप से उनसे जुड़े हुए थे। यह बात तब सिद्ध हो गई जब उन्होंने जून 1952 में अनुसूचित जनजातियाँ तथा अनुसूचित क्षेत्र कान्फ्रेंस को नई दिल्ली में सम्बोधित किया। उन्होंने कहा कि "मैंने आदिवासी लोगों में कई योग्यताओं को पाया है, जो मैदानी और शहरी तथा देश के दूसरे भागों के लोगों में नहीं ढूँढ़ पाया।"

वास्तव में, जो प्रकृति के निकट रहते हैं, उनके जीने का ढंग ही निराला होता है और प्रकृति 'माँ' बन कर उनकी परवरिश करती है, उनकी हर जरूरत का ख्याल रखती है। यही कारण है कि आज भी कथोड़ी आदिवासी जंगल में जाने से पहले "अंगवी माता" की पूजा करते हैं। ऐसे प्रकृति-पुजारियों के जीवन में हस्तक्षेप से नेहरू जी को बड़ी चिढ़ होती थी। वे कहते हैं "लोग दूसरों को किस प्रकार अपनी कल्पना और पसन्द के अनुसार ढालने के लिए चिन्तित हैं और वे अपनी पसन्द उन आदिवासियों

के जीने के विशिष्ट ढंग पर लादना चाहते हैं। हमें अपनी पसन्द का जीवन जीने का अधिकार है पर उसी जीवन-शैली को दूसरों पर लादने का कोई अधिकार नहीं है।''

पं. नेहरू का यह कथन बहुत कुछ सही है। हम जो करते हैं दूसरों से भी वही अपेक्षा रखते हैं और अगर वह हमारी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरता तो हम उसे जाहिल और गँवार कहने में नहीं चूकते। कभी भी हम उसकी उन विशिष्ट परिस्थितियों को समझने की कोशिश नहीं करते, जिनके कारण वह हमारी आशा के अनुरूप कार्य नहीं कर पाता है। नेहरू जी ने स्पष्ट कहा है-''हमें किसी भी दशा में आदिवासियों को अपना अस्तित्व, अपनी विशिष्टता समाप्त करने के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए। हम राष्ट्रीय एकता के नाम पर उन्हें अपने समान हो जाने के लिए विवश न करें। विविधताओं में एकरूपता का आदर्श आदिवासियों के सम्बन्ध में हमारा उचित दृष्टिकोण होना चाहिए। किसी सुन्दर उपवन का सौन्दर्य उसमें खिले हुए पुष्पों की विविधता से और भी अधिक निखर उठता है।'' यह बात इस सन्दर्भ में और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि उनकी विशिष्ट संस्कृति को जीवित रख कर हम उनसे कुछ सीख सकते हैं। कई ऐसी बातें हैं, जो हमारे सभ्य समाज में अभी भी दुर्लभ हैं और जिन मान्यताओं का आदिवासी सहज रूप से पालन कर रहे हैं और सुखी हैं। नेहरू जी कहते हैं-''वे अत्यधिक अनुशासित लोग हैं और कई मामलों में भारत के अन्य लोगों की तुलना में अधिक प्रजातांत्रिक हैं। हालाँकि उनका कोई संविधान नहीं है लेकिन फिर भी वे प्रजातांत्रिक ढंग से कार्य करते हैं और बड़ों के निर्णयों के अनुसार कार्य करते हैं।''

नेहरूजी सबसे अधिक प्रसन्न थे आदिवासियों के प्रसन्नता को व्यक्त करने के ढंग से। कई तरह के अभावों के बावजूद उनके चेहरों पर चिन्ता की रेखाएँ नहीं आती हैं, क्योंकि वे सिर्फ आज के बारे में सोचते हैं। हमारी तरह भविष्य के ताने-बाने नहीं बुनते। नेहरू जी कहते हैं-''वे उस आदमी की तरह हैं जो गाता है, नाचता है और जिन्दगी का आनन्द उठाने की कोशिश करता है वे उन लोगों की तरह नहीं है जो स्टॉक एक्सचेंज मे

बैठकर एक-दूसरे पर चिल्लाते हैं और अपने-आपको सभ्य समझते हैं।''

यह एक बहुत दयनीय स्थिति है कि हम शहरों में लोक-जीवन के सौन्दर्यपरक पहलू से दूर बह गये हैं। नेहरू जी कहते हैं-''और तो और हम लोग गाने, नृत्य करने की भावना और जीवन का आनन्द उठाने का उत्साह भी खो चुके हैं जिन्हें आदिवासी अपने दैनिक जीवन में बहुत ही उन्मुक्तता से करते हैं। ऐसे में उन्हें अपने तथाकथित सभ्य समाज में विलीन करना उनके सामान्य और परम्परागत जीवन को नष्ट करना होगा, जिस जीवन को वे अभावों में रह कर भी सहज रूप से जीते हैं।''

नेहरूजी ने मिशनरियों की भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहा था- ''मिशनरियों ने यहाँ पर बहुत अच्छा कार्य किया है; परन्तु राजनेता के रूप में मैं यह कह सकता हूँ कि वे विशेष तौर पर भारत में परिवर्तन को पसंद नहीं करते हैं। वास्तव में, जब भारत में नवीन राजनैतिक जागृति का प्रादुर्भाव हुआ था तो उत्तर-पूर्वी भारत में लोगों को अलग से राज्य बनाने की माँग करने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए आन्दोलन चलाया गया। कई विदेशी नागरिकों ने इस आन्दोलन को समर्थन दिया।'' इस प्रकार से नेहरू जी ने एक ओर तो उनके द्वारा आदिवासियों के लिए किए जाने वाले कल्याण कार्यों की प्रशंसा की और दूसरी ओर उन में से कुछ के द्वारा पृथकतावादी तत्त्वों को प्रोत्साहन दिए जाने की भर्त्सना भी की है। बाद में मिशनरियों को ज्यादा स्वतंत्रता देने का परिणाम यह रहा कि उत्तर-पूर्व के राज्यों में विद्रोहियों ने अपनी सेनाएँ बना डालीं।

आदिवासी क्षेत्र में आदिवासी विकास कार्यों की औपचारिकता पूरी कर देने से ही काम नहीं चलेगा। इस तथ्य से नेहरू जी पूर्व-परिचित थे। वर्तमान में कई स्थानों पर आदिवासी विकास कार्यक्रमों की जो औपचारिकता-सी चल रही है, उसके बारे में उन्होंने पहले ही सचेत कर दिया था। नेहरू जी का कहना था, ''वे हमारे अपने आदमी हैं और हमारा कार्य उनके क्षेत्र में स्कूल, दवा-वितरण केन्द्र और चिकित्सालय खोल देने से ही पूरा नहीं हो जाता हमारा कर्त्तव्य है कि हम इन लोगों में 'एकता' की भावना विकसित

करें, समझ विकसित करें। इसमें एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा सम्मिलित है।'' यहाँ 'एकता' और 'समझ' से तात्पर्य है हम शिक्षा के अतिरिक्त अनौपचारिक शिक्षा संपर्कों की सहायता से उनमें ऐसी भावना जगाएँ, ऐसा ज्ञान दें ताकि वे अपना काम खुद कर सकें, अपनी जीवन शैली को बेहतर बना सकें, आजीविका के और भी तरीकों को अपना सकें। इसीलिए **नेहरू जी** ने अनुसूचित जाति जनजाति सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कहा था–''आप लोग दिन–ब–दिन विद्यालयों और अन्य मसलों से सम्बद्ध विकास कार्यक्रमों के बारे में बात कर सकते हैं परन्तु आप समस्या की तह को छूने में पूर्णतः असफल रहते हैं। आज की जरूरत है हम उन्हें समझ सकें। वे हमें समझ सकें और आपस में समझ और स्नेह का वातावरण बन सके।'' उन्हें अपने से अलग न समझा जाए। एक साथीपन की भावना के साथ उनके साथ रहे न कि उसकी परीक्षा लेने की नीयत से। इस बात के लिए उन्हें बाध्य न करें कि वे अपने जीवन को दूसरी तरह से जिएँ। नेहरू जी ने इसी कारण से विलीनीकरण की अवधारणा के खतरों के प्रति सचेत किया था।

कोई बाहरी व्यक्ति उनकी भूमि पर अधिकार न जमा सके तथा न ही उनकी सहमति के बिना उनके जीवन में हस्तक्षेप करे। प्रत्येक को हमेशा याद रखना चाहिए कि हम उनके जीवन में हस्तक्षेप न करें, अपितु उनके जीवन में मदद करें। **नेहरूजी** ने कहा–''भारत सरकार आदिवासी लोगों के विकास हेतु उनके अपने बौद्धिक स्तर तथा परम्पराओं के अनुसार सहायता के लिए कृत–संकल्प है।''

वारियर ऐल्विन इस बारे में कहते हैं–''प्रथम बात तो यह है कि जो कुछ भी आदिवासी समाज, संस्कृति, कला तथा भाषा में सर्वश्रेष्ठ है उसे संरक्षित, सुदृढ़ और विकसित किया जाए। दूसरी बात आदिवासी आर्थिक अधिकारों को सुरक्षा दी जाए। तीसरी बात आदिवासियों को सच्चे दिल से सम्पूर्ण भारत के साथ संगठित किया जाए ताकि वे भारतीय जीवन में पूर्णतः भाग ले सकें। अंतिम तौर पर कल्याण व शैक्षिक सुविधाओं को विकसित किया जाए ताकि प्रत्येक आदिवासी युवक को साथी नागरिक की तरह समान अवसर प्राप्त हो सके

नेहरू जी कहते हैं–"हमें उन लोगों को यह महसूस कराना चाहिए कि हम उन्हें कुछ देने के लिए आए हैं न कि उनसे कुछ लेने के लिए। यह एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक एकता है जिसकी भारत को आवश्यकता है। यदि दूसरी ओर वे यह महसूस करें कि आप लोग उन पर अपने विचार लादने आए हैं या उनकी जीवन पद्धति को परिवर्तित करने की कोशिश कर रहे हैं या व्यवसायियों के द्वारा उनका शोषण करवा रहे हैं, तो दोष हमारा है। आदिवासियों तक पहुँचने का यह तरीका पूर्णतः गलत है।"

हमें उनके क्षेत्र में अधिकारी नियुक्त करने में बहुत सावधान रहना चाहिए। एक अधिकारी जो आदिवासी क्षेत्र में नियुक्त किया जाए वह सिर्फ ऐसा न हो जो परीक्षा पास कर चुका हो या दैनिक कार्य का अनुभव हो; बल्कि वह व्यक्ति उत्साही हो तथा उसका दिल उन समस्याओं को समझ सके, जिनका उसे सामना करना है और जिन्हें उसे सुलझाना है। वह ऐसा नहीं होना चाहिए जो वहाँ जाकर थोड़ी देर बैठ आए और बाद में अपने भाग्य को कोसता रहे कि वह ऐसे क्षेत्र में पटक दिया गया है। इस प्रकार का आदमी पूर्णतः अनुपयोगी है। इसके बजाए तो बेहतर यही होगा कि आदिवासियों के क्षेत्र में अशिक्षित आदमी को भेज दिया जाए या उसको भेज दिया जाए जिसने कोई परीक्षा पास नहीं की हो; परन्तु वह आदिवासियों के साथ मित्रवत् व स्नेह से मिलकर रह सके। ऐसा व्यक्ति बेहतर परिणाम प्राप्त कर सकेगा। तुलनात्मक रूप से उस व्यक्ति के, जिसे समस्या की मानवीय समझ नहीं है।

लेकिन यहाँ पर भी उस अधिकारी, कर्मचारी के समक्ष आदिवासियों की भाषा समझने की समस्या आएगी। नेहरू जी कहते हैं कि–"सरकार को आदिवासियों की भाषा को प्रोत्साहित करना चाहिए, उन्हें पूरा समर्थन तथा वे अनुकूल स्थितियाँ प्रदान की जानी चाहिएँ, जिसमें वे उन्नति कर सकें।" समर्पित अधिकारी को उनकी भाषा सीखने का प्रयत्न करना चाहिए। सबसे बड़ी आवश्यकता आदिवासियों का विश्वास जीतने की होती है। सामान्यतः व्यक्ति स्वतः करीब आता है, जबकि हम उसकी ही भाषा में उससे बात

करें। उन्हें यह महसूस करवाएँ कि वे अपनी जिन्दगी को अपने ढंग से जीने के लिए मुक्त हैं।

नेहरूजी स्पष्टतः कहते थे–आदिवासियों के सम्बन्ध में आदिम तटस्थता की नीति अपना कर नृवंशास्त्रियों का अपमान करना है। ठीक इसी प्रकार विलीनीकरण की नीति या उन पर सभ्य समाज के रीति-रिवाजों को लादने की नीति भी उतनी ही गलत है।

उनके क्षेत्रों में सड़क व संचार सुविधाएँ उपलब्ध करवायी जानी चाहिए। वहाँ पर शिक्षण संस्थाओं की, चिकित्सा केन्द्रों की, कुटीर उद्योगों की तो जरूरत है ही। **नेहरू** जी कहते थे, ''हमें हमेशा याद रखना चाहिए कि हम उनके जीवन जीने के तरीके में हस्तक्षेप न करें, बल्कि उनको जीवित रहने में मदद करें।''

इस प्रकार न तो आदिम तटस्थता की नीति उचित है और न ही विलीनीकरण की नीति। **वारियर ऐल्विन** कहते हैं कि, ''आधुनिक विश्व में पृथक्कीकरण असंभव है और यदि यह संभव भी हो तो इच्छित नहीं है। म्यूजियम और चिड़ियाघरों के बारे में मतभेद अब खत्म हो गए हैं। हमें आदिवासी संस्कृति को इसलिए संरक्षित नहीं रखना चाहिए कि वैज्ञानिकों को खुश कर सकें या पर्यटकों को आकर्षित कर सकें। उनके नैतिक गुण, उनकी आत्मनिर्भरता, उनका साहस, उनकी कलात्मक भेंटें, खुशियाँ ऐसी चीजें हैं, जिनकी हमें जरूरत है। वे भी साथीपन, तकनीकी ज्ञान, मैदानों का विस्तृत दृष्टिकोण चाहते हैं।''

उपर्युक्त विश्लेषण से जो बात उजागर होती है वह यह है कि इन दोनों प्रकार के विचारों को बेहतर ढंग से समन्वित किया जाए और आदिवासी जीवन के दुर्लभ और बहुमूल्य तत्त्वों को नष्ट होने से बचाया जाए।

4. एक व्यवहारिक आदिवासी विकास प्रारूप (सुझावों के रूप में)

(i) आदिवासियों की वर्तमान मनोवृत्ति

आदिवासी वास्तव में योगी हैं, उन्हें जो भी मिल जाए उसी में वे खुश हैं। कल की उन्हें चिन्ता नहीं है। उन्हें कोई आकांक्षा भी नहीं है। उनकी

मनोवृत्तियों के बारे में आदिवासी क्षेत्रों में कार्यरत कर्मचारियों और अधिकारियों के अवलोकन व अनुभव में काफी गहराई है। यहाँ पर ऐसे कुछ महत्त्वपूर्ण कथन उद्धृत किए जा रहे हैं, जिनसे आदिवासियों की मनोवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है।

सार्वजनिक निर्माण विभाग के एक अधिशासी अभियन्ता (उदयपुर) के अनुसार–"वैसे तो ये आदिवासी बड़े उन्मुक्त आदमी हैं, अगर उन्हें एक सप्ताह के लिए मजदूरी मिल गई तो ये पहले उसे खर्च करते हैं, जब तक वह पैसा रहता है वे कोई काम-धाम नहीं करते। जब पैसा खर्च हो जाता है और भूखों मरने की नौबत आती है तो वे काम ढूँढ़ना शुरू करते हैं। अब वे पहले जैसे परिश्रमी भी नहीं रहे। वे समझते हैं सरकार अब हमें जिन्दा रखने के लिए कुछ-न-कुछ तो करेगी ही।"

सरपंच, गिरवर ग्राम, पंचायत समिति आबूरोड़ के अनुसार–"ये लोग सरकारी सहयोग पर ही जीवित हैं। इनका यह सोच बन गया है कि सरकार कुछ तो करेगी ही। मरने नहीं देगी। यही कारण है कि ये आलसी बन गए हैं। अब यदि किसी आदिवासी गरासिया को ठेकेदार के यहाँ कार्य और सरकारी राहत कार्य में से विकल्प चुनना पड़े तो वह सरकारी राहत कार्य पर मजदूरी करना पसन्द करेगा। भले ही उसे भुगतान देर से मिले, लेकिन वहाँ कम काम करना पड़ेगा।" चिकित्सा अधिकारी डूँगरपुर के अनुसार– "उनका यह सोचना है कि नसबंदी करवाने से शक्ति चली जाती है और वजन उठाने में दिक्कत आती है। यह भ्रांति ही है। अब ये अस्पताल आने लगे हैं पर अंधविश्वासी भी बहुत हैं।"

वार्डन, अनुसूचित जनजाति महिला छात्रावास खेरवाड़ा के अनुसार– "आदिवासियों में सबसे बुरी आदत शराब पीने की है। शराब पीने के लिए उसके पैर ऐसे उठने लगते हैं जैसे हवा में उड़ रहा हो। शराब के साथ ही झगड़े भी खूब होते हैं। इसके अतिरिक्त थोड़ा-सा भी अधिक पैसा होने पर ये दूसरी और तीसरी औरत तक रख लेते हैं। हाँ, अब यह प्रवृत्ति जरूर कम हो रही है।" ये सभी कथन अक्षरशः सत्य उतरे। अवलोकन द्वारा इनकी जाँच की गइ है स्पष्ट है कि आदिवासी अब धीरे धीरे परमुखापेक्षी होते जा

रहे हैं, जो एक खतरनाक प्रवृत्ति है। इस पर सरकार द्वारा ही अंकुश लगाया जा सकता है।

आदिवासियों का समग्र विकास किस प्रकार हो, इस सम्बन्ध में एक विकास प्रारूप बनाया गया है। हाँ, इस प्रारूप के अन्तर्गत क्षेत्र-विशेष की कठिनाइयों को भी ध्यान में रखना जरूरी हो जाता है; क्योंकि राजस्थान के विभिन्न भागों में बसने वाले आदिवासियों की स्पष्ट और सभी के लिए एक-सी समस्याएँ नहीं हैं। उनकी समस्याएँ भिन्न-भिन्न हैं। फिर भी थोड़े-बहुत फेर-बदल के बाद यह प्रारूप सभी आदिवासियों के हितार्थ उपयोगी हो सकता है। प्रारूप निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर निर्मित किया गया है।

(ii) शिक्षा

आदिवासियों में अशिक्षा की समस्या मूल समस्या है; क्योंकि अन्य कुरीतियाँ, उनका शोषण, इसी अज्ञानता, अशिक्षा के कारण होता है। यद्यपि वर्तमान में प्रत्येक आदिवासी ग्राम में एक प्राथमिक विद्यालय खोला गया है, परन्तु सुविधाएँ अपर्याप्त हैं। इस सम्बन्ध में कुछ और कार्य किए जाने चाहिए।

(1) प्राथमिक स्तर पर आदिवासियों के बच्चों के लिए शिक्षा का माध्यम मातृ बोली हो सकता है, जैसे–डूँगरपुर जिले के किसी ग्राम हेतु बागड़ी अथवा कोटा जिले की शाहबाद पंचायत समिति के सहरिया बहुल ग्रामों के लिए हाड़ौती बोली। साथ ही हिन्दी भी सिखानी चाहिए। मातृ बोली के माध्यम से सीखने का फायदा यह होगा कि बच्चे की सुनने और जानने मे रुचि बढ़ेगी। हिन्दी शिक्षण की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती; क्योंकि बाद में उच्च प्राथमिक, माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही रहेगा।

(2) आदिवासी गरीब होता है। अत: उसके बच्चों को प्रारम्भ में प्राथमिक शिक्षा हेतु आकर्षित करने हेतु उन्हें नि:शुल्क पाठ्य पुस्तके, कॉपियाँ, पोशाक, जूते उपलब्ध कराए जाएँ।

(3) प्राथमिक विद्यालयों को धीरे-धीरे सुविधासम्पन्न बनाया जाए। शाला में अध्यापकों की उपस्थिति अनिवार्य हो। प्राथमिक विद्यालय हेतु पक्का भवन, पानी की सुविधा, बच्चों के खेलने का स्थान, खेल सामग्री, अध्यापन हेतु सहायक सामग्री भी पूर्ण होनी चाहिए अर्थात् ''ऑपरेशन ब्लेक बोर्ड'' अभियान को निष्ठापूर्वक लागू किया जाए।

(4) शिक्षकों के लिए अलग से प्रशिक्षण की योजना बनानी चाहिए और इन पदों हेतु स्थानीय आदिवासियों में से ही योग्य व युवा पढ़े-लिखे उम्मीदवार चयनित किये जाने चाहिए। बाहर से पढ़ाने के लिए आने वाले शिक्षकों में आदिवासी बच्चों के प्रति उतना भावनात्मक लगाव नहीं होता, जितना उसी जनजाति से नियुक्त अध्यापक में होता है। फिर बाहर से आने वाले अध्यापक का काफी समय तो बस द्वारा आने-जाने में ही लग जाता है। वह वहाँ से अन्यत्र तबादला करने की यथासंभव कोशिश करता है। ऐसे में मजबूरी से बच्चों को पढ़ाते रहने का अर्थ ही यही है कि वह निष्ठा से कार्य नहीं कर रहा।

(5) सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि अधिकांश आदिवासी बच्चों में शिक्षा के प्रति लगाव कम है। अधिकतर बच्चे चौथी-पाँचवीं पास करने के बाद पढ़ना छोड़ देते हैं, क्योंकि उच्च प्राथमिक विद्यालय दूसरे गाँव में होता है। रोज आना-जाना बच्चे के लिए संभव नहीं होता। फिर आदिवासी इतने पैसे वाले नहीं हैं कि बच्चे को साईकिल खरीद दें। अतः प्रत्येक उच्च प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालय वाले ग्राम में आश्रमस्कूलनुमा छात्रावासों का खोला जाना जरूरी है। यह सरकार की एक अच्छी योजना है और इसको बढ़ाया जाना चाहिए। साथ ही आश्रम विद्यालय में रहने वाले छात्रों को सभी सुविधाएँ मिलें और छात्रावास अधीक्षक व कर्मचारी विभिन्न वस्तुओं व भोजन के वितरण में भ्रष्टाचार न करें, इस बात का भी कठोर निरीक्षण लगातार किया जाना चाहिए। 'शिक्षा आपके द्वार' योजना को समर्पित भाव से लागू करने की जरूरत है।

(6) आदिवासी क्षेत्रों में विभिन्न धार्मिक और स्वयंसेवी संस्थाएँ अपने-अपने ढंग से शिक्षा संस्थाएँ चलाती हैं, जिन्होंने आदिवासियों को ... की स्थिति में डाल दिया है ... को चाहिए कि या तो इन

शिक्षा संस्थाओं का अधिग्रहण कर ले या फिर इन्हें एक समान शिक्षा पद्धति लागू करने को बाध्य करे। आदिवासी समझ नहीं पाते हैं कि कौन-सी शिक्षा पद्धति उनके लिए उचित है। कई बार संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य आदिवासियों को शिक्षित करने के साथ अपना धार्मिक व राजनैतिक प्रचार भी करना होता है।

(7) जिस समाज की महिलाएँ जितनी अधिक साक्षर होंगी वह समाज उतना ही प्रगति की ओर अग्रसर होगा। आदिवासी महिलाओं में शिक्षा बहुत कम है। आवश्यक है कि इसके लिए आदिवासियों के मस्तिष्क में यह बात बिठाई जावे कि शिक्षित होने पर लड़कियाँ अपने कर्त्तव्यों को बेहतर ढंग से कर सकेंगी, जैसे-घर की सार-संभाल, बच्चे का पालन-पोषण आदि। अतः छात्राओं के लिए विद्यालयों में शिक्षा के अलावा एक-दो कालांश ऐसे भी होने चाहिए, जहाँ अध्यापिका उन्हें घरेलू दायित्वों के बारे में जानकारी दे और उन्हें विभिन्न कार्यों में निपुण बनाए। उच्च माध्यमिक/माध्यमिक व महाविद्यालय स्तर पर पढ़ने की इच्छुक छात्राओं हेतु इन स्थानों पर कन्या छात्रावास होने चाहिए और इन्हें विशेष प्रोत्साहन छात्रवृत्ति दी जानी चाहिए, ताकि वे पढ़ने को प्रेरित हों। वर्तमान छात्रवृत्ति और गृह किराया योजना अपर्याप्त हैं।

(8) छात्रों और छात्राओं-दोनों को ही माध्यमिक परीक्षा के पश्चात् व्यावसायिक शिक्षा हेतु स्थापित किए जाने वाले विद्यालयों व संस्थानो में उनकी रुचि के अनुसार प्रवेश देना चाहिए। ताकि वे बाद में अपनी रुचि के व्यवसाय खोल सकें अथवा नौकरी प्राप्त कर सकें।

(9) महिलाओं और पुरुषों-दोनों के लिए ही प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम आवश्यक कर दिए जाएँ और इसके लिए श्रव्य-दृश्य तकनीक का बहुतायत से उपयोग किया जाए, साथ ही उन्हें अक्षर ज्ञान कराना भी जरूरी है, ताकि वे अखबार पढ़ सकें, घरेलू हिसाब कर सकें और पत्र आदि लिख सकें। इस से वे शोषण से भी बच सकेंगे।

(iii) कृषि व सिंचाई

(1) पर्याप्त कृषि योग्य भूमि प्रत्येक परिवार को दी जाए

(2) सरकार द्वारा आदिवासियों को हल, बैल व अन्य कृषि उपकरण खरीदने हेतु कम ब्याज दर पर ऋण प्रदान करने चाहिए।

(3) आदिवासी क्षेत्रों में सरकार उचित मूल्य की दुकानें खोले, ताकि वे आदिवासियों को प्रमाणित बीज व खाद उचित मूल्य पर उपलब्ध करवा सके। वर्तमान में सहकारी समितियों में कई प्रकार की धाँधली चलने से वे आदिवासियों के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो पाई हैं। यह कार्य राजस संघ द्वारा किया जा सकता है।

(4) राजस्थान के सर्वाधिक पिछड़े हुए कथोड़ी और सहरिया आदिवासियों में कृषि की परम्परा बिल्कुल नहीं थी; क्योंकि वे वन-उत्पाद संग्रह करने वाली जातियाँ हैं। इन आदिम जातियों को (इनमें से सिर्फ सहरिया को ही सरकार ने आदिम जाति माना है, जबकि सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि कथोड़ी आदिवासी भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आने योग्य है) एकदम से खेती करने पर मजबूर नहीं किया जा सकता।

(5) किस समय क्या फसल बोयी जाए, कितनी खाद डाली जाए, कीड़ों और बीमारियों से कैसे बचाव किया जाए, यह सब जानकारी उनको श्रव्य दृश्य तकनीक (फिल्म) के माध्यम से दी जाए; क्योंकि यह शिक्षा का सबसे प्रभावपूर्ण माध्यम है। साथ ही उनको इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाए कि वे अपनी कृषि सम्बन्धी समस्याओं के हल हेतु उनके क्षेत्र के ग्राम सेवक (ग्राम विस्तार कार्यकर्त्ता) से सम्पर्क स्थापित करें। राज्य सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए कृषि मेले सराहनीय हैं। इन्हें दूसरे आदिवासी क्षेत्रों मे भी आयोजित किया जाए। इस जानकारी को प्रदान करने के लिए परम्परागत आदिवासी मेलों को भी माध्यम बनाया जा सकता है।

(6) जिन आदिवासियों की जमीन महाजनों व अन्य समृद्ध लोगों ने षड्यंत्र कर के छीन ली है वह जमीन उन्हें वापस दिलायी जाए। बंधुआ मजदूरी प्रथा को समाप्त करने की हरसंभव कोशिश की जाए हालाँकि इसमें काफी कुछ हद तक उस बंधुआ मजदूर की भी मजबूरी होती है कि वह बाद में क्या करेगा। इस हेतु उसे कोई छोटा धंधा चलाने हेतु ऋण भी प्रदान किए जाए। अगर आदिवासी परिवार किसी बड़ी सिंचाई परियोजना के कारण

विस्थापित हुए हैं तो उन्हें लगभग उसी तरह की गुणवत्ता वाली भूमि, मुआवजे सहित उपलब्ध करवाई जाए; किन्तु अच्छी भूमि निकालने के लिए वनों का विनाश कदापि नहीं किया जाए। बेहतर होगा विस्थापित आदिवासियों को कुटीर उद्योगों की स्थापना हेतु प्रेरित किया जाए व ऋण दिए जाएँ।

(7) खुले जंगलों में अनुमति के पश्चात् बिना शुल्क पशु चराने की सुविधा प्रदान की जाए।

(8) आदिवासियों को उनकी झोंपड़ी बनाने हेतु जंगल से बाँस व घास-फूस लाने की अनुमति तो है; किन्तु वन-रक्षक उनसे घूस न वसूलें, इसको सुनिश्चित किया जाए।

(9) घरेलू उपयोग हेतु सूखी लकड़ियों को एकत्रित कर लाने की अनुमति दी जाए।

(10) कथोड़ी व सहरिया आदिवासियों को विक्रय व स्वयं के उपभोग हेतु लघुवन-उपजों को संग्रह करने की अनुमति दी जाए, ताकि वे वन कर्मचारियों द्वारा किए जा रहे शोषण का शिकार न हों।

(11) कई बार आदिवासियों द्वारा एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के माध्यम से मिले औजारों व सामग्री को बेच दिया जाता है; क्योंकि वे उन कार्यों के बारे में कुशल प्रशिक्षण पाए हुए नहीं होते। अतः इनको कृषि, बागवानी व अपने काम-धन्धे (जो उस समय किए जाएँ जब कृषि कार्य से थोड़ी मुक्ति मिले) शुरू करने के लिए एक तकनीकी मार्गदर्शन केन्द्र की स्थापना की जा सकती है, जिसमें कृषि विशेषज्ञों के साथ ही हस्तकला विशेषज्ञ भी हों।

(12) जनसंख्या वृद्धि तो लगातार हो रही है; परन्तु भूमि सीमित है। अतः भूमि और टुकड़ों में बँटती जाती है और इस तरह कृषि करना अनार्थिक साबित हो रहा है। जरूरी है कि भूमि का एक निश्चित सीमा के बाद और बँटवारा रोक दिया जाए।

(13) आदिवासी क्षेत्रों में पीने के पानी की समस्या विकट है। इस हेतु प्रत्येक आदिवासी फले (मोहल्ले) में एक हैण्ड पम्प स्थापित किया जाए और साथ ही अभियांत्रिक विभाग के कर्मचारी समय समय

पर इस बात का निरीक्षण करें कि हैण्ड पम्प सही ढंग से कार्य कर रहा है, क्योंकि आदिवासी क्षेत्रों में अनेक हैण्ड-पम्प खराब पड़े हुए हैं।

(14) वर्तमान में व्यक्तिगत कुएँ खोदने हेतु मजदूरी देने का कार्यक्रम उचित है। जरूरत है कि इस में मजदूरी वितरण में धाँधली को रोकने के लिए गाँव के ही शिक्षित लोग, पंच, सरपंच निरीक्षण करें। इस कार्य में इन्हे गेहूँ मजदूरी के रूप में मिलता है, धन नहीं। अतः इस प्रकार सूखे व अकाल में इनकी खाद्य आवश्यकता पूरी होती है।

(15) पहाड़ी क्षेत्रों में छोटे-छोटे एनीकट बनाए जाने चाहिए, ताकि पानी का स्तर भी ऊँचा उठे, कटाव भी कम हो और वृक्षों को भी पानी मिल जाए।

(16) कृषकों को कृषि से अतिरिक्त आय प्राप्त करने के लिए फलदार पौधे आम, नींबू, महुआ, बेर, सीताफल, टेमरू लगाने को प्रोत्साहित किया जाए और इसके लिए वे जितने पौधे चाहें, निःशुल्क उन्हें उपलब्ध किए जाएँ। सफेदा (यूक्लिपटस) जैसे व्यर्थ के पेड़ जो जमीन का पानी सोखते हैं, उनकी अपेक्षा फलदार पौधों के वितरण का कार्यक्रम उचित रहेगा। आदिवासी इनके रोपण व रक्षा में रुचि भी लेंगे।

(17) कृषि हेतु सिंचाई प्राथमिक आवश्यकता है। बड़ी सिंचाई परियोजनाओं से पर्यावरण प्रभावित होता है। अतः छोटी सिंचाई परियोजनाएँ बनायी जाएँ, जिनमें कम धन राशि लगे और वे शीघ्र ही पूर्ण भी हो जाएँ। कृषकों से नहरी पानी शुल्क कम-से-कम वसूला जाए। जहाँ नहर नहीं पहुँच सकती वहाँ कुँए खोदने को प्राथमिकता दी जाए।

(18) आदिवासी भी अन्य लोगों की तरह अपनी जमीन के प्रति गहरा लगाव रखते हैं; क्योंकि वे पिछड़े हुए हैं। अतः हर सौदे में उनका शोषण होता है। इसलिए भूमि और साधनों पर उनका अधिक नियंत्रण होना चाहिए। ऐसे क्षेत्रों के प्राकृतिक संसाधनों पर पहला दावा या अधिकार इन जनजातियों का हो, जैसे-वन संपदा, खनिज सम्पदा, जलस्रोत, विद्युत् शक्ति उत्पादन आदि ताकि ये लोग भी धीरे-धीरे इन सुविधाओं का फायदा उठा सकें, जिनका फायदा वर्तमान में बाहर से आए हुए गैर-आदिवासी उठा रहे है।

(iv) रोजगार योजना

राजस्थान के जनजाति उपयोजना क्षेत्र में बाँसवाड़ा के माही सिंचित क्षेत्र को छोड़कर शेष क्षेत्र सिंचाई के अभाव की कहानी कह रहा है। ऊँची-नीची पथरीली जमीन व छोटी-छोटी पहाड़ियाँ-एक समय की वर्षा हो जाए तो भी आदिवासी बड़ी मुश्किल से खाने भर अनाज पैदा कर पाता है। यदि वर्षा नहीं हो तो फिर आदिवासी परमुखापेक्षी बन जाता है या अवैध धन्धों, जैसे-शराब बनाना, जंगल से चोरी-छिपे लकड़ियाँ काट कर बेचने में लगता है या फिर उसे दूर-दराज के क्षेत्रों में रोजगार हेतु पलायन करना पड़ता है।

ऐसे में सरकारी सहायता तीन प्रकार से की जाती है-एक तो अकाल राहत कार्यक्रमों के अन्तर्गत ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, जिसमें विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा विभिन्न उपयोगी परिसम्पत्तियों, जैसे-शाला भवन, सड़क इत्यादि का निर्माण किया जाता है और आदिवासी महिला-पुरुषों को रोजगार मिलता है। दूसरे प्रकार के कार्यक्रम स्थायी रोजगार प्रदान करने वाले होते हैं। इसमें समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत निर्धनतम वर्ग के लोगों को सहायता दी जाती है, उन्हें अपना काम-धंधा शुरू करने के लिए ऋण व यंत्र उपलब्ध कराए जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र के आदिवासियों के विकास हेतु विभिन्न ऋण व वस्तु सहायता कार्यक्रम जनजाति विकास विभाग विशेष केन्द्रीय सहायता से चलाए जाते हैं।

सर्वप्रथम राहत कार्यक्रमों में निम्नलिखित सुधार अपेक्षित हैं-

(1) एक सामान्य शिकायत यह आती है कि राहत कार्यक्रमों के अन्तर्गत आदिवासी मजदूरों को कम मजदूरी दी जाती है। इस सन्दर्भ में सरकारी कर्मचारियों का कथन है कि मजदूरों को उनके द्वारा किए गए कार्य के माप के अनुसार मजदूरी का भुगतान किया जाता है और यदि मजदूर उतना काम नहीं कर पाता है तो पूरी मजदूरी किस बात की? दूसरी ओर अवलोकन करने पर ज्ञात हुआ कि अधिकांश आदिवासी बहुत सुस्त ढंग से कार्य करते हैं, काम से जी चुराते हैं। यह भी देखा गया है कि अगर आदिवासी के पास सरकारी काम पर जाने का अथवा ठेकेदार के यहाँ मजदूरी करने का विकल्प हो तो ऐसे मे वह आदिवासी सरकारी राहत कार्य

पर जाना पसन्द करता है, क्योंकि वहाँ पर काम कम करना पड़ता है और समान मजदूरी मिलती है। फिर भी यह बात निश्चित है कि कहीं-न-कही सरकारी कर्मचारी भुगतान में हेरा-फेरी कर लेते हैं। अतः भुगतान के समय यह आवश्यक कर दिया जाए कि पंचों व सरपंचों के अतिरिक्त ग्राम के 5 अन्य शिक्षित नौजवान भी पर्यवेक्षक के रूप में उपस्थित हों, ताकि आदिवासियों के साथ अन्याय न हो।

'(2) राहत कार्यों पर जो मजदूरी दी जाती है, उसका भुगतान कई बार देरी से होता है फलस्वरूप गरीब आदिवासी को ऋण लेकर काम चलाना पड़ता है और फिर वह हमेशा के लिए ऋण के जाल में फँस जाता है। अतः ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि राहत कार्यों की पूर्णता के साथ ही आदिवासियों को मजदूरी का भुगतान कर दिया जाए।

(3) इस क्षेत्र में प्रत्येक साल सूखे की स्थिति हो जाती है और सरकार को राहत कार्य शुरू करने पड़ते हैं। इस प्रकार आदिवासियों की मनोवृत्ति इस तरह के राहत कार्यों पर निर्भरता की हो गई है। फलस्वरूप वे प्रत्येक वर्ष इस बात का इन्तजार करते हैं कि सरकार कब इस क्षेत्र को अकालग्रस्त घोषित करे और उन्हें मजदूरी/काम मिले। इस प्रकार आदिवासियों को "स्पून फीडिंग" (घर बैठे खिलाने) की हानिकारक आदत से बचाना चाहिए। काम चाहने के इच्छुक व्यक्तियों को इस बात के लिए प्रेरित करना चाहिए कि वे स्थायी रूप से अपना कुटीर उद्योग या धंधा करना शुरू करें, ताकि वे 1-2 वर्ष बाद स्वावलंबी बन सकें तभी जाकर अकाल को विकास से जोड़ा जाना सार्थक होगा।

(4) इन राहत कार्यों में अक्सर महिला श्रमिकों का शोषण होता है, उन्हें पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी देकर रख दिया जाता है। यह बात कई सर्वेक्षणों से भी सिद्ध हुई है। कई बार उनसे जानबूझकर कम काम करवाया जाता है और फिर बदले में उन्हें कर्मचारी के घर का काम करना पड़ता है, या उनका शारीरिक शोषण किया जाता है। इसमें उस स्त्री की सहमति मजबूरन हासिल की जाती है। स्पष्ट है कि इस प्रकार की घटनाओं को महिला के स्वय के विरोध किए जाने पर रोका जा सकता है। ऐसे में उस या

उन महिलाओं को जागृत नौजवानों का सम्बल भी मिलना चाहिए, क्योंकि सामान्यत: विरोध करने पर उन्हें मजदूरी से हटा देने की धमकी दी जाती है। ऐसे में शिकायत होने पर सरकारी उच्चाधिकारियों को ऐसे कर्मचारियों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करनी चाहिए। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि शिकायत व्यक्तिगत द्वेष से प्रेरित न हो, झूठी न हो, ताकि किसी ईमानदार कर्मचारी के मनोबल को क्षति नहीं पहुँचे।

(5) इस प्रकार अस्थाई रोजगार दिए जाने पर सरकार की काफी धनराशि का अपव्यय होता है। यदि हम तुलना करें तो **हमें** ज्ञात होता है कि पहले भी सूखा पड़ता था, परन्तु इतने राहत कार्य नहीं चलाए जाते थे, फिर भी आदिवासी जीवन-निर्वाह करते थे; क्योंकि उस समय न तो वृहद् सिंचाई परियोजनाओं का बोलबाला था और न ही वन विनाश की भयावह स्थिति थी। जरूरत इस बात की है कि आदिवासियों के आस-पास पुन: वही प्राकृतिक परिवेश लाया जाए, जिसमें जंगल हो, जंगल से वन-उपजें एकत्र करने की छूट हो, ताकि वे अकाल के दिनों का सामना कर सकें और परमुखापेक्षी न बनें। अत: सघन वृक्षारोपण योजना सामाजिक वानिकी के तहत इस क्षेत्र में लागू की जानी चाहिए, जिसमें सफेदा-जैसे विवादास्पद वृक्ष न होकर फलदार पौधे हों, जिनकी रक्षा की आदिवासियों में स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इसे बड़े पैमाने पर शुरू करने की जरूरत है। अगर एक कृषक के पास 20 फलदार पेड़ भी हों तो वे उसके परिवार को अकाल में भूखों मरने से बचा सकते हैं।

जहाँ तक आदिवासियों को स्थाई रूप से रोजगार प्रदान करने के लिए जो ऋण व औजार उपलब्ध कराने से सम्बद्ध कार्यक्रम हैं, उनमें भी निम्नलिखित सुधार होने जरूरी हैं-

(1) राजस्थान के इस जनजाति उपयोजना क्षेत्र में आदिवासियों की किन काम-धन्धों में रुचि है? विभिन्न कुटीर उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध है अथवा नहीं? क्या नए कुटीर उद्योग खोले जा सकते हैं? इन सबके बारे में व्यापक सर्वेक्षण किए बिना आदिवासियों को ऋण देने का अर्थ होता है ऋण को डूबत खाते मे अत इस प्रकार का

सर्वेक्षण पुनः किया जाना चाहिए; क्योंकि राष्ट्रीय आर्थिक विकास हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम जनजाति क्षेत्रों में उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखे बिना न तो रचित किए जा सकते हैं और न ही क्रियान्वित किए जा सकते हैं।

(2) विभिन्न लाभप्राप्तकर्त्ताओं को ऋण देने व औजार देने के साथ ही यह समझ लिया जाता है कि वे गरीबी की सीमा रेखा से ऊपर उठ गए। सतत् पर्यवेक्षण की जरूरत है कि दिए गए ऋण का सदुपयोग हो रहा है अथवा नहीं। लाभप्राप्तकर्त्ता आदिवासी को उसके धन्धे से सम्बद्ध किसी समस्या का सामना तो नहीं करना पड़ रहा, जैसेकि कच्चे माल की कमी है तो सरकार द्वारा उन्हें उचित दामों पर कच्चा माल उपलब्ध करवाया जाना चाहिए। उनके द्वारा निर्मित माल के विक्रय की भी व्यवस्था की जानी चाहिए। अक्सर ऋण लेने के बाद लाभप्राप्तकर्त्ता परेशान होकर विभिन्न कठिनाइयों से उस धन्धे को बीच में ही तिलांजलि दे देता है।

(3) आदिवासियों को कृषि, बागवानी या अपने काम-धन्धे शुरू करने से पूर्व अगर तकनीकी व व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाए तो उस कार्य को करने में उनकी रुचि भी बढ़ेगी और वे अधिक कुशलतापूर्वक उस कार्य को करने लगेंगे। फलस्वरूप अधिक उत्पादन करने से अधिक लाभ होगा। यह प्रशिक्षण कार्य अभी जनजाति विकास विभाग द्वारा दिया जा रहा है।

(4) यह एक महत्त्वपूर्ण खोज का विषय है कि वास्तविक जरूरतमंदों को सहायता मिल रही है या जरूरतमंदों के नाम पर उस सहायता का फायदा अवांछित तत्त्व उठा रहे हैं। अक्सर खाते-पीते लोग भी अपने-आपको निर्धन दर्शा कर समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत फायदा उठाते देखे गए हैं। इस प्रकार से जो हेरा-फेरी होती है, उसके कारण जरूरतमंद आदिवासी को फायदा नहीं मिल पाता। इस हेतु गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा चयनित किए गए निर्धनतम व्यक्तियों की सूची का सूक्ष्मता से निरीक्षण करना चाहिए। ये प्रतिष्ठित व्यक्ति निष्पक्ष होने चाहिएँ।

(5) आदिवासियों को सहायता देने से पूर्व यह भी देखना चाहिए कि जिस कार्य के लिए उन्हे ऋण दिया जा रहा है वह उनकी रुचि का है अथवा

नहीं। उदाहरण के लिए-कथोड़ी आदिवासी हस्तकला उद्योग के अन्तर्गत बाँस की विभिन्न चीजें बनाने में निपुण होते हैं। अगर उन्हें इसके बजाए भैंस पालन के लिए ऋण दिया जाएगा तो वह उस धन्धे को सही ढंग से नहीं चला पाएँगे। इस प्रकार आदिवासियों को उनकी रुचि के कुटीर उद्योग की स्थापना के लिए ऋण दिया जाना चाहिए। साथ ही यह ऋण अपर्याप्त होगा तो वह उस धन्धे की शुरूआत सही ढंग से नहीं कर पाएगा। फलतः वह धन्धा शैशवावस्था में ही मृतप्राय हो जाएगा। कई बार किसी फसल-विशेष को बोने के लिए खाद व बीज क्रय करने के लिए ऋण समय पर मिलना चाहिए। अगर बोने का समय निकल चुका है और उसके पश्चात् ऋण मिले तो आदिवासी कृषक उसका फायदा नहीं उठा पाएगा।

(6) अक्सर जो धनराशि ऋण के रूप में उसे प्रदान की जाती है उसका एक हिस्सा बिचौलियों (बैंक कर्मचारी, ऋण स्वीकृत करने वाले) द्वारा उसकी अज्ञानता एवं विवशता के कारण हड़प लिया जाता है। इसका सर्वश्रेष्ठ उपाय यह है कि ऋण नकद न देकर वस्तु रूप में दिया जाए अर्थात् उसके लिए कच्चा माल खरीद दिया जाए, औजार या मशीन प्रदान की जाए। इसमें भी अक्सर होता यह है कि बैंक कर्मचारी और मशीन विक्रेता के बीच मिली-भगत होने पर बैंक अधिकारी किसी विशेष मशीन विक्रेता से ही आदिवासी को मशीन खरीदवाते हैं। फलस्वरूप उन्हें कमीशन मिलता है और इस तरह कभी-कभी विक्रेता घटिया मशीनें या कम मूल्य की मशीन भी उद्यमी को दे देता है। ऐसे दुष्कृत्यों से बचने के लिए जरूरी है कि ये मशीनें व कच्चा माल आदि सार्वजनिक रूप से आदिवासियों को दिए जाएँ और उनकी जाँच भी गाँव के शिक्षित नवयुवकों, पंचों तथा सरपंच द्वारा की जाए। आदिवासियों को इस प्रकार के शोषण से बचाने के लिए उन्हीं में से पढ़े-लिखे नवयुवकों को आगे आना चाहिए। मशीन या औजार देने के बाद यदि वह उनको चलाना नहीं जानता तो उसे पहले प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, ताकि मशीन आने के बाद वह कुशलता से उसका उपयोग कर सके।

(7) आदिवासी को लुटने से बचाने के लिए, उसके धन्धे में काम आने वाला कच्चा माल व अन्य जरूरत की वस्तुएँ उचित मूल्य पर देने के लिए प्रत्येक बड़े आदिवासी ग्राम में सरकारी दुकान्र होनी चाहिए, जो आस-पास के ग्रामों को भी सुविधाएँ उपलब्ध कराती हो। इन्हीं दुकानों को आदिवासियों द्वारा उत्पादित माल खरीद कर उन्हें माल बेचने की परेशानी से छुटकारा दिलाना चाहिए। इस प्रकार ये सरकारी दुकानें आदिवासियों की बहुत सेवा कर सकेंगी। वर्तमान में यह कार्य लेम्पस व राजस संघ कर रहा है। इनमें पूर्णतः ईमानदार व सेवाभावी व्यक्तियों की नियक्ति की जानी चाहिए।

(8) आदिवासी ग्रामों में छोटे-छोटे प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किए जाने चाहिएँ जहाँ पर आदिवासी अपना धन्धा शुरू करने से पूर्व उसे वैज्ञानिक विधि से कुशलतापूर्वक करने का प्रशिक्षण प्राप्त कर सके। पढ़े-लिखे बेरोजगार व्यक्ति कुछ महीने के स्वयं के प्रशिक्षण के बाद आदिवासी समूह को प्रशिक्षण देने योग्य हो सकते हैं। इससे एक ओर बेरोजगारी समस्या को हल करने में मदद मिलेगी, दूसरी ओर आदिवासियों को भी तकनीकी मार्ग-दर्शन मिल सकेगा।

(9) किसी भी ऋण के साथ दिए जाने वाले अनुदान (जो आदिवासियों के कुल ऋण का 50% तक होता है) ने भी इनमें भारी अकर्मण्यता पैदा की है। जो ऋण लिया जाता है उसका 50% ही उन्हें लौटाना होता है। अतः वे सिर्फ इस अनुदान को पाने के लिए फार्म भरते हैं। इस तरह इनके विकास का मूल उद्देश्य ही पराजित हो जाता है।

(10) कई बार आदिवासी को ऋण प्राप्त करने के लिए, तस्दीक के लिए बैंक मैनेजर, सरपंच व अन्य लोगों के यहाँ इतने चक्कर लगाने पड़ते हैं कि वह परेशान हो जाता है। विभिन्न ऋण-फार्मों को भरना उसके बस से बाहर की बात होती है। अतः ऋण-प्रक्रिया को सरल बनाया जाए और उसकी योग्यता व निर्धनता के स्तर को कठोरता से जाँचने के बाद उसे शीघ्र ऋण दिया जाए। यह एक सही आलोचना है कि सरकार द्वारा चलाए जा रहे

विभिन्न सहायता कार्यक्रम 'लक्ष्य-प्राथमिकता वाले' होते हैं। ऋण से आदिवासी को फायदा हो, उसका जीवन स्तर उठे, इसकी समीक्षा समय-समय पर की जानी चाहिए। लक्ष्य प्राप्त करने पर जोर नहीं देना चाहिए; क्योंकि लक्ष्य पूरा करने के चक्कर में कई बार अधिकारी ऋण के अयोग्य व्यक्तियों को भी ऋण देकर खाना-पूर्ति करते हैं, ऐसे में सही विकास का या गरीब के उत्थान का उद्देश्य उपेक्षित रह जाता है।

(11) सरकार द्वारा आयोजित किए जाने वाले ऋण मेले भी फिजूलखर्ची ही है। इनमें होने वाला खर्च, जैसे-टेन्ट का खर्चा, जिले स्तर के अधिकारियों का एकत्र होना, सरकारी वाहनों का पेट्रोल का खर्चा, भोज का खर्चा प्रमुख हैं। इनमें औपचारिकता मात्र ही होती है। कई बार अयोग्य व्यक्ति भी लाभान्वित हो जाते हैं। अतः इस प्रकार के मेले बन्द होने चाहिएँ और विभिन्न मशीनें और औजार उस गाँव में गाँव के सरपंच व अन्य प्रतिष्ठित व जागरूक व्यक्तियों की उपस्थिति में चयनित आदिवासी को दे दिए जाएँ।

(11) राहत कार्यक्रम अगर स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति में अपर्याप्त हों तो उन्हें और अधिक विस्तृत रूप से भी चलाया जा सकता है, जैसे कि शाला का भवन यदि पिछले वर्ष अधूरा बना है तो उसे पूर्ण बनाने की कोशिश होनी चाहिए। राहत कार्यक्रमों के अन्तर्गत फलदार व अन्य उपयोगी वृक्षों के वृक्षारोपण की भी विस्तृत योजना बनाई जानी चाहिए, ताकि काटे गए जंगलों की क्षति-पूर्ति हो सके।

(13) रोजगार देने के नाम पर जो भी वृहत् योजनाएँ बनाई जाएँ, उनमें आदिवासियों की सहभागिता को और बढ़ाया जाए, ताकि उन्हें यह महसूस हो कि सरकार हमारे विकास के प्रति सचेत है। आदिवासियों को विश्वास में लेना जरूरी है, उन्हें योजना के लाभों के बारे में बताया जाना चाहिए, ताकि वे उत्साह से काम करें। क्षेत्रीय विकास अधिकारियों को भी सहायता हेतु परिवार चुनते समय ग्राम के सरपंच व पंचों की सहायता से प्रत्येक परिवार का ध्यान रखना चाहिए और यदि वह गरीबी की सीमा रेखा से नीचे हो. पर वह इस वर्ष चयनित परिवारों. जिनको सहायता दी जानी है

की सूची में नहीं आ पाया है, तो उस पर अगले वर्ष अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए एवं उस परिवार के एक या दो सदस्यों को राहत कार्यों में रोजगार उपलब्ध करवाया जाना चाहिए, ताकि वह परिवार भुखमरी का शिकार न हो तथा पलायन करने को विवश नहीं हो। आदिवासियों की समस्याएँ विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग होती हैं। ऐसे में उनकी आवश्यकताओं का व्यष्टि स्तर पर विश्लेषण आवश्यक होता है। उन पर तुरन्त ध्यान दिया जाना चाहिए और उनके स्थानीय हल ही ढूँढ़े जाने चाहिएँ।

(v) जन-जागृति

(1) आदिवासियों में जन-जागृति लाना अर्थात् उन्हें अपने में व्याप्त बुराइयों से अवगत करवाना तथा उन्हें उन बुराइयों को त्यागने हेतु प्रेरित करना मुख्य मुद्दा है। आदिवासियों में सबसे बड़ी बुराई शराबखोरी की है। वह अपनी दैनिक मजदूरी का काफी बड़ा हिस्सा इस पर उड़ा देता है फलस्वरूप घर पर बीबी-बच्चों को भूखा रहना पड़ता है या उन्हें एक जून खाना ही नसीब हो पाता है। ऊपर से नशे में वह पूरे परिवार की पिटाई भी कर देता है या कहीं गढ़े में गिरकर अपने हाथ-पैर तुड़वा बैठता है। इस प्रवृत्ति को बढ़ाने में सरकार द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में शराब बेचने के ठेके तो उत्तरदायी हैं ही अवैध रूप से बनने वाली शराब (महुड़ी) भी उत्तरदायी है। अगर सरकार वास्तव में आदिवासियों का सच्चा कल्याण चाहती है तो उसे तुरन्त शराब के ठेके बन्द करने चाहिए। पुलिस व अवैध शराब बनाने वालों के गठबन्धन से जो बेहताशा नुकसान आदिवासियों को हो रहा है उस पर भी अंकुश लगाना चाहिए। जंगलों में बने अवैध शराब बनाने के अड्डों पर छापे मारने चाहिएँ और अवैध शराब बनाने वाले अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए।

(2) आदिवासियों में ही क्या, सम्पूर्ण हिन्दू समाज में मृत्युभोज की प्रथा प्रचलित है, भले ही आदिवासी ऐसे समय पर एक-दूसरे की खाद्यान्न से सहायता करते हैं, परन्तु यह एक कुप्रथा है और आदिवासी पर गरीब होने के कारण इसका अधिक भार पड़ता है। वह कभी न छूटने वाले ऋण जाल

के लाभ भी बताने चाहिएँ। इन्हीं श्रव्य-दृश्य तकनीक से आदिवासियों में व्याप्त विभिन्न बुराइयों को त्यागने को भी प्रेरित किया जा सकता है; क्योंकि यह तकनीक दिमाग पर बहुत प्रभावशाली ढंग से असर करती है।

(2) प्रत्येक ग्राम में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र होना चाहिए जहाँ पर एक नर्स व एक कम्पाउंडर हों, जो आदिवासियों की विभिन्न बीमारियों में प्रारम्भिक दवाएँ दे सकें, चोट लगने पर मरहम पट्टी कर सकें, उन्हें परिवार नियोजन के उपाय सुझा सकें। उन्हें परिवार नियोजन में काम आने वाले उपकरण दे सकें और उन्हें उनका प्रयोग करने की विधि भी समझा सके। इस प्रकार इन लोगों को अपने कर्त्तव्यों का पालन पूरी सजगता से करना चाहिए। इसके लिए ऐसे सेवाभावी युवक-युवतियों की विशेष भर्ती की जाए, जो ग्रामों में आदिवासियों के बीच कार्य करने के इच्छुक हों। जो कुछ प्रयास करने के बाद आदिवासियों की बोली समझ सकें, उनको समझा सकें।

(3) आदिवासियों में अज्ञानता के कारण छूत की बीमारियों और उन्मुक्त यौन-सम्बन्धों के कारण यौनजनित रोग भी फैले हैं, जिन्हें अक्सर आदिवासी छिपाते हैं, फलतः ये बीमारियाँ भयावह स्थिति तक जा पहुँचती हैं, जहाँ इनका इलाज कराना आदिवासी के बस से बाहर होता है। फलतः वह तड़प-तड़प कर दम तोड़ देता है। इनसे बचाव के लिए आदिवासियों को सचेत किया जाना चाहिए। जिला स्तर पर साधन-सुविधायुक्त चिकित्सा कक्ष हो जहाँ इन बीमारियों की निःशुल्क चिकित्सा व्यवस्था हो।

(4) साधारण रोगों, जैसे-बच्चे में निर्जलीकरण (दस्तों या उल्टी के कारण) से उत्पन्न स्थिति से निबटने के लिए घरेलू इलाज की विधियाँ बतानी चाहिएँ ताकि आदिवासी स्वयं भी इन स्थितियों का सामना कर सकें।

(5) आजकल ग्रामों में आँगनबाड़ी केन्द्र चलाये जा रहे हैं। जहाँ पर प्रशिक्षित आँगनबाड़ी कार्यकर्त्ता नियुक्त की जाती हैं। ये ग्रामीण बच्चों को खेलकूद सिखाती हैं। ग्रामीण महिलाओं को पोषाहार सम्बन्धी बातें बताती हैं, हालाँकि इनमें से कई कार्यकर्त्ता सिर्फ औपचारिकता पूरी करती हैं।

लेकिन इनके ज्ञान का आदिवासी महिलाएँ तब ही फायदा उठा सकती हैं जब उनके पास पोषाहार के लिए, जरूरी चीजें खरीदने के लिए पैसे हों। उन्हें खुद ही जब दो जून की रोटी की चिन्ता सताती है, ऐसे में पोषाहार की बात अटपटी लगती है। बच्चों को पोषाहार मिले, इसके लिए सरकार को पोषाहार स्वयं इन आँगनबाड़ी केन्द्रों पर नियमित रूप से उपलब्ध कराना चाहिए और इसमें किसी भी संभावित धाँधली को रोकने हेतु ग्राम के सरपंच, पंचों द्वारा निरीक्षण कराना चाहिए।

(vii) शोषण से बचाव

(1) आदिवासियों की वह जमीन जिस पर महाजनों ने या धनी व्यक्तियों ने कब्जा कर रखा है, उन्हें अविलम्ब वापस दिलायी जानी चाहिए। अक्सर होता यह है कि सरकारी प्रतिनिधि वह जमीन उसे वापस दिला भी देते हैं; परन्तु उनके वहाँ से हटते ही पुनः आदिवासी को उस जमीन से बेदखल कर दिया जाता है। आदिवासी को उसकी जमीन वापस मिले, वह उस पर खेती कर सके, इसकी पुख्ता व्यवस्था की जानी चाहिए।

(2) उन्हें न्यूनतम मजदूरी की दर की भी जानकारी देनी चाहिए और अगर कोई ठेकेदार इससे कम मजदूरी देता है (कार्य पूरा करने के बावजूद भी) तो वे उसकी शिकायत खण्ड विकास अधिकारी से करें, ताकि वह उचित कार्यवाही कर सके।

(3) किसी आदिवासी पर महाजन का ऋण चढ़ा हुआ है और ब्याज दर बैंक ब्याज दर से अधिक है तो उसे उस ऋण से मुक्ति दी जानी चाहिए। साथ ही यदि आदिवासी मूल ऋण के बराबर धनराशि दे चुका है फिर भी ऋण चढ़ा है, तो उसे ऋण से मुक्ति दी जानी चाहिए। इस तरह आदिवासियों को महाजनों के चंगुल से मुक्त कराना चाहिए। यदि महाजन ने जमीन बंधक रख कर ऋण दिया है और उस जमीन का उपयोग महाजन कर रहा है तो उस जमीन के उपयोग का अधिकार आदिवासी कृषक को मिले, ऐसी व्यवस्था लागू की जानी चाहिए। इस मामले में कानून को कड़ाई से लागू करने का दायित्व जिला प्रशासन व पुलिस का हो जाता है।

(4) हरित क्रान्ति के जनक डॉ एम एस स्वामीनाथन आदिवासी

महिलाओं के बौद्धिक संपदा अधिकारों का विधेयक लाए जाने के लिए प्रयासरत हैं। यह आदिवासी महिलाओं के हित में होगा।

(viii) आदिवासियों की विशिष्ट संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखना

(1) आदिवासियों की अपनी पहचान, विशिष्ट जीवन शैली और संस्कृति को खोए या विकृत किए बगैर उसका विकास करना सरकार का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

(2) इसके तहत उनकी पारम्परिक कला और संस्कृति का सम्मान किया जाना चाहिए।

(3) हमारी प्रमुख समस्या यह है कि आदिवासियों का राष्ट्रीय स्तर के अनुकूल विकास कैसे किया जाए, जिससे उनका विशिष्ट सांस्कृतिक व्यक्तित्व बना रहे और देश की समृद्धि से भी वे लाभान्वित हों। इसके अन्तर्गत प्रथम महत्त्वपूर्ण बात है कि उनके क्षेत्रों में जंगलों, भूमि पर उनका अधिकार सुरक्षित किया जाना चाहिए। उन्हें उनके क्षेत्रों में उपलब्ध वन-सम्पदा का उपयोग करने व जल-स्रोतों का निर्बाध उपयोग करने की अनुमति हो। द्वितीय बात स्थानीय आवश्यकता व उनकी रुचि के अनुकूल कल्याणकारी व रोजगार योजनाएँ बनाई जाएँ।

(4) आदिवासी नृत्यों व गायन के भौंड़े प्रदर्शन को तुरन्त रोका जाना चाहिए। प्रत्येक मौके पर सरकारी विभागों द्वारा उन्हें नृत्य करने को बाध्य करने की परम्परा को भी बन्द किया जाना चाहिए। आदिवासी प्रकृति-पुत्र हैं। उन्हें उनके तरीकों से जीने का अवसर देना चाहिए न कि अपनी इच्छाओं के अनुसार उन्हें तमाशा बनाकर या अजूबा बनाकर किसी तीसरे के सामने पेश करना चाहिए।

(5) "आदिवासी सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े हुए है", इस तरह के भ्रामक प्रचार का या अफ़वाह का खण्डन करना चाहिए। संस्कृति का अपना एक व्यक्तित्व होता है। वह अपने में एक विशिष्ट जीवन प्रणाली होती है। अतः किसी संस्कृति को किसी अन्य की तुलना में कम या अधिक श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। अतः 'सांस्कृतिक पिछड़ापन' एक भ्रामक शब्द है। हमें आदिवासियों की संस्कृति को अपने से कमतर नहीं आँकना चाहिए और

उनकी सास्कृतिक विरासत को पूरा आदर और सम्मान देना चाहिए।

(7) व्यापारी, उधार देने वाले महाजन, जमींदार, शराब विक्रेता उनकी अर्थव्यवस्था के लिए भय खड़ा कर रहे हैं। कई अवांछित व्यक्ति उनकी कला, नृत्य, बुनाई व उनकी सम्पूर्ण संस्कृति को नष्ट करने पर तुले हुए है। ऐसी हरकतों से प्रशासन को कड़ाई से निबटना चाहिए और ऐसे लोगों के आदिवासी क्षेत्र में व्यापार करने व बसने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाना चाहिए।

(ix) आदिम जातियों व लघु जनजातियों पर विशेष ध्यान

सभी जनजातियों के लिए एक-सी विकास व्यूहरचना लाभदायक नहीं होती है; क्योंकि प्रत्येक जनजाति की समस्याएँ अलग-अलग होती है। जब विस्तृत योजनाएँ तैयार की जाती हैं, तब विशेषकर छोटी-छोटी जनजातियों पर इतना ध्यान नहीं दिया जाता, जितना दिया जाना चाहिए। राजस्थान सरकार ने सहरिया आदिम जाति के विकास के लिए अलग से योजना तो बनाई है, परन्तु वह कथोड़ी जनजाति के विकास के लिए अलग से योजना नहीं बना सकी है, जबकि इस जनजाति की विशेषताओं और पिछड़ेपन को देखते हुए इसे भी आदिम जाति श्रेणी में सम्मिलित किया जाना चाहिए। यह जनजाति अभी भी वनों पर आश्रित है; किन्तु अब उन्हें वन-उपज-संग्रहण के लिए वनों में नहीं घुसने दिया जाता है। फलत: उनके समक्ष आजीविका का गम्भीर संकट उपस्थित हो गया है। उन्हें भूमि दी गई है, परन्तु कृषि कार्यों को करने का अभ्यस्त होने में अभी उन्हें वक्त लगेगा। उनमें से अधिकतर युवा व वृद्ध बाँस से विभिन्न आकर्षक खिलौने व सजावटी सामान बना सकते हैं; परन्तु इसके लिए उन्हें न तो बाँस काटने की अनुमति है और न ही सरकारी सहायता प्राप्त हो रही है। एकमात्र कारण यह है कि इस जनजाति के व्यक्ति बहुत थोड़ी संख्या में हैं, फलस्वरूप उपेक्षित हो रहे हैं। छोटी जनजातियों के लिए विकास योजना बनाते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए—

(1) सर्वप्रथम तो ऐसे समूह की विकास आवश्यकताओं और सास्कृतिक स्थिति का मूल्यांकन करना चाहिए इन समंकों की अन्य जनजातियों

से एकत्र किए समंकों से तुलना की जानी चाहिए, ताकि समूह का आनुपातिक आर्थिक पिछड़ापन ज्ञात किया जा सके।

(2) सहरिया जनजाति राजस्थान के दक्षिण-पूर्वी भाग व उससे लगे मध्य-प्रदेश के क्षेत्र में बसी हुई है। ऐसी स्थिति में दोनों राज्यों द्वारा अलग-अलग योजनाएँ बनाने की अपेक्षा एक ही केन्द्रीय एजेन्सी की स्थापना की जानी चाहिए ताकि विकास में क्षेत्रीय असंतुलनों को टाला जा सके। इस प्रकार विकास कार्यों का निरीक्षण करने के लिए भी केन्द्रीय एजेन्सी होनी चाहिए जो विकास कार्यों के निरीक्षण के उपरान्त राज्य सरकारों को सुझाव दे सके।

(3) छोटी जनजातियों की स्थानीय आवश्यकताओं को देखते हुए ही विकास योजनाएँ बनानी चाहिएँ।

(4) छोटी जनजातियाँ अन्य जनजातियों की तुलना में अधिक पिछड़ी हुई रहती हैं। अतः ऐसे समाजसेवकों व सरकारी कार्यकर्त्ताओं द्वारा बेहद सावधानी से इन जनजातियों के लोगों को वातावरण में हुए परिवर्तनों को स्वीकारने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार करना चाहिए, ताकि वे प्रगतिशील दुनियाँ से अलग-थलग न रहें।

(5) जनजातियों के विकास का मूल्यांकन सिर्फ विकास पर खर्च की गई धनराशि के आधार पर नहीं करना चाहिए, बल्कि केन्द्रीय निरीक्षण एजेन्सी को यह भी देखना चाहिए कि वास्तव में कितने लोग लाभान्वित हुए हैं, कितने लोगों ने अपने धन्धे खोले हैं और उन्हें सफलतापूर्वक चलाए हुए हैं, उनके समक्ष क्या समस्याएँ हैं ? पहले की तुलना में उनका खान-पान व रहन-सहन का स्तर कितना उठा है ?

(x) निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि आदिवासियों के विकास के लिए यथेष्ट धनराशि खर्चने के साथ-ही-साथ ऐसे समर्पित कार्यकर्त्ता अर्थात् अधिकारी व कर्मचारी सरकार को चयनित करने चाहिए जो इन सुविधाहीन ग्रामों व झोंपड़ियों में जाकर आदिवासियों की व्यथा को सुनें और उनकी समस्याओं का निराकरण करें। आदिवासियों को अर्जी

लिए-लिए प्रशासन की संवेदनहीन अट्टालिकाओं में इधर-उधर न भटकना पड़े। प्रशासन का यह दायित्व हो जाता है कि वह उन्हें न सिर्फ आर्थिक शोषण से बचाए बल्कि तथाकथित धर्मप्रचारकों द्वारा किए जा रहे मानसिक शोषण से भी मुक्ति दिलाने की व्यवस्था करे और इस सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराने के साथ-साथ प्रशासन उनकी संतानों के आरंभिक शिक्षण-प्रशिक्षण पर भी पूर्ण ध्यान दे। साथ ही इस बात से भी सावधान रहे कि सरकार पर उनकी निर्भरता एक सीमा से ज्यादा नहीं बढ़े। कर्मठ कर्मचारियों की सहायता से सरकार इन लोगों को भी संतुष्टिदायक जीवन जीने के लिए अवसर, आत्मनिर्भरता के महत्त्व का ज्ञान व मार्गदर्शन प्रदान कर सकती है।

□□□

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 डा. शिवतोष दास - भारत की जनजातियाँ, किताबघर, दिल्ली; 1983

2 बाबूलाल पानगड़िया - राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर; 1985

3 उमाशंकर मिश्रा व प्रभातकुमार तिवारी - भारतीय आदिवासी, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ; 1975

4 Chowdhari, Buddhadeb (Editor) - Tribal Development in India; Inter India Publications; Delhi, 1982

5 Dasgupta, P.K. - Tribal women in industrial context

6 Elwin, Verrier - The tribal world of Verrier Elwin, Oxford university press, Bombay; 1962

7 Erskine, K.D. - Rajputana Gazetteer of Mewar Residency, 1908 Scottish mission Industries Co.Ltd., Ajmer, 1909

8 Ethnographic Atlas of Rajasthan 1969 - Dy Superintendent of Census Operations; Rajasthan; Jaipur, 1969.

9 Hunter, William Wilson - Imperial Gazetteer of India 2nd Ed Triibner & Co. London (1885 - 1887)

10. Koreber, A L. - Anthropology Today; (edited.) University of Chicago press, Chicago, 1955

11. Majumadar, D.N. - Races and Cultures of india: Asia Publishing House, Bombay.

? Ma co m J		Memories of Centra Ind a Allen and Company. Parbury, London, 1832
13. Mann, Rana Singh	-	Position of Women in tribal Rajasthan.
14. Publication Division	-	The Adivasis, Publication Division Government of India Delhi, Articles of Sh. J. L. Nehru and others
15. Rizvi, B R.	-	Role of Women in Tribal Economy.
16. Rowney, Horatio Bickerstaffe	-	The Wild Tribes of India Thos De la lve & Co. London, 1883
17. Sen, Jyoti	-	Status of Women among Tribes,
18. Shashi, Shyam Singh	-	The Tribal Women of India, Sandeep Prakashan, Delhi, 1978
19. Sherring, M.A.	-	The Tribes and Castes of Rajasthan, Cosmo Publication, Delhi, 1975
20. Tod, James	-	Annals and Antiquities of Rajasthan, Toutlege and keganpaul London, 1950
21. Vyas, N. N. and Chaudhari N. D. Tribals	-	Past and present, M. L. Verma Tribal Research institute, Udaipur, 1968

प्रतिवेदन:-

1. भारत की जनगणना 1981 (राजस्थान) विशेष प्राथमिक सार अनुसूचित जाति व जनजाति
2. भारत का राजपत्र (असाधारण) 12 फरवरी, 1981
3. भारत की जनगणना 2001 (राजस्थान)
4. अनुसूचित जातियों व जनजातियों की सूची – राजस्थान
5. अनुसूचित जाति व जनजाति आयोग की आठवीं रिपोर्ट

6 वागड़ के भीलो के उत्थान म गुरु गाविन्द गिरि का यागदान–वशिष्ठ; डा. विजय कुमार

7 वार्षिक प्रशासनिक प्रतिवेदन – जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग,
2001–2002 राजस्थान, उदयपुर

8 कमजोर वर्ग का कल्याण – सूचना व जनसंपर्क निदेशालय,
राजस्थान, जयपुर

9 निर्बल को बल – सूचना व जनसंपर्क निदेशालय, राजस्थान, जयपुर

10 Hutten, J. N. - Census Report of India 1931 Vol.1
Manager of Publication. Civil Lines, Old Delhi, 1933

11 Tribal Development in Rajasthan- An approach paper for the preparation of 8th plan.
- M.L. Verma T R.I. Udaipur.

आदिवासियों के बारे में हमारी जानकारी जितनी भी होगी, शायद कम ही होगी। उनकी दशा और आधुनिक सभ्यता की दिशा के बारे में एक नया दृष्टिकोण विकसित करने का काम यह पुस्तक अवश्य करेगी, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है। पुस्तक में दस अध्याय है, जिनमें समूची आदिवासी सभ्यता की जानकारी समाहित है।

पहला अध्याय परिचय प्रदान करता है, आदिवासियों का, दूसरे अध्याय मे उनके उद्भव और आबादी क्षेत्र की जानकारी दी गई है। तीसरा अध्याय हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में आदिवासियो के विकास के लिए किए गए काम--काज के बारे में है। चतुर्थ अध्याय प्रशासन और सरकार की ओर से चलाई जा रही योजनाओ का खाका खींचता है, वहीं पांचवें अध्याय में इन योजनाओं व विकास के कदमों का आदिवासी जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का जिक्र है। छठा अध्याय राजस्थान के प्रमुख आदिवासियों से परिचित कराता है, जबकि सातवें अध्याय में आदिवासी महिलाओं की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। आदिवासियों की आर्थिक व सामाजिक समस्याओं को हमारे सामने रखता है आठवां अध्याय। नवां अध्याय आदिवासियों के बारे में नीति दर्शाता है जबकि दसवें एवं अंतिम अध्याय में उन निष्कर्षों व सुझावों का समावेश है जिनके बिना यह लेखन प्रयास अधूरा रहता।

राजेन्द्र प्रसाद शर्मा

उप

दैनिक जयपुर